पंजाब केसरी पूज्यश्री काशीरामजी महाराज के
सुशिष्य पं. मुनिश्री शुक्लचंदजी म. द्वारा रचित

अष्टम त्रीक महापुरुष चरित्र

जैन रामायण

(पूर्वार्ध)



: प्रकाशक :
लाला हंसराज शादीलाल जैन

मूल्यः
१—८—०

पुस्तक मिलनेका पता :-
लाला हंसराज शादीलाल जैन
१५८, बारभाई मोहला, **बम्बई नं. ३**
धी लक्ष्मी मेडीकल स्टोर्स
७९, कीका स्ट्रीट, गुलालवाडी, **बम्बई नं. ४**

प्रथम आवृत्ति १०००
वीर संवत २४६७
विक्रम संवत १९९७

मुद्रक:-
हर्षचंद्र कपुरचंद दोशी
श्री सुखदेव सहाय जैन कॉन्फ. प्रि. प्रेस.
४५१, कालवादेवी रोड, **बम्बई २**

गुरुवन्दन

दो.— गुरु रतनाकर समरतन, आचार्य सम्राट् ।
पूज्य सोहनलालजी की कृपा, खोले ज्ञान कपाट ।।
सार वस्तु संसार में कहा, जिन धर्म एक ।
चूरण कर सव दुःखों का, अविचल राखे टेक ।।
आकर्षण शक्ति कही, सर्व सुखों की यह ।
सच्चिदानन्द वरते सदा, अमृत वरसे मेह ।।
मोक्ष ही अपना गृह है, मोक्ष ही अपना धेय ।
वीर प्रभु के मार्ग से, लगा हमारा नेह ।।
पंजाव केसरी धर्माचार्य, गुरुवर पूज्य हमारे हैं ।।
हम जैसे पामर पतितों को भी, देकर ज्ञान सुधारे हैं ।।
जिस जिसने जो उपकार किया, मैं उन सव का आभारी हूं ।
कृपया अपराध क्षमा करना, क्योंकि नादान अनाडी हूं ।।
विनय सहित कर नमस्कार, आज्ञा ले कलम उठाता हूं ।
निर्विघ्न कार्य सिद्ध वने, आशिर्वाद यह चाहता हूं ।।
सिया राम लखन का चरित्र, शिक्षा प्रद अति सुख कारक है ।
त्रियोग शुद्ध जो "शुक्ल" पढे, उन सव का कलमल हारक है ।।

शुक्ल मुनि

साभार धन्यवाद

इस पुस्तक के प्रकाशन के लिये रु. ४००) श्रीमान लाला हंसराजजी शादीलालजी जैन (पंजाब) हाल बम्बई और कलकत्ता वालोंने सहायतार्थ दिये हैं जिनका कि इस पुस्तक की उपजमें से नयी आवृत्ति प्रकाशित करने में उपयोग किया जायगा ।

॥ ॐ ॥

प्रकाशक का निवेदन

जैन रामायण नामक ग्रंथ को पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। सं. १९८२ के चातुर्मास में जब प्रखर प्रतिभा संपन्न बाल ब्रह्मचारी पंजाब केसरी पूज्यश्री काशीरामजी म. सा. आदि पूज्य संतगण जेजू (पंजाब) नामक क्षेत्र में थे। तब वहां के श्रावकों ने व्याख्यानरत्न पंडित मुनिश्री शुक्लचन्द्रजी म. सा को एक जैन रामायण के लिये कई अनुरोध एवं आग्रह किये। महाराज श्री के यह बात जंच गई तथा शुभस्य शीघ्रं के अनुसार रामायण का शीघ्र ही श्री गणेश हो गया।

यह पुस्तक जेजू (पंजाब) से प्रारम्भ होकर सं. १९८६ के लगभग अम्बाला में समाप्त हुई। हम जेजू क्षेत्र के रामायण के सुप्रेरक लाला पन्नालालजी एवं राजारामजी को यहां आभार प्रदर्शित कर देना उचित समझते हैं। क्यों कि यह पुस्तक उन्हीं की प्रेरणा का फल मात्र है।

यद्यपि इस की रचना बहुत समय पूर्व ही हो चुकी थी, लेकिन समय समय पर ऐसे अनुकूल साधनों की प्राप्ति नहीं होने से प्रकाशित न हो सकी।

इस पुस्तक के प्रस्तावना लेखक श्री शान्ति स्वरूपजी "रत्न" महाराज सा. ने एवं मुनिश्री फूलचन्द्रजी म. सा. ने आवश्यक पुस्तक संबंधी कार्य एवं संशोधन किये अतः मैं आप लोगों का पूर्ण आभारी हूं। तथा समय समय पर संशोधन कर्त्ता श्री मुंशीरामजी सोनी

होशियारपुर और श्री मुंशीरामजी अमर कवि होशियारपुर तथा श्री किशोरीलालजी अम्बाला वाले बहुत धन्यवाद के पात्र हैं। मैं उनका हृदय से आभार मानता हूं। इस के बाद सम्पूर्ण रामायण तैयार होने के बाद इस की प्रथम प्रेस कॉपी करवाने का प्रबन्ध करवाने के लिये मनमाड निवासी श्री खेमराजजी, श्री दीपचन्दजी, श्री गुलाबचन्द्रजी, तथा श्री चुन्नीलाल ने जो तन, मन और धन से सहायता दी है, अतः उन को भी सहर्ष धन्यवाद दिया जाता है।

अब दूसरी प्रेस कॉपी करवाने के लिये प्रबन्ध करने वाले बम्बई संघ के सेक्रेटरी सेठ श्री जमनादास खुशालदास वोरा को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते हैं। तथा साथही डाक्टर नारायणजी मोनजी वोरा M. B. B. S. ने इस पुस्तक के लिये प्रेस कॉपी में सहायता और अन्यस्थलों से पत्र व्यवहार आदि का कार्य करके तथा अन्य सभी भार लेकर जो सेवा की है एतदर्थ उनको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। तथा प्रस्तुत पुस्तक की द्वितीय प्रेस कॉपी के लेखक पं. श्री मानमलजी नलवाया छोटी सादड़ी निवासी को भी धन्यवाद दे देना परमावश्यक है, जिन्होंनें कि लेखन कार्य प्रूफ संबंधी सब कार्य अत्यन्त सावधानी पूर्वक संभाला है। अस्तु।

पाठक वृन्द इस ग्रन्थ की अधिक से अधिक उपयोगिता समझकर इसका लाभ लेंगें तभी रामायण की रचना करने वाले मुनिश्री शुक्लचन्द्रजी म. सा. का भी प्रयास सार्थक होगा।

प्रकाशक

लाला हंसराज शादीलाल



—नमो चतुर्विंशति जिनाय—

प्रस्तावना

जिस महा पुरुष के परम पुनीत नाम को आबाल वृद्ध वनिता प्रातःकाल से ही सुमधुर सुघोष से उच्चारित कर, चतुर्दिक परिपूर्ण, कर हर्षोन्मत्त बने स्वजन्म कृत कृत्य मानते हैं, जिस पुरुषोत्तम के पावन चारित्र को पठन पाठन व श्रवण कर आर्यावर्तीय ही नहीं अपितु पाश्चात्य विद्वद्वर्ग भी हर्ष विभोर हुए बिना नहीं रहता, जिस नर केशरी के असामान्य चारित्र की प्रखर अतिशय शुभ्ररश्मियां अज्ञानतिमिर परिपूर्ण व धर्मान्धता के मद से मदोन्मत्त संकीर्ण हृदयी मनुज के भी अन्तस्तल को स्पर्शित किये बिना नहीं रहतीं, उन्हीं पुरुष प्रधान महामना भगवान राम व जगज्जननी मनस्विनी स्वनाम धन्य तथा अनुपम पतिव्रत धर्म रूपी प्रचंड मार्तंड के उत्तप्त ताप से खलवृंद के कलुषित हृदय की कालिमा को दग्धकर, अन्यायियों के दृगों में चकाचौंध उत्पन्न कर देनेवाली माता सीता की चारित्र मणियों की निधि स्वरूप रामायण को किस प्रेमी पाठक का अन्तस्तल अवलोकनार्थ चंचल न हो रहा होगा।

इस अनन्तनीलाकाशस्थ जगति मंडल का अनादि नियम है कि इसका वह निवासी जो कि क्रूर कर्म रत होकर हर्ष मनाता है, धर्म की अपेक्षा अधर्म को अधिक मात्रा में उपादेय समझता है, प्रकृति विरूद्ध नियमों का निःशंक भाव से प्रयोग करता है, अपनी धन्य प्रकृति के वशीभूत हो स्वार्थान्ध बन अपर पुरुष के लिये अधिक से अधिक मात्रा में हानिप्रद कर्मों का अनुष्ठान कर आनन्दित होता है, ऐसे असत्कर्मियों से अन्य दुर्बल निवासी त्रास पाते हुए स्व

उन के प्रति घृणा बीजांकुरों को पल्लवित करने के लिये बाध्य होते हैं और जब वे यह निहारते हैं कि उनके विश्वमंडल का उपरोक्त कर्मा एक सदस्यताका अंत कर रहा है तब वे शोक की अपेक्षा अत्यधिक आनन्दित होते हुए घृणा प्रदर्शित कर नामोच्चारण करते हैं। दूसरी तरफ वह सदस्य जो कि प्राणी मात्र को निज बन्धु मानता हुआ शत्रु मित्र पर सम भाव से उपकार करने में रत रहता है, कष्टावस्थावस्थित प्राणी के कष्ट को दूर करने के लिये निज तन मन धन सर्वस्वसमर्पण करता है, सत्याचरण में ग्रीवा भी बलिवेदी पर बलिदान करने के लिये तत्पर रहता है उदार हृदयधारी, धर्मपालक, दुःखभंजक, प्राणीमात्र के विशाल वक्षस्थल पर निजप्रतिमा प्रतिबिम्बितकर निज अनुगामी बना अन्तिम अवधिमें विश्व को शोक सागर में निमज्जितकर प्रहसितवदन से सदस्यताको त्यागदेता है। ऐसे महापुरुप को विश्व अपनाता है। अत्यन्त आदर पूर्वक निजस्वान्तमें उसके लिये पीठिका बिछाता है उसके नाम स्मरण से मुक्ति मानता है उसका आदर्श आचरणीय जीवन पठन पाठन श्रवण मनन करना एक मुख्य कर्तव्य समझता है. परन्तु प्रथम उपरोक्त दुर्जनजन कि जिनका स्वभाव "जलौकास्तनसंपृक्तौरक्तंपिवतिनामृतम्" के अनुसार होता है ऐसे महापुरुप के जीवन में भी छिद्र देखने की व्यर्थ चेष्टा किया करते हैं। जिस प्रकार अत्यन्त रमणीक व सुदृढभवनमें भी पिपीलिका छिद्र निहारनेका अथक परिश्रम करती है परन्तु इसमें उन महापुरुषों पर दूषण नहीं लग सकता। ये उन दुर्जनों की दुष्ट प्रकृति का ही दोष समझना चाहिये जैसे कि —

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्यकिं।
नोल्लूकोऽप्यविलोकते यदि दिवा सूर्यस्यकिं दूषणम् ॥
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं।
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्माजितुं कःक्षमः ॥

अर्थात् जिस बसन्त से वनस्पति मात्र में नवयौवन प्रस्फुटित हो उठता है तथा जो दिवाकर सम्पूर्ण लोकको प्रकाश प्रदान करता है अथवा जो वारिवाह प्राणी मात्र की तृषा को शान्त करने वाला व आनन्ददायक, है। उससे यथाक्रम कैर का पौदा वसंतसे, सूर्यसे उल्लू व मेघसे चातकपक्षी लाभ नहीं प्राप्त करते तो उनकी क्या महत्ता घटगई ? इसी प्रकार खलविषय में भी समझना चाहिये कि यदि वे महज्जनों के पुनीत इतिहास से लाभ नहीं उठाते तो उनका कुछ बिगाड भी नहीं सकते।

किसी भी देश व धर्म के पुनरुत्थानमें उसके नायकोंका जीवन चरित्र अधिक लाभ दायक सिद्ध होता है जैसे कि देखने में आता है कि जब सेनानायक निज सैन्यको संग्राम के लिये कूच करने की आज्ञा देने को तत्पर होता है तब सबसे प्रथम सैनिकों को सम्बोधित करता हुआ उनके पूर्वजों की वीरता का वर्णन करता हुआ बतलाता है कि देखो तुम्हारे देश वासियों ने व वंशजों ने अमुक युद्ध में निज देश व धर्म की रक्षा के लिये किस वीरता से शत्रु के छक्के छुडा दिये थे। उसी तरह तुम भी निज पूर्वजों का अनुसरण करते हुए संसार को दिखा दो कि जब तक हम उनके वंशज जगतितल पर विद्यमान हैं तबतक किसी की भी शक्ति नहीं कि उनके देश व धर्म की तरफ आंख उठाकर देखलेवे। परिणाम यह होता है कि मृतप्रायः सैनिकों में भी विद्युतलहर दौड़ जाती है और निज पूर्वजों के कर्तव्य सुन अद्भुत वीररसका पान करते हुए अदम्य साहसी अदम्यशूर बन जाते हैं और जीवन के अन्तिम रक्त बिन्दुतक निज महापुरुषों के नामों पर आंच नहीं आने देते। इसके विपरीत जहां नायकों के इतिहासों की शून्यता हो वहां कहना पडेगा कि—

हो देश और जिस धर्म में इतिहास की अदृश्यता।
तिर्यंच से निर्द्वन्द्व सज्जन कीजिये सादृश्यता॥

क्योंकर भला जीवित कहें जिस देहमें न प्राण हों ।
"शान्ति" भला कैसे वे जन जिनमें न स्वाभिमानहो ॥

विद्वज्जनों के वाक्योंमें कहना होगा कि देश व धर्म रूपी कलेवर में उसके अपनाने वाले महत्पुरुषों के लाभप्रद जीवन प्राणभूत होते हैं । तथा किसी भी प्रकार के जीवन चरित्र के विषयमें हम हेय, ज्ञेय, उपादेय इन तीन सैद्धान्तिक शब्दोंको बिनाकिसी हिचकिचाहट के उपस्थित कर सकते हैं । जिसमें गर्हित कर्म हेय, ज्ञातव्य विषय यथा गणिकाकी आकर्षक विधि जिससे उसके चंगुल से सावधान रहा जा सके ज्ञेय, तथा आचरणीय विषयको उपादेय समझना चाहिए । इसप्रकार रामायण के प्रधान नायकोंके चरित्र अतिसुगम व स्पष्ट रीतिसे चित्रित किये जा सकते हैं यथा—श्रीरामका गुरू जन आज्ञा पालन, कर्तव्य परायण, "क्षमा वीरस्यभूषणम्" की उक्ति चरितार्थ कर दिखाना, निरभिमानता, शत्रुपर भी मित्रभाव परन्तु दुष्कर्मियोंके लिये कालरूप आदि । लक्ष्मण का अनुपम भ्रातृप्रेम, अद्भुतकर्तव्यनिष्ठा "खलस्यदंडं सुजनस्यत्राणं," गुरूजन वाक्यमर्यादा आदि । सीताका नारी धर्म कर्तव्यज्ञान पति सुश्रुषा, धर्मरक्षा में निर्भीकतादि। भरत की निर्लोभनीय वृत्ति, गुर्वाज्ञापालन, भोगादि, से निवृत्ति, प्रजावात्सल्यादि, वीर विराध सुग्रीव हनुमान विभीषणादि का कर्तव्यज्ञान, सत्यग्राहकता स्वामीभक्ति, सेवक कर्तव्य, असहाय की सहायता अनुपम शूरता, तथा मन्दोदरी की नीतिपरायणता, नारित्व रक्षा सत्यकथन में निर्भीकता, आदि कार्य आबालवृद्ध वनिता के लिये अनुकरणीय हैं उपादेय हैं । तथा मन्थरा की हृदय संकीर्णता के वशीभूत हो उसके वागजाल में फंस केकयी का अपनत्व विस्मृत करना सूर्पनखा के द्वारा अकुलीनताका प्रदर्शन, घृणितोद्देशसे स्त्रीत्वहत्या आदि ज्ञेय रूप में गिननी चाहियें, तथा दशकन्धर की नैतिक असंयमता, अहंकारात्मक वृत्ति आदि अमनोज्ञ कृतियां हेयरूप हैं त्यजनीय हैं ।

इस अवसर्पिणी काल में जितने भी कर्मावतारों के नाम स्मरण किये जाते हैं उन सबमें श्रीराम ही एक ऐसे हैं कि जिन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम के नाम से अधिक से अधिक व उच्चसे उच्च कोटिमें विभूषित किये जाते है। सचमुच ही रामायण के अधिकांश नायकों के नाम श्रवण व स्मरण से ही स्वान्त आनन्द रत्न निधिमें निमज्जित होता हुआ नन्दन कानन के सौध में निजको पर्यटन करता हुआ पाता है। परन्तु जिस समय कोई मनस्वी ऐसे २ कर्मठ अदम्य उत्साही, सत्यप्रिय, नेताओंके अन्य लेखकों द्वारा रचित ग्रन्थोंका सहाय्य ले स्वान्त की प्रबल प्रेरणा से प्रेरित होकर पूर्वजों के पदों का अनुसरण करने की इच्छासे ग्रन्थोंका अवलोकन आरम्भ करता है तो सिवाय इसके कि 'वे भगवान थे उनके अवतार थे इस कारण अद्भुत शक्तिसे हम मनुष्योंके सन्मुख ऐसे कर्तव्य प्रगटितकर हमारे वीचसे अन्तर्धान हो परमधाम को प्रस्थान कर गये''। तथा निराशा से अन्य किंचित् हस्तगत नहीं होता! हमारे लेखकोंने अनन्यतम श्रद्धाभक्ति के वशीभूत ही आत्मा की अनन्त अखंड अव्याबाध शक्ति पर विचार न करते हुए तथा नाहीं समझने की कोशिश करते हुए कि "जिस प्रकार जाज्वल्यमान प्रखर प्रतापी तरणी अपनी उष्णविभा व सुमतोंसे, घटाटोप जीमूतोंसे व्यवधानित होकर प्राणियोंको उतप्त करनेमें असमर्थ हो जाता है। परन्तु वास्तविक रूपको त्यागता नहीं तथा सिंह राशीपर आरूढ हो संपूर्ण बाधाओंका नाशक बन तिमिरारि व प्राणियोंके पोषकत्व गुणको धारण कर स्वपर्यायको धारण करलेता है ठीक इसी क्रमसे ज्ञान स्वरूप आत्मा अनन्त शक्ति का धर्ता होकर भी अष्टकर्म रूपी बलाहकों से आच्छादित होने के कारण अपने अनन्तज्ञान अनंत दर्शन अनंत चारित्र अनंत बलवीर्य को प्रगटाने में असमर्थ होता है। परन्तु सिंह समान निर्भीकता अदम्य साहस तथा पुरुषार्थ का आश्रय ले शुभ योगों द्वारा अपनी संपूर्ण विघ्नबाधाओं को विध्वंस करते हुए

अभूत पूर्व अलौकिक शक्ति को प्रगटाते हुए तथा विश्व मंडल के सदस्यों को उनके कर्तव्य पथपर आरूढकर अपने वास्तविक गुण अनंत ज्ञानमय स्वरूप को प्राप्त कर आत्म पद से परमात्मपद को प्राप्त कर लेता है" । शीघ्र ही किसी भी पुरुष को जिसने दिक् विभ्रमगत पृपत् के समान अज्ञान व मात्सर्य के वशीभूत हो झगडते हुए विमूढ मनुष्यों का नेतृत्व कर सत्पथपर लाने का प्रयास किया नहीं, कि तुरन्त किसी को अंशावतार किसी को पूर्णावतार के पद से विभूषित कर उस घडी के समान कि जिस में कारीगर ने चाबी आदि भर कर चला दी हो, उपस्थित कर उस की महानता तथा अनुगामियों के हृदयस्थ महान पथ पर अग्रसर होने के रम्य उत्साह को क्षीण कर डालने में सहायक सिद्ध होते हैं । तथा इसी वार्ता को प्रगटाने के लिये महा पुरुषों के मनुष्यत्वका भी हरण कर किसी को पशुत्व व किसी को निशिचरत्व पद विभूषित कर अन्धश्रद्धालुओं के सिवाय इस बौद्धिक कालके भगवान राम व पवन पुत्र के उपासक विद्वन्मंडल के आत्वनितमें गहरी अश्रद्धा व तिलमिलाहट उत्पन्नकर महापुरुषों के जीवनपर व्यंगपूर्वक उपहास्य करनेका समय प्रदान कर दिया जाता है । परन्तु उपस्थित ग्रन्थके लेखक माननीय विद्वान पं. मुनिश्री शुक्लचन्द्रजी महाराज का प्रयास स्तुत्य है और पूर्ण आशा है कि आर्षग्रन्थों की सहायता पेक्षित हो । आधुनिक गायन प्रणाली अनुसार रचित ग्रन्थके अन्तर्गत उत्साही पुरुषोंको सुभाषित वचनामृत व चरित्रावलोकन कर आचरण करने से इहलौकिक व पारलौकिक सम्बन्धि उभय प्रकार का लाभ प्राप्त होगा । क्योंकि हमें एक २ पात्रके चरित्रमें अनमोलरत्न देखने को मिलते हैं, श्रीराम की वह आदर्श पितृभक्ति कि जिससे प्रेरित हो अपने सम्पूर्ण सुखों को ही नहीं वरन् राज्याभिषेक से भी मुंह मोडकर वन के भयंकर कष्टों को जानबूझकर तथा कोई १–२ दिवस के लिये

नहीं वल्कि १४-१४ वर्ष के लिये निज सिरपर उठालेना कर्तव्यनिष्ठता का बड़ा ज्वलन्त उदाहरण है। फिर माता सीता का पत्नित्व धर्म प्रेरित होकर हर्म्य के सुखों पर बायीं ठोकर मारना तथा श्रीराम के इस समझाने पर कि "जिस तुमने बिना यान के कभी गमन नहीं किया किस प्रकार वनों के कंटकाकीर्ण पथोंपर अग्रसर हो सकोगी, जो अरण्य हिंसकजन्तुओं से परिपूर्ण है तथा भयंकर स्तब्धता की नग्नमूर्ति है उस विकट अटवी में किस प्रकार सखी परिवार से रहित विचरण कर सकोगी ? किस प्रकार भूमिशयन कर सकोगी ? किस प्रकार वन्य फलों से क्षुधा को शान्त कर सकोगी, तुम नारी हो नारी जाति प्रकृतितः कोमल होती है इस कारण वह अटवी तुम्हारे योग्य नहीं है"। क्या ही सुन्दर शब्दों में उत्तर देती है कि प्राणेश्वर मैं अर्धांगिनी हूं। विश्व में कहीं भी ऐसा देखने व सुनने में नहीं आता कि काया का अर्धभाग तो चल दिया हो और अर्धभाग अवस्थित रहा हो या अर्ध की छाया पडती हो और आधे की नहीं फिर आप किस प्रकार मुझको छोड सकते हैं ? तथा आप जो कष्ट मेरे सन्मुख उपस्थित करते हैं आप उनके कब से अभ्यस्त हैं ? प्रभो आपके चरण कमलों के दर्शन होते रहने से शूल भी फूल समान हो जावेंगे। वन्यजन्तु पालतू श्वान सम बन जावेंगे। माधवीलतादि मेरी सखियां होंगी, तथा जहां आपकी चरण सेवा हो सकती है वही स्थान मेरे लिये आनंद प्रद सौध है। सुखदुख में सर्वत्र पत्नी का पतिपद अनुसरण कर्तव्य है इस में वैपरीत्याचरण करने की इच्छा भी हीनत्व की द्योतक है यथा—

प्रारम्भ कुसुमाकरस्यपरितो, यस्योल्लसन्मंजरी।
पुंजेमंजुल गुंजितानि रचयस्तानातनो रूत्सवान्॥
तस्मिन्नद्यरसाल शाखिनिदशां दैवात्कृशामंचतित्वं।
चेन्मुंचसि चंचरीक विनयं नीचस्त्वदन्योऽस्तिकः॥

हे षट्पद ! बसन्तारम्भ पर जब आम्र मंजरी विकसित हुई उस समय तो मधुर गुंजारव करता हुआ मंडराता रहा परन्तु शक्ति क्षीण होने से भाग्यवशात् पुष्पविहीन वृक्ष हो गया तब उसको त्यागते हुए तेरे समान अन्य कौन नीच होगा ? अब विचारिये कि जब एक तिर्यंच को भी तोता चश्मी के कारण इतना धिक्कार सहना पडता है। प्रभो फिर मैं तो वीर कन्या हूं, वीर पत्नी हूं, अर्धांगिनी हूं किस प्रकार अपने जीवन धन से विपत्ति में विलग होकर कर्त्तव्यच्युत हो तिरस्कार से तिरस्कृत जीवन को धारण कर सकूंगी ? इस प्रकार यहां तो आदर्श दम्पति इस तरह के विचार विनिमय में संलग्न हैं । उधर महा उद्भटयोद्धा, प्रचंड तेजस्वी, अनुज लक्ष्मण जब ये सुन पाते हैं कि राम का वन गमन है, भ्रातृ सेवार्थ शीघ्र माता के चरणों में शीश निवा गमन की अनुमति प्राप्त करने के समय माता की, किस ओजस्वीवाणी को श्रवण करने का अनुपम समय प्राप्त करते हैं कि अय पुत्र आज तक तुम राम के भ्राता थे परन्तु आज से तुम अपने को उनका चाकर समझना, राम को जनक समान सेवा करते हुए सीता की मेरे समान (जैसे मेरी सेवा करते हो) सेवा करना । जहां राम का पसीना गिरे वहां अपना खून बहाना कर्त्तव्य समझना । यदि सेवा करते समय शीश की भी अवश्यकता पडने पर आनाकानी न करना तो मैं समझूंगी कि मैं पुत्रवती हूं लक्ष्मण ने मेरा दूध पिया है । अहा ! कितने भाग्यवान थे वे पुरुष जो निजमाताओं के मुखसे ऐसी उच्चकोटि की शिक्षा श्रवण कर निज जन्म पवित्र करते थे । अन्तः त्रिवेणी संगम होकर के भव्यजनोंके त्रय तापका हरण करते हुए निर्भीक चित्तसे विचारने लगे ! प्राणप्रिया सीताके से दुस्सह वियोग से उत्तप्त हृदयान्वित होते हुए भी जिस समय वीर विराध व सुग्रीव शरणार्थीबन निज दुःखसे मुक्त होनेके लिये प्रार्थना करते हैं तो महात्मा शीघ्रही स्वकष्ट को

उपेक्षा कर उधर कान देते हैं। सच है ये महात्म्य महान् आत्माओंमें ही पाया जाता है। यथा—

कदर्थितस्यपि हि धैर्यवृत्तेर्न शक्यते धैर्यगुणःप्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाधः शिखा याति कदाचिदेव॥

अर्थात् धैर्यवान पुरुष पर चाहे कितने भी भयंकर कष्ट पड जांय परन्तु फिरभी धैर्य नहीं जाने देते जिस प्रकार अग्नि को उलटा भी कर दिया जावे परन्तु फिर भी उसकी शिखा ऊपर को ही जाती है। इसी प्रकार की नाना विलक्षणताएं महज्जनों के जीवनमें पाई जाती हैं। वज्राङ्ग, वज्रांग ही थे सत्यपक्ष के लिये अपना सर्वस्व अर्पण करते तथा ये समझते हुए भी कि विपक्षी निकट सम्बन्धि तथा महान् शक्तिका धरता है मन में किंचिन्मात्र भी विचलित न होते हुए प्राणपण से चेष्टाकर सत्यपक्ष में विजय दुन्दुभी बजवाते हैं। इसी प्रकार विभीषण, अन्यायी के सन्मुख चाहे वह सहोदर ही था विभीषण था महा भयंकर था तथा धर्मी, चाहे वह पर था परन्तु उसके लिये था सच्चा सखा। किस २ नरपुंगवको स्मरण करें, रत्नजटी की कर्तव्य परायणता कितनी आकर्षक व अनुकरणीय है इत्यादि पाठकगण स्वयंही विचारेंगे। परन्तु आज उन्हींके वंशज व अनुगामी कहलाने वालोंकी दशा देखकर नेत्र श्रावण झडी लगाये विना नहीं रहते। आज कितनी सुमित्रा व अनुराधा सी मातायें हैं कितनी है अंजना सीता सी सतियां व कितनीक हैं मदोदरी समान निर्भीक वक्तृएं कहां है। राम सी पितृभक्ति व लक्ष्मण का भ्रातृप्रेम हनुमान सुग्रीव विभीषणादि की सत्यपराणता दीन दुखियों की पालकता उनका ज्ञान विज्ञान शौर्य धैर्य सब कहां लुप्त होगया हमारी वह संजीवनी शक्ति किधर गई। यह चारित्र्य प्रधानता किस प्रदेश में विलुप्त हो गई —

हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी ?
आवो विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी ॥

सुज्ञो ! आये वर्ष रामलीला न पता कब से मनाते आ रहे हैं । दो बालकों को सुन्दर वेष पहना हाथ में खप्पच का धनुषबाण देकर खूब धूम धाम से सवारी निकालते हैं और ले जाते हैं वहां जहां कि खडा होता हैं कागज का रावण, बडे उत्साह से सीखों के बाण चलवाकर आग लगवा दी जाती है और फिर दर्शक गिनते हैं कि रावण के पेट से कितने गोले चलते हैं । कोई निरखता है कि छातीपर आतिश की कैसी सुन्दर माला बनाई गई है तुरन्त सिर से गोला छुटता है और उपस्थित समाज में भगदड मच जाती है बस फिर क्या है? सर्वत्र चीख पुकार धक्कम से व मुक्का सफाई वालाओं का हरण तथा बनावटी रावण का अन्तकर असली रावण बन बैठना । मित्रों ! इस प्रकार प्रतिवर्ष रामलीला का स्वांग रचाकर उन महा पुरुषोंका घोर अपमानकर हम मन में अतिहर्षाते हैं और बोलते हैं कि रावण मारा गया बोल श्री रामचंद्र कि जय । परन्तु वास्तव में रावण कहां मारा गया जबकि स्वयं उसकी मूर्तिबने बैठे हैं तथा उसके प्रत्येक कार्य के स्वयं पोषक हैं ! एक ही स्तन का पयपान करने पर भी परस्पर स्नेह भावसे विलोक भी नहीं सकते फिर कष्टावस्था में सहाय्य भाव लाना तो कहां तक सम्भव हो सकता है । प्रतिदिन लंगोट कस २ कर सहोदरों को अदालत रूपी अखाड़ों में उतरते हुए निरखते हैं और प्रतिज्ञा करते हुए सुनते हैं कि चाहे घरबार लुटजाय स्त्रीके गहने कपडे भी बन्धक क्यों न रखने पडें लेकिन इसको तो एक बार जेल में घुसाकर ही दम लूंगा । इसके पश्चात् प्रतिज्ञापूर्तिके लिये माननीय विद्वद्वर्ग (वकील) की शरण में जाता है । कहां तो उन सज्जनों का कर्तव्य था कि असत्यपक्षी को डांटकर वहीं उसका सम्पर्क करावें

वर्द्धनशील विद्वेषानल को शान्त कर देते, परन्तु होता है इसके विपरीत वे सभ्य झूठी सच्ची गवाहियां रटवाकर पुनीत सत्यपर जिस सत्यके रक्षणार्थ पूर्वजों ने जान की बाजी भी लगादी, अपना सर्वस्व त्यागन करने में संकोच नहीं किया उसी पर उनके सुशिक्षित सभ्य पुत्र ही कुठारा घात करने नहीं हिचकीचाते ।

है काम कितनों का यहां, पहले यहां मिस्टरबने ।
इंगलैंड जाकर फिर वहां वाग्वीर वारिस्टरबने ॥
वे वीर हाय स्वदेश का करते यही उपकार हैं ।
दो भाइयों के युद्ध में होते वही आधार हैं ॥
उनके भरोसे पर यहां अभीयोग चलते हैं बडे ।
हारें कि जीतें आप, उनके किन्तु पौबारह पड़े ॥

क्या उच्च वर्गीय क्या नीच वर्गीय सर्वत्र द्वेष, ईर्षा, मत्सर, स्वार्थी भावों से ओत प्रोत दृष्टि गोचर हो रहे हैं। फिर भला बतलाइये जहां इस प्रकार की स्वार्थान्धता व्याप रही हो वहां कितनों में सच्चा मित्रता का लक्ष होगा। कितने दीन बंधुत्व की सुंदर सरस वीथिका में पदार्पण करते होंगे। कितने सत् कर्त्तव्य परायण अन्याय विध्वंसक के उच्च पद को वास्तविकता से धारण करते होंगे ? अब तनिक विचारिये कि उन विश्वबन्धु महज्जनों का निज को अनुगामी बतलाते हुए उन्हीं के प्रदर्शित मार्ग से विरूद्धाचरण कर तथा बालकों से उनका स्वांग उतरवा २ कर यदि हम उनका अपमान नहीं करते हैं तो क्या करते हैं ? क्या ही अच्छा हो यदि इस प्रकार के लाभ शून्य अपव्यय को निरूद्ध कर उसको ऐसे कार्य में लगाया जाय कि जिस के कारण युवक गणों में ऐसे भावों की प्रचुरता पाई जाय कि जिन से उस मर्यादा पुरुषोत्तम के चरणों का अनुसरण करते हुए इस पावन भारतभू

में विस्तृत अनार्यत्व का मूलोच्छेद कर परम्परागत समुज्वल आर्यावर्त नाम को वास्तविक रूप में प्रगटित कर दिग्दिगंत कीर्ती चंद्रिका से अवलोकित करते हुए आत्मा के परम ध्येय निर्वाण पद को प्राप्तकर महापुरुषों के सच्चे अनुयायी कहलानेके हकदार बन सकें। अधिक कुछ न लिखता हुआ मैं अन्त में विद्वान् पाठकों से नम्र निवेदन करूंगा कि वे इस अलौकिक ग्रन्थ को अपनी बुद्धि रूपी कसौटी पर भी कसते हुए अपनाने का कष्ट कर माननीय विद्वान् लेखक मुनि महाराज के अथक परिश्रम को सफल बनाने की चेष्टा करेंगे।

आत्मावलम्बन ही हमारी मनुजता का कर्म हो,
षट्रिपुसमर के हितसतत चारित्र्यरूपी वर्म्म हो।
भीतर अलौकिक भाव हो बाहर जगत का कर्म हो,
प्रभु-भक्ति, पर-हित और निश्छल नीतिही ध्रुवधर्म हो॥

भवदीय —

मुनि शान्ति स्वरूप "रत्न"



॥ ओ३म् ॥

—: प्राक्कथन :—

(१) इस अनादि संसार में सर्वज्ञ देव ने काल के दो विभाग किये हैं। एक का नाम अवसर्पिणि काल और दूसरे का नाम उत्सर्पिणि काल। अवसर्पिणि काल के छः विभाग किये हैं। जिनको छः अरे भी कहते हैं। प्रथम आराचार क्रोडाक्रोड सागरोपम का होता है। इस में जो मनुष्य होते हैं वेह अकर्म भूमिज युगलिये कहलाते हैं। दश प्रकार के कल्प वृक्षों से ही जिन्हों की इच्छायें पूर्ण होती हैं। धर्म नीति राजनीति व्यवहारिक कार्य कुछ नहीं होते। भद्र शान्त परम सुख भोगने वाले होते हैं, इस लिये इसका नाम सुखमा सुखमा है।

२ दूसरा सुखमा यह तीन क्रोडाकोडा सागर का होता है। इसमें भी उपरोक्त सब बातें होती हैं। इतना विशेष है कि अनन्ते वर्ण गंधरस स्पर्श की न्यूनता के कारण सुखमा कहलाता है।

३ तीसरा आरा सुषमा दुखमा कहलाता है, यह दो क्रोडाक्रोड सागरो पम का होता है। इसके पहिले दो भागों में प्राय: दूसरे आरे के समान स्थिति रहती है। और तीसरे में जब चौरासी लाख पूर्व से अधिक समय शेष रह जाता है उस समय पदार्थों की कमी होने के कारण मनुष्यों में झगड़ा पैदा हो जाता है। झगडा मिटाने के लिये उन में से पांच मनुष्य नियत होते हैं और 'हैं' ऐसा दण्ड स्थापन करते हैं। कुछ समय बीत जाने के बाद और पांच मनुष्य नियत होते हैं और 'मा' [illegible] स्थापन करते हैं। कुछ समय बाद पांच मनुष्य और नियत और ('धिक्कार') दंड स्थापन करते हैं। इस तरह झगडों

करते हैं । जब इस से भी आगे अधिक झगडा बढ गया तो १४ व श्री नामक अपर नाभि नामक कुलकर को विशेष अधिकार दिये गये। इस लिये इनका नाम कुलकर है और (मनु) भी इनको कहते हैं। इन में १४ वें हमें कुलकर को नाभिराजा भी कहते हैं । नाभिराजा की स्त्री मरुदेवीजी ने एक श्रेष्ट और अति उत्तम पुत्र को जन्म दिया । जिनका नाम श्री आदिनाथ रखा गया । जब ये बडे हुए तब इन के पिता ने इन की शादी दो सुन्दर कन्याओं से की । एक का नाम सुमंगला और दूसरी का नाम सुनन्दा । श्री सुमंगला के बडे पुत्र का नाम भरत था और पुत्री का नाम ब्राह्मी, दूसरी सुनन्दाजी ने एक पुत्र को दिया उनका नाम बाहुबली था और कन्या का नाम सुन्दरी था । वैसे तो अकर्म भूमि से कर्म भूमि पन्द्रहवें कुलकर से ही प्रारम्भ हो गई थी, परन्तु श्री आदिनाथजी ने जनता को अनाजबोना बर्तन बनाना, खाना पकाना मकानादि बनाना, वस्त्रादि बनाना, आवश्यक शिल्प कला व्यवहार आदि की शिक्षा दी । इस तरह सर्व प्रकार के सुधारों का प्रादुर्भाव श्री ऋषभदेवजी ने किया । इसी कारण इस काल के आदिनाथ कहलाये । प्रजा ने आदिनाथ को अपना राजा बना लिया । आदिनाथ ने राजनीति चलाने के बाद धर्म नीति की स्थापना की, धर्म दान से होता है । इस कारण एक वर्ष तक ऋषभदेवजी ने निरंतर दान दिया, स्वयं आदर्श दानी बनने के पश्चात् अपने पुत्रों को राजपाट बांट कर संसार का त्याग कर मुनिपद को धारण किया । बहुत काल भ्रमण के बाद चार घातिक कर्मों का नाश कर केवल ज्ञान को प्राप्त किया । और चार तीर्थ की स्थापना करके मुनि और गृहस्थ दो प्रकार का धर्म संसार रूपी समुद्र से तैरने को बतलाया । तीसरा आरा कुछ शेष रहने पर सर्व कर्मों को काट कर मोक्ष को प्राप्त हुए । सिद्ध बुद्ध सच्चिदानन्द हुए

आदिनाथजी के पुत्र भरतजी इस काल के प्रथम चक्रवर्ती हुए। भरत क्षेत्र के छः खण्डों का राज किया। इन्होंने भी अपने पुत्र सूर्य कुमार को अपना उत्तराधिकारी बनाके राज को छोड कर केवलज्ञान को प्राप्त किया और मोक्ष में पहुंचे। सूर्य कुमार से सूर्य वंश की स्थापना हुई और इस प्रकार तीसरे आरे में एक तीर्थंकर प्रथमावतार श्री आदि नाथजी और एक चक्रवर्ती प्रथम भोगावतार भरत हुए।

४ चौथा आरा दुखमा सुखमा कहलाता है। इस में सुखकी अपेक्षा दुःख अधिक होता है। इसका समय प्रमाण ४२ हजार वर्ष कम एक क्रोडाक्रोड सागर का होता है। इस आरे में २३ तीर्थंकर धर्मावतार, ११ चक्रवर्ती भोगावतार, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव, यह २७ कर्मावतार हुए हैं और इनके समकालीन ९ नारद, २४ कामदेव अवतार ११ रुद्रावतार (क्रूरकर्मी) होते हैं।

५ पांचवा आरा दुखमा कहलाता है, इस में दुःख ही दुःख होता है समय प्रमाण २१ हजार वर्ष का होता है। इसको पंचम काल और कलियुग भी कहते हैं। चौथे आरे के अन्तिम तीर्थंकर धर्मावतार भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण मोक्ष जाने के तीन वर्ष साढे आठ महिने पश्चात् पंचम आरा कलियुग लगा है और यह अवनति काल है।

६ छठा आरा दुखमा दुखमा कहलाता है। काल प्रमाण २१ हजार वर्ष का होता है। इस आरे का प्रथम दिन लगते ही भरत क्षेत्र के वैताड पर्वत के आसपास क्षेत्र को छोडकर अर्ध भरत से न्यून सर्व क्षेत्रों में प्रलय होती है। २१ हजार वर्ष तक प्रलय रहती है। इस में राज नीति धर्म नीति कुछ नहीं होती है। वैताड पर्वत

के आसपास भी प्राणी मात्र को महा कष्ट होता है। सब मिलकर दश क्रोडा क्रोड सागर का अवसर्पणि काल है। इसी तरह दश क्रोडा क्रोड सागर का उत्सर्पणि काल है। वह इस तरह है—

पहिला दुषमा दुषमा अवसर्पणि के छठे आरे की मानिन्द यह भी २१ हजार वर्ष का होता है और प्रलय काल भी रहता है दूसरा आरा दुषमा २१ हजार वर्ष का अवसर्पणि काल के पांचवें आरे के समान विशेषताये होती है उन्नत्ति कर समय है। तीसरा आरा ४२ हजार वर्ष कम एक क्रोडा क्रोड सागर का होता है, अवसर्पिणि काल के चौथे आरे की तरह २३ धर्मावतार ११ चक्रवर्ती ९ बलदेव, ९ वासुदेव आदि होते हैं। चौथा आरा दो क्रोडा क्रोड सागर का होता है। दुखमा सुखमा अवसर्पणि काल के तीसरे आरे की तरह एक धर्मावतार एक चक्रवर्ती होता है। इसके पिछले भागमें अकर्म भूमि युगलिए मनुष्य हो जाते हैं।

पांचवा आरा सुखमा अवसर्पणि के दूसरे आरे की तरह तीन क्रोडा क्रोड सागर का।

छठा आरा—सुखमा सुखमा अवसर्पणि के प्रथम आरे की तरह चार क्रोडा क्रोड सागरोपम का होता है।

दश क्रोडा क्रोड सागर का अवसर्पिणि काल और दश क्रोडा क्रोड सागर का उत्सर्पणि काल २० क्रोड़ा क्रोड सागर का एक काल चक्र होता है। ऐसे अनन्त काल चक्र बीत गये और अनत बीतेंगे अनादि अनन्त यही नियम है।

❀ चौवीस तीर्थकरों (धर्मावतार) का परिचय ❀

भगवान् ऋषभदेवजी तीसरे आरे के अंत में हुए इन के स पुत्र थे, जिस में बडे भरत महाराज प्रथम चक्रवर्ती हुए। भग

महाराज के बडे पुत्र सूर्य कुमार राज्य के अधिकारी हुए इन से सूर्य वंश चला है। रामचन्द्रजी भी इसी वंश के थे।

भगवान् ऋषभदेवजी के निर्वाण पद को प्राप्त करने के पश्चात् लाख करोड सागरोपम के पश्चात् दुषम सुषमा नामक चौथे आरे में स्वर्ग से चवकर दूसरे तीर्थंकर पद के भावी अधिकारी श्री अजितनाथ अयोध्या नगरी के राजा जितशत्रु की रानी विजया की कोख में पधारे। इन का जन्म माघ शुक्ला ८ को हुवा। वहां उन्होंने एकहत्तर लाख पूर्व तक गृहस्थोचितराज सुखोंका उपभोग किया। तदुपरान्त माघ शुक्ल ९ को अपनी राजधानी ही के उपवन में संसार के प्रति उपराम हो जानेपर इन्होंने दीक्षा व्रत ग्रहण किया। दीक्षा व्रत के बारह वर्ष पीछे पौष कृष्ण ११ को इन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। तदनन्तर एक लाख पूर्वतक चरित्र का पालन करते रहे और जब सम्पूर्ण कर्मों का नाश कर चुके तब चैत्र शुक्ल ५ को मोक्ष पधारे। गुण संपन्न नाम इस कारण रखा कि जब यह गर्भ में थे तो इनकी माता उसका इनके पिता के साथ सदा पासों का खेल खेला करनी थी उसमें वह कभी भी पराजित नहीं हुई और यही कारण है कि उनका नाम अजितनाथ नाम रखा गया। इनके समय में इनके चचा सुमित्र का सुपुत्र सागर हुआ जो आगे चक्रवर्ती राजा हुआ।

दूसरे तीर्थंकर अजितनाथजी के निर्वाण पधारने के ३० तीस लाख करोड सागरोपम के पश्चात् तीसरे तीर्थंकर श्री संभवनाथजी इस लोकमें पधारे। इनका जन्म माघ शुक्ला १४ को हुआ था। श्रावस्ती नगरी के जितारी राजा और सेवा रानी इनके पिता माता थे। उनसठ लाख पूर्व गृहस्थाश्रम में बीते। अगहन शुक्ल १५ को

अपनी जन्म भूमि ही के उपवन में जाकर दीक्षा ग्रहण की । यों जब दीक्षित होने को पुरे चौदह वर्ष हो गये । कार्तिक कृष्ण ५ को इन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ इस के पश्चात् एक लक्ष पूर्व तक आपने चारित्र का पालन किया और जब सारे कर्म क्षय हो गये तब वह चैत्र शुक्ल ५ को मुक्ति में पधारे । जब आप गर्भ में आये थे, उस समय चारों ओर सुकाल सुख और शान्ति की संभावना होने लगी । बस इसी तत्कालीन परिस्थिति को देखकर इनका नाम संभवनाथजी दिया गया ।

इन तीसरे तीर्थंकर के निर्वाण पद को प्राप्त करने के बाद दश-लाख करोड सागरोपम का समय बीत जाने के बाद माघ शुक्ल १ एकम् को अयोध्या में राजा संवर की सिद्धार्थ रानी की कोंख से श्री अभिनंदनजी चौथे तीर्थंकर का जन्म हुआ । कहते हैं कि इनके गर्भ में पधारने और जन्म ग्रहण करने के बीच वाले अवसर में राजा संवर की शासन नीति से अति ही प्रसन्न होकर चारों ओर के आश्रित माण्डलिक राजाओं ने उन्हों को अभिनन्दन पत्र भेंटकर उनके लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट की । इस के लिये उनकी प्रजाने उन दिनों बडा ही आनन्द मनाया और उसी उमड़े हुए चहुं ओर के आनंद का अनुमानकर माता पित ने नवजात राज कुमार का नाम अभिनंदन रख दिया । एक दि माघ शुक्ला १२ को अपनी पैतृक सम्पत्ति का उनचास लाख पूर्वतक राजो चित सुख भोगने के पश्चात् इन्होंने अयोध्या के निकटवर्ती उपवन दीक्षा ग्रहण की । इस के अठाईस वर्ष बाद पौष कृष्ण १४ क केवल ज्ञान की इन्हें प्राप्ति हुई । यों एक लाख पूर्व के अपने दीक्ष व्रत से सम्पूर्ण कर्मों का क्षयकर वैशाख शुक्ल ८ को मोक्ष पधारे ।

चौथे तीर्थंकर को मुक्तिमें पधार जाने के नौलाख करोड सागरोप के पीछे एक दिन वैशाख शुक्ल ८ को अयोध्या के तत्कालीन राज

मेघ की रानी मंगला की कोख से पांचवें तीर्थंकर सुमति नाथ का जन्म हुआ। आप उनतालीस लाख पूर्वतक गृहस्थाश्रम में रहे फिर वैशाख शुक्ल ९ को अयोध्या के उपवन में आपने दीक्षा व्रत लिया उस के ठीक वीस वर्ष पश्चात् चैत्र शुक्ला ११ को आपने केवल ज्ञान प्राप्त किया। इस के पश्चात् इन्होंने भी एक लाख पूर्वतक दीक्षाव्रत का पालन कर और अपने शुक्ल ध्यान के बल से सम्पूर्ण कर्मों का क्षयकर चैत्र शुक्ला ९ के दिन मुक्ति में पधारे, जब आप गर्भ में थे, इनकी माता ने एक बडाही सुन्दर न्याय किया था। वह इस प्रकार था—एक मनुष्य के दो स्त्रियां और एक पुत्र था। इस बालक का पिता बचपन से ही मर चुका था। उपमाता माता से भी अधिक स्नेह उस बालक पर करती थी। बालक माता और उपमाता को भी मा कह कर ही पुकारता था। कुछ समय बाद उन दोनों स्त्रियों में विरोध हो गया। अन्त में दोनों के बीच झगडा इतना बढा कि उन दोनों में से प्रत्येक उस पुत्र को मेरा मेरा कह कर बडे ही जोर से झगड़ने लगी। अन्त में निश्चय आपस में कोई भी न होता देख उनमें से हर एक न्यायाधीश के पास गई। राजाने विद्वानों की सभा में बैठ कर दोनों की अलग अलग बातें सुनी। बालक से पूछा गया। बालक ने उत्तर में दोनों को अपनी माताएं बताई यहां उपमाता पर उसने और भी गहरा प्रेम प्रकट किया। राजा और उसकी सभा के विद्वान बडे ही आश्चर्य में पड गये और अंतिम निर्णय नहीं दे सके। रानी ने भी यह विचित्र घटना राजा द्वारा सुनी। रानी ने इस उलझन को सुनते ही सुलझा लिया। उसने कहा दोनों स्त्रियों से कह दिया जाय कि जो उसके पति की सम्पति है उसके और इस पुत्र के यों दोनों वस्तुओं के समान दो दो भाग कर दिये जांय।

पश्चात् जो भाग जिसको स्वीकार हो वह ले ले। यह बात सुनकर जो उपमाता होगी वह चुप रह जायगी। परन्तु जो बालक की माता होगी वह शीघ्र कह देगी कि मुझको तो सम्पति भी चाहे न दी जाय परन्तु मेरे बालक को किसी भी प्रकार सुरक्षित रखा जाय। उसके दो विभाग किसी हालत में न किये जांय। चाहे फिर उसे भी उसकी उपमाता को ही सौंप दिया जाय। उसके जीवित रहने से किसी समय देख तो लूंगी। इस प्रकार से माता एवं उपमाता दोनों का पत्ता लग जायगा। रानी की यह सम्मति राजाने भी स्वीकार कर ली। उसने जाकर वैसा ही फैसला किया। रानी के कथनानुसार फ़ैसला सुनाते ही बालक की माता और उपमाता का पता लग गया। तब तो राजा एवं राजसभा ने एक स्वर से रानी की बुद्धि की प्रशंसा की। उसी दिन से राजा और उसके दरबारियों के द्वारा रानी के भावी पुत्र का नाम सुमति रखनेका निश्चय हुआ।

पांचवे तीर्थंकर सुमति नाथजी के निर्वाण के नव्वे हजार करोड सागरोपम के पश्चात् कार्तिक कृष्णा १२ को कौशाम्बी नगरी के राजा, श्रीधर की रानी सुसीमा की कोख से भगवान् पद्म प्रभु छट्ठे तीर्थंकर का जन्म हुआ आप उन तीस लाख पूर्व तक गृहस्थाश्रम में रहे फिर आपने कौशाम्बी के उपवन में जाकर कार्तिक कृष्णा १३ को दीक्षा ग्रहण की, चैत्र शुक्ल १५ को अनुमान छः मास बाद आपको केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई एक लाख पूर्व चरित्र पाला और अपने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर मार्गशीर्ष कृष्णा ११ के दिन मुक्ति को प्राप्त किया।

नो हजार करोड सागरोपम जब छट्ठे तीर्थंकर के निर्वाण का काल बीत चुका उस समय ज्येष्ट शुक्ला १२ को वाणारसी नगरी-

जैसे आज काशी या बनारस भी कहते हैं-में राजा प्रतिष्ठ के घर एक बड़े ही सुंदर सबल और दिव्य शरीरी बालक की उत्पत्ति हुई। माता और पुत्र के नाम क्रमशः पृथ्वी देवी और सुपार्श्व थे। यह ही आगे चलकर सुपार्श्वनाथ नाम के सातवें तीर्थंकर हुए। इन्होंने उन्नीस लाख पूर्व गृहस्थाश्रम में रह कर बाणारसी के उपवन में ज्येष्ठ शुदि १३ को दीक्षा ग्रहण की। इस के नौ मास बाद फाल्गुन कृष्ण ६ के दिन आपको केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके फाल्गुन कृष्ण ७ को निर्वाण पद प्राप्त किया।

सातवें तीर्थंकर के निर्वाण पद में पधारने को जब सौ करोड सागरोपम बीत चुके थे तब पौष कृष्ण १२ को चन्द्रपुरी नगरी में महासेन राजा के यहां रानी लक्ष्मणा के गर्भ से आठवें तीर्थंकर भगवान् चंद्र प्रभु का जन्म हुआ। ये नौ लाख पूर्व संसार में रहे पौष कृष्ण १३ को चंद्रपुरी के उपवन में दीक्षा ग्रहण की। उसी वर्ष फाल्गुन कृष्ण ७ को इन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। एक लाख पूर्व चारित्र पाला फिर अपने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर, यह भाद्रपद कृष्ण ७ को परम पद मोक्ष के अधिकारी बने।

आठवें तीर्थंकर के निर्वाण पद की प्राप्ति के नव्वे करोड सागरोपम के बाद अगहन कृष्ण ५ को काकन्दी नगरी में राजा सुग्रीव के के घर उनकी रामा नामक रानी की कोख से नवें तीर्थंकर श्री सुविधिनाथजी का जन्म हुआ। आप एक लाख पूर्व तक संसार में रहे फिर उसी नगरी के उपवन में अगहन कृष्ण ६ को दीक्षा ग्रहण की, दीक्षा ग्रहण करने के चार मास बाद कार्तिक शुक्ल ३ को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। एक लाख पूर्व तक चारित्र पाला और अपने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर भाद्रपद शुक्ल ६ को मोक्ष में पधारे।

दशवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथजी थे इनका जन्म नौवें तीर्थंकर के परमपद प्राप्त करने के करोड सागरोपम के पीछेका है उस दिन माघ कृष्ण १२ का दिन था। इनके पिता दृढरथ और माता नन्दादेवी थी। गृहस्थाश्रम में रह कर इन्होने पचहत्तर हजार पूर्व बिताये। तब संसार से चित्त की उपराम अवस्थामें अपनी राजधानी ही के उपवनमें माघ कृष्ण १२ को दीक्षा ग्रहण की। इसके पश्चात् दूसरे वर्ष के पौष कृष्ण १४ को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई और पचीस हजार पूर्व चारित्र पाला फिर यह अपने संपूर्ण कर्मों का क्षय करके वैशाख कृष्ण २ को मुक्तिमें पधारे।

ग्यारहवें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथजी थे, इनका जन्म फाल्गुन कृष्ण १२ को दशवें तीर्थंकर के निर्वाण कालके सौ सागर छियासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष न्यून एक करोड सागरोपम के पश्चात् सिंह पुरी नगरीमें हुआ। इनके पिता विष्णुजी एवं माता श्रीमती विष्णुदेवी थे। ६३ लाख पूर्व तक संसार में रहे। फाल्गुन कृष्ण २ को केवल ज्ञानकी प्राप्ति हुई और इक्कीस लाख पूर्व चारित्र पाला। फिर अपने संपूर्ण कर्मोंका नाश करके मोक्ष पद को प्राप्त किया। इनके समय में त्रिपृष्ट नामके वासुदेव हुए। जिनके भाईका नाम अचल था। उसी कालमें रत्नपुरमें अश्वग्रीव नामक प्रतिवासुदेव राज्य करते थे। त्रिपृष्टने अश्वग्रीव को पराजित कर उसके सारे राज्यको अपने राज्यमें मिला लिया था। इस बात का विशेष उल्लेख श्री वीरचरित्र भगवान महावीर के पूर्वभवों का परिचयमें पाठकों को मिलेगा।

ग्यारहवें तीर्थंकर के निर्वाणपद प्राप्त कर लेने के चौपन सागरोपम के पश्चात् फाल्गुन कृष्ण १४ के दिन चम्पापुरी नाम की नगरीमें बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्यजी का जन्म हुआ। इनके वसुदेव पिता और जयदेवी माता थी और यह उन्ही के राजा गर्न

थे । भगवान् वासुपूज्यने अठारह लाख पूर्वतक संसार में रह कर फाल्गुन कृष्ण १४ को आपनी ही राजधानी के उपवनमें दीक्षा ग्रहण की उसके बाद माघ शुक्ल २ को इन्हें केवल ज्ञान हुवा । इन्होने चोपन लाख पूर्व तक चारित्र पाला । आषाढ शुक्ल १४ को मोक्षपद में पधारे । इन्हों के समय में द्वारिका के राजा ब्रह्मदेवकी रानी सुभद्रासे विजय नामक बलदेव का जन्म हुआ, उमा इसी राजा की दूसरी रानी थी उसके गर्भसे द्विपृष्ट पैदा हुआ दूसरी ओर विजयपुरमें श्रीधरराजा राज्य करता था । श्रीमती उसकी एक रानीका नाम था । इसी श्रीमती रानीसे तारक नामक बालक पैदा हुआ । जिन्होने आगे चलकर प्रति वासुदेव का पद पाया । इसी तारक को युद्ध में पराजित कर और मारकर द्विपृष्ट ने तीन खंड का राज्य पाया और वह दूसरे वासुदेव बने ।

तेरहवें तीर्थंकर श्री विमलनाथजी थे । इनका जन्म बारहवें तीर्थंकर के निर्वाण हो जाने के तीस सागरोपम के पश्चात् माघ शुक्ल ३ को हुआ था । कम्पिलपुरी इनकी जन्मभूमि थी । इनकी माता वहां की रानी थी और पिता राजा थे । कृतवर्मा पिता का नाम और श्यामादेवी माता का नाम था । पैंतालीस लाख वर्ष तक राजपाट का सुख भोगा । फिर भवबंधन से छुटकारा पाने के लिये माघ शुक्ल ४ को अपनी राजधानी ही के उपवन में जाकर उन्होंने दीक्षा ली । पश्चात् पौष शुक्ल ६ को केवल ज्ञान इन्हें हुआ । पन्द्रह लाख वर्षों तक चारित्र पाला बाद में सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके आषाढ कृष्ण ७ को मोक्ष पधारे । जब ये गर्भावस्था में थे, उस समय एक पुरुष अपनी स्त्री को ससुराल से ले कर आ रहा था । मार्ग में एक स्थान पर वह प्यास से व्याकुल हो पानी पीने के लिये उत्तरी । इतने में एकव्यन्तरी उस स्त्री की

भांति रूप बनाकर उस के पति के पास आकर बोली-चलो -यहां ठहरने की जगह नहीं है। इस ठौर व्यन्तरियों का भयंकर प्रचार है। तब तो वह पुरुष और व्यन्तरी शीघ्र ही वहां से चले। इतने में ही उस पुरुष की वह असली स्त्री जो दूर ही से इस सारी बात को देख रही थी, हांपते कांपते उनके पास आई और बोली; अजी मुझ अनाथिनी को इस निर्जन वन में आप कहां छोड रहे हो। आपके साथ जो स्त्री लग गई है वह आपकी स्त्री नहीं है। अब तो व्यंतरी ने अपने वचनों को सत्य सिद्ध करने के लिये समय विचारा और तत्काल ही उस पुरुष के प्रति बोली-मैंने जो कहा था वही हुआ ना अब भी यहां से जल्दी निकल भागो नहीं तो जीना भी कठिन हो जायगा। इस आश्चर्य वाली बात को देखकर वह बडा भयभीत हो गया एवं असमंजस में भी पड गया। वह वहां से चलने की तैयारी ही में था कि इतने में उसकी असली स्त्री ने उस व्यंतरी का हाथ पकड लिया, तब तो दोनों परस्पर वाद विवाद करने लग पडी कि मैं हूं मुख्य स्त्री और दूसरी कहती है कि मैं हूं मुख्य स्त्री। ऐसा कहकर हाथा पाई करने लगी, अंत में वह पुरुष न्याय की याचना करने के लिये उन दोनों को राजा के पास ले गया और सारा वृत्तांत कह सुनाया, उन का रंग ढंग बोलचाल एक सा देख-कर राजा भी आश्चर्य में पड गया कि न्याय क्या दिया जाय। अंत में राजा ने रानी को यह बात कही दूसरे दिन रानी ने उसका ठीक न्याय कर दिया।

भद्र नाम का बलदेव इन्हीं का समकालीन था। द्वारावती के राजा रुद्र और उनकी रानी सुभद्रा उनके माता पिता थे। स्वयंभु नामक वासुदेव का जन्म इसी राजा की दूसरी रानी पृथ्वी के गर्भ से हुआ था। मेरक नामक प्रतिवासुदेव भी पूर्व ज्ञात उसी समय

हुवा था। यह वंदन पुर निवासी और समर केशी राजा के पुत्र थे। माता का सुंदरी नाम था। स्वयंभू मेरक नामक प्रतिवासुदेव को युद्ध में संहार करके तीन खंड के अधिपति बने। यह तीसरे वासुदेव थे।

तेरहवें तीर्थंकर के मोक्ष पधारे ६ सागरोपम व्यतीत हो चुका। बाद में वैशाख कृष्ण १३ को अयोध्या में १४ वें तीर्थंकर श्री अनंत नाथजी का जन्म हुआ। इन्होंने साढे बारह लाख वर्ष राज सुख भोगा फिर संसार के आवागमन से छुटने के लिये वैशाख कृष्ण १४ को उपवनमें दीक्षा अंगीकार की। वैशाख कृष्णा १४ को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। सिंहसेन पिता और सुयशा माता थी। साढें सात लाख वर्ष तक श्री अनंतनाथजी ने दीक्षाव्रत पाला अंत में संपूर्ण कर्म क्षय करके चैत्र शुक्ला ५ को मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

द्वारावती के राजा सोम की रानी सुदर्शना के सुप्रभ नामका बल-देव इन्ही के समय हुआ था। इसी राजा की दूसरी रानी सीता के गर्भ से पुरुषोत्तम नामक चौथे वासुदेव का जन्म हुवा, उस समय पृथ्वी-पुर को विलास राजा गुणवती रानी से पैदा हुआ मधुक नामक प्रति-वासुदेव राज करता था। पुरुषोत्तम वासुदेवने मधुक प्रतिवासुदेव को मारकर तीन खंड का राज किया। चार सागरोपम का समय जब चोदहवें तीर्थंकर को निर्वाण पद प्राप्त किये हो गया तब माघ शुक्ल ३ के दिन रतनपुरी नगरी में १५ वे तीर्थंकर श्री धर्मनाथजी का जन्म हुवा, भानु राजा पिता और सुव्रता रानी माता थी। अनुमाने नौ लाख वर्ष तक संसार में रहे। रतनपुरी के उपवन में दीक्षा ग्रहण की। माघ कृष्ण १३ को दो वर्ष के आसपास दीक्षा को हुवे ही होंगे तो पौष शुक्ल १५ को केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई। एक लाख वर्ष

चारित्र का पालन किया अंत में कर्म क्षय करके ज्येष्ट शुक्ल ५ को मोक्ष पधारे। इन्हीं के समय अश्वपुर के राजा शिव के दो रानियों से दो पुत्र पैदा हुए। विजिया के गर्भ से सुदर्शन बलदेव और अम्बिका के गर्भ से पुरुषसिंह नामक पांचवे वासुदेव हुए। और हरिपुर में निशुम्भ प्रति वासुदेव हुआ। पुरुष सिंहने निशुम्भ को मार के तीन खंड का राज किया।

पंद्रहवें तीर्थंकर के पश्चात् और सोलहवें तीर्थंकर के पहले श्रावस्ती नगरीमें राजा समुद्र विजय की भद्रा रानीके गर्भसे माधवा नामक तीसरे चक्रवर्ती का जन्म हुवा। इनके मोक्षमें जाने के कुछ समय बाद हस्तिनापुर में अश्वसेन राजा सहदेवी रानीके संतकुमार सम्राट ४ चौथे चक्रवर्ती हुऐ।

पंद्रहवें तीर्थंकर के मोक्षमें जाने के पौन पल्योपम न्यून तीन सागरोपम के पश्चात् ज्येष्ठ कृष्ण १३ को शांतिनाथजीने गजपुर में विश्वसेन राजा पिता और अचिरादेवी रानी माता के यहां जन्म लिया। आप पांचवें चक्रवर्ती हुए। ७५ हजार वर्ष गृहस्थमें रहे फिर एक वर्ष दान देकर नगरी के उपवन में ज्येष्ठ कृष्णा ४ को दीक्षा ली। अनुमान १ वर्ष के वाद पौष शुक्ल ९ को केवल ज्ञान हुआ। आप १६ वें तीर्थंकर हुए। २५ हजार वर्ष तक दीक्षा पाली। अन्तमें सर्व कर्म क्षय करके ज्येष्ठ कृष्णा १३ को मोक्षमें गये।

श्री शान्तिनाथजी सोलहवें तीर्थंकर के निर्वाणकाल के आधा पल्योपम का समय वीत जाने के पश्चात् गजपुर में सूर राजा और श्री नामकी रानी से वैशाख कृष्ण १४ को सतरहवें तीर्थंकर श्री कुंथुनाथजी का जन्म हुवा। आप इकहतर हजार दोसो पचास वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे। पश्चात् गजपुर के उपवन में चैत्र कृष्ण ५ को दीक्षा गृहण की।

दीक्षा के १६ वर्ष बाद चैत्र शुक्ल ३ को केवल ज्ञान हुआ। २३ हज़ार सात सो पचास वर्ष तक दीक्षा पाली फिर वैशाख कृष्ण १ को मोक्ष प्राप्त किया। आप तीर्थंकर पद से पहले ६ ठे चक्रवर्ती थे भारत वर्ष के सम्पूर्ण छः खंडो का राज किया।

१७ वें तीर्थंकर को निर्वाण पद प्राप्त किये जब एक करोड़ एक हज़ार वर्ष न्यून पाव पल्लोपम का समय बीत गया तब अगहन शुक्ल १० को गजपुरी में राजा सुदर्शन की रानी देवी देवकी से १८ वें तीर्थंकर श्री अरहनाथजी का जन्म हुआ। आप ६३ हजार वर्ष गृहस्थ में रहे सातवें चक्रवर्ती बनकर छः खंडों का राज किया। पश्चात् अगहन शुक्ल ११ को गजपुर के उपवन में दीक्षा ली। दीक्षा के २०० वर्ष पीछे कार्तिक शुक्ला १२ को केवल ज्ञान हुआ। इक्कीस हजार वर्ष तक चारित्र का पालन किया। अगहन शुक्ला १० को मोक्ष पधारे इनके निर्वाण होने के पश्चात् और उन्नीस में तीर्थंकर के जन्म से पहिले कीर्तिवीर्य राजा तारा रानी माता के सभौम नामा चक्रवर्ती हुआ। ६ खंड का राज किया सातवा खंड साधना की लालसा में समुद्र में डूब के मर गये। सातमी नर्क में जा पहुंचे। इस घटना के कुछ ही समय पश्चात् काशी के राजा अग्निसिंह की रानी जयंतिसे नन्दन नामक सातवें बलदेव दूसरी रानी शीलबी के गर्भ से दत्त नामक सातवे वासुदेव उत्पन्न हुआ और पूर्वजात इनका समकालीन सिंहपुरमें प्रल्हाद राजा प्रति वासुदेव राज करता था। दत्त वासुदेव ने प्रल्हाद को मार कर ३ खंडका राज किया।

अठारहवें तीर्थंकर के निर्वाण पदपाने के एक करोड एक हजार वर्ष पीछे मिथिलानगरी के कुम्भकार राजा की प्रभावती रानी से अगहन शुक्ल ११ को उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लीनाथजी का जन्म

हुआ । सौ बर्ष तक गृहस्थ में रहे । मिथिला के उपवनमें अगहन शुक्ला ११ को दीक्षा ली । उसी दिन केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई तबसे पूरे ५३ हजार ९ सौ बर्ष तक दीक्षा पाली । फाल्गुन शुक्ल १२ को मोक्ष प्राप्त किया ।

चौपन लाख बर्ष समय जब उन्नीसवें तीर्थंकर को मोक्ष पधारे बीत गया तब राजग्रही नगरी में सुमित्र राजा के पद्मावती रानी से वीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी ज्येष्ठ कृष्णा ८ को जन्में । यह साडे बाईस हजार वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे पश्चात् फाल्गुण शुक्ला १२ को अपनी राजधानी के उपवन में दीक्षा ली । अनुमान ११ महिनों के पश्चात् केवल ज्ञान प्राप्त किया । साडे सातसो वर्ष तक दीक्षा पाली। सर्वकर्म क्षय कर के ज्येष्ठ कृष्ण ९ को मोक्ष में पधारे ।

इन्हीं के समकालीन ९ नौवे चक्रवर्ती महापद्म हुवे । हस्तिनापुर नगर पद्मोत्तर राजा ज्वाला रानी माता थी । अन्त में दीक्षा धारन कर के मोक्ष में गये । महापद्म चक्रवर्ती के कुछ ही काल के पश्चात् अयुध्या के राजा दशरथ पिता अपराजिता रानी की कुख से आठवे बलदेव श्री रामचन्द्रजी पैदा हुए । दूसरी रानी सुमित्रा इस का वास्तव में कैकेयी नाम था । परन्तु जब कैकेयी रानी भरत की माता का विवाह राजा दशरथ से स्वयंवर मंडप करके हुआ उस समय दो कैकेयी होने के कारण प्रथम का सुमित्रा रख दिया । इस लिये यह सुमित्रा के नाम से प्रसिद्ध हुई । सुमित्रा के अष्टम वासुदेव श्री लक्ष्मनजी हुवे । (इन को नारायण भी कहते हैं) तीसरी रानी कैकेयी के भरत राजकुमार हुआ । चौथी सुप्रभा रानी से शत्रुघ्नजी हुवे उस समय इन से पूर्व जात लंका पुरीमें राजा रत्नश्रवा पिता और कैकसी माता से पैदा हुवा दशकन्धर राजा प्रतिवासुदेव लंका का तथा तीन खंड का अधिपति था । लक्ष्मणजी रावण को मार और तीन खंड के अधिपति बनें ।

बीसवें तीर्थंकर को मोक्ष में गये छः लाख वर्ष हुवे ही थे कि श्रावण कृष्ण अष्टमी को मथुरापुरी में विजय राजा और विप्रा देवी माता के इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथजी का जन्म हुवा। ९ हजार वर्ष तक गृहस्थ में रहे। फिर आषाढ कृष्ण ६ को मथुरा नगरी के उपवन में दीक्षा ग्रहण की। नौ महिने बाद अगहन शुक्ला ११ को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। एक हज़ार वर्ष तक चारित्र पाला। पश्चात् वैशाख कृष्ण १० को मोक्ष में पधारे।

इक्कीसवें श्री नमिनाथ तीर्थंकर के ही समय कम्पिल नगर में महा हरी राजा मेरा देवी माता के हरीषेण नामक १० वें चक्रवर्ती हुवे। दीक्षा ले यह भी मोक्ष में गये।

इनके कुछ समय बाद राजग्रही नगरी में विजय राजा वप्रावती रानी के जय सेन नामक राज कुमार हुआ और आगे चल कर ग्यारवें चक्रवर्ती जय सेन हुआ। यह भी राज छोड दीक्षा लेकर मोक्ष पहुंचे।

इक्कीसवें तीर्थंकर के निर्वाण पाने के पांच लाख वर्ष के पश्चात् राजा समुद्र विजय की शीवादेवी रानी से श्रावण शुक्ला ५ को २२ वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथजी हुए आप ३०० वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे विवाह न करते हुए एक वर्ष दान देकर अपनी राजधानी के उपवन से श्रावण शुक्ल ६ को दीक्षा ली। ५४ दिन के पश्चात् कुंवार कृष्ण अमावास्या को केवल ज्ञान होगया। सात सौ वर्ष तक दीक्षा पाली। सर्व कर्म क्षय करके, आषाढ शुक्ल ८ को मोक्ष पधारे। ग्यारह वें चक्रवर्ती महाराज जयसेन के निर्वाण के हजारों वर्ष बीत जाने के पश्चात् हरीवंश में यदुनामक राजा हुवा। यदुके शौरी और सुवीर नाम के दो पुत्र हुए। शोरी के पुत्र अंधक विष्णु। अंधक के दश

पुत्र हुए। जो शास्त्र में दशोंदशार के नाम से प्रसिद्ध है। इन दशों मे से छोटे एक भाई का नाम वसुदेव था। वसुदेव की रोहिणी नाम की रानी से नौवें बलदेव बलभद्रजी हुआ। और दूसरी देवकी राणी से नवमें वासुदेव श्री कृष्ण महाराज हुए। दूसरे सुवीर के पुत्रका नाम भोज विष्णु था। उसके उग्र सेन और देवक दो पुत्र थे। उग्र सेन के एक पुत्र कंस, और दूसरी पुत्री राजुलमति नाम की हुई। उधर देवक के देवकी नाम की पुत्री हुई। इसी देवकी का विवाह वसुदेव जी से हुवा था। कृष्ण ने कंस को मारा मथुरा पर अधिकार जमाया ही था कि जरासिंघ के भय से, समुद्र विजय आदि सब दौड भागकर समुद्र के किनारें आये। वहां द्वारिका नगरी बसाई। दशों दशोरां में बडे भाई समुद्र विजय थे। कृष्ण महाराज के चाचा और यही राजा थे। समुद्र विजय की शिवादेवी रानी से बाइसवें तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमिजी जन्में। अरिष्टनेमि भगवान् के पास कृष्ण महाराज के छोटे भाई गजसुकुमाल ने दीक्षा ली और जल्दीही कर्म काट के मोक्ष में पधार गये।

जरासिंघ प्रतिवासुदेव से कृष्ण महाराज का युद्ध हुवा। जरासिंघ को मारकर कृष्ण वासुदेव तीन खंड के राजा बने।

अरिष्ट नेमिके मोक्ष में पधारने के कुछ समय ही पीछे ब्रह्म नामक राजा चुलनी रानी माता के ब्रह्मदत्त का जन्म हुवा। समय पाकर ब्रह्मदत्त बारहवें चक्रवर्ती हुवे। और भोगों से आसक्त बनकर अन्त मृत्यु पाकर सातमी नर्क में गये। जहां उत्कृष्टी तेतीस सागर की उमर है।

बाइसवें तीर्थंकर के मोक्ष में पधार जाने के पौने चौरासी हजार वर्ष के पश्चात् बनारसी नगरी में अश्वसेन राजा रानी वामा

देवी के तेईसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथजी पौष कृष्ण १० को हुए। ३० वर्ष पर्यन्त गृहस्थाश्रम में रहे। बाद में पौष कृष्ण एकादशी को बनारसी के पास उपवन में दीक्षा ली। दीक्षा के चौरासी दिन बाद केवल ज्ञान हुआ। चैत्र कृष्ण ४ को। और सत्तर वर्ष तक संयम पाला। सब कर्म क्षय करके श्रावण शुक्ला अष्टमी को मोक्ष पधारे दीक्षा धारण के बाद देवता द्वारा पार्श्वनाथ भगवान को उपसर्ग हुवा था।

ईसा से ८०० वर्ष पूर्व का अनुमान लगाया जाता है कि ऐतिहासिक लोग गहरी छान बीन के बाद पार्श्व संवत तक पहुंचते हैं।

तेइस २३ वें श्री पार्श्वनाथ भगवान के मोक्ष प्राप्त करने के अनुमान २५० वर्ष के बाद श्री महावीर स्वामी मोक्ष में पधारे। क्षत्री कुंड नगर में सिद्धार्थ भूप एवं त्रिशला देवीजी के कुख से महावीर का जन्म हुवा। तीस वर्ष पर्यंत गृहस्थाश्रम में रहे। बाद में संयम लेकर साढे बारह वर्ष तक घोर तपस्या करके कर्म नाश किये। केवल ज्ञान को प्राप्त किया। बहत्तर वर्ष की आयु भोगकर मोक्षपद को प्राप्त किया। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के रोज आपका जन्म एवं कार्तिक अमावस्या को मोक्षपद प्राप्त हुआ।

चौवीसवें धर्मावतार श्री महावीर स्वामी के मोक्ष प्राप्त करने के पश्चात् हुवे राजोंका वर्णन। श्री महावीर स्वामी के निर्वाण के दूसरे ही दिन अवंती नगरी में पालक का राज्याभिषेक हुवा। पालकने ६० वर्ष राज किया। पश्चात् १५० वर्ष नंदोंने राज किया। १६० वर्ष मौर्योंने राज किया। ३५ वर्ष पुष्प मित्रने राज किया। ६० वर्ष बल मित्र भानुमित्रने राज किया। ४० वर्ष नभसेनने राज किया। १०० वर्ष गर्धभिल्लोका राज रहा। पश्चात् शक राजोंका राज हुवा। श्री महावीर स्वामि के निर्वाण हुए ६०५ वर्ष बीतने बाद शक राजा उत्पन्न हुवा।

भरत क्षेत्र के वर्तमान प्रसिद्ध......१२ चक्रवर्ती।

इस भरत क्षेत्र के छः विभाग हैं, दक्षिण मध्य भागको आर्य खण्ड व शेष ५ को म्लेच्छ खण्ड कहते हैं। कालका परिवर्तन आर्य खण्ड में ही होता है। म्लेच्छ खण्डों में दुखमा सुखमा कालकी कभी उत्कृष्ट और कभी जघन्य रीति रहती है। जो इन छः खण्डों के स्वामी होते हैं उनको चक्रवर्ती राज़ा कहते हैं। चक्रवर्ती के चौदह रत्न होते हैं। जिस में सात एकेन्द्रिय रत्न अचेतन होते हैं। १ सुदर्शन चक्र, २ छत्र, ३ दण्ड, ४ खंग, ५ मणि, ६ चर्म, ७ काकिनी, सात पंचेन्द्रिय चेतन रत्न होते हैं १ सेनापति, २ गृहपति, ३ शिल्पी, ४ पुरोहित, ५ पटरानी, ६ हाथी, ७ अश्व नौ निधान होते हैं १ काल, २ महाकाल, ३ नैसर्व, ४ पाण्डुक, ५ पद्म, ६ माणव, ७ पिंगल, ८ शंख, ९ सर्वरत्न। जो क्रम से पुस्तक असिमसी साधन, भाज्जन, धान्य, वस्त्र, आयुध, आभूषण वादित्र वस्त्रों के भण्डार होते हैं। इन सब के रक्षक देवता हैं। बतीस हजार देश और बतीस हजार मुकुटबंध राजा इन्हों के आधीन होते हैं। बतीस हजार देवता आधीन होते हैं, बतीस हजार रानियां, बतीस हजार दासियां यह वास्तव में रानियां ही होती हैं प्रथम बतीस हजार रानियों से इन का दर्जा कुछ मध्यम होता है। इस लिये ६४००० रानियां होती है। बतीस प्रकार के नाटक तीन सौ साठ रस हुए। अठारह श्रेणि प्रश्रेणि आदि राजे, चौरासी लाख अश्व, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख संग्रामी रथ, चौरासी लाख विकट गाड़ियां, विमानादि का समावेश है। छियानवे करोड पदाति सेना, बहत्तर हजार राजधानी, छियानवे करोड ग्राम, निन्यानवे हजार द्रोणमुख जैसे, बम्बई, कराची आदि आजकल हैं ऐसे नगर, अडतालीस हजार पटन तिजारती नगर जैसे देहली, अमृतसर की तरह, चौबीस हजार

कर्वट सेना स्थान (छावनी), चौवीस हजार मंडल, बीस हजार सोना-चान्दी रत्न लोहादि की खानें, सोलह हजार खेडे, चौदह हजार संवाद, छप्पन हजार अन्तरोदक अखण्ड भरतक्षेत्र का ऐश्वर्य भोगनेवाले को चक्रवर्ती कहते है। छः खण्डों के राजाओं को दिग्विजय के द्वारा अपने आधीन करते हैं और न्याय से प्रजा को सुखी करते हुए राज्य करते हैं: ऐसे १२ चक्रवर्ती २४ तीर्थंकरों के समय में निचे लिखी रीति से हुए हैं।

(१) भरत—ऋषभदेवजी के पुत्र वे बड़े धर्मात्मा थे। एक समय इन को तीन समाचार एक साथ मिले। ऋषभदेव का केवल ज्ञानी होना आयुधशाला में सुदर्शन चक्र का प्रकट होना, अपने पुत्र का जन्म होना। अपने धर्म को श्रेष्ट समझकर पहिले ऋषभदेव के दर्शन किये फिर लौटकर दोनों लौकिक काम किये: भरत ने दिग्विजय कर के भरत खण्ड को वश किया, मुख्य सेनापति हस्तिनापुर का राजा जयकुमार था, छोटे भाई बाहुबली ने इन को सम्राट नहीं माना, तब इन से युद्ध ठहरा। मंत्रियों की सम्मति से सेना की व्यर्थ में जिससे किसी भी प्रकार की क्षति न हो, इस कारण परस्पर तीन प्रकार के युद्ध ठहरे। दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध एवं मल्लयुद्ध तीनों युद्धों में भरत ने बाहुबली से हारकर क्रोधित हो बाहुबली का कुछ विगाड न सका तो भरत बहुत लज्जित हुए। उधर बाहुबली अपने बडे भाई भरत का राज्य लक्ष्मी की निन्दा कर तुरन्त वैरागी साधु हो गया और बहुत कठिन तपश्चरण करने लगे। एक वर्ष तक लगातार ध्यान में खडे रहने से इनके शरीर पर बेलों चढ गई। अन्त में केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पधार गये।

भरत बडे न्यायी थे, इनका बडा पुत्र अर्ककीर्ति (सूर्यकुमार) जिससे सूर्य वंश चला है। काशी के राजा प्रकम्पन ने अपनी पुत्री सुलोचना के संबंध के लिये स्वयम्बर मण्डप रचा। तब सुलोचना ने

भरत के सेनापति जय कुमार के गले में वरमाला डाली। इसपर अर्ककीर्ति ने रुष्ट होकर युद्ध किया और युद्ध में हार गया। चक्रवर्ती भरतने अपने पुत्रकी अन्याय प्रवृत्ति पर बहुत खेद किया और उसको किसी प्रकार की सहायता नहीं दी। भरत बड़े आत्मज्ञानी व राज्य करते हुए भी वैरागी थे।

एकबार एक धार्मिक वक्ताने कहा कि भरत महाराज छः खण्ड जैसे राज्य में महान् आरम्भ करता है और महा आरम्भ करनेवाले की गति नरक होती है। इस बात को भरतजीने भी सुना और उसको समझाने के लिये आपने उसे एक तेल का कटोरा दिया और कहा तू मेरे कटक में घूम आओ किन्तु इस कटोरे में से यदि एक बूंद भी गिरी तो तुझे दण्ड मिलेगा। वह कटोरे को ही देखता हुआ लौट आया महाराजने पूछा कि क्या देखा? उसने कहा कि कुछ नहीं कह सकता क्यों कि मेरा ध्यान कटोरे में था। यह सुनकर भरतने कहा कि इसी तरह मेरा चित्त आत्मापर रहता है। मैं सब कुछ करते हुए भी अलिप्त रहता हूँ। एक दिन प्रातःकाल स्नान करके एवं वस्त्राभूषण धारण करके महाराजा भरत अरिसा भवनमें गये वहां एक उंगली में से अंगूठी गिर गई। विना अंगूठी के उंगली भद्दी लगने लगी तब आपने विचार किया कि यह सब शोभा शरीर की नहीं किन्तु आभूषणों की है। मिथ्या मोह में मुझे क्यों मुग्ध होना चाहिये, ऐसा सोचकर आपने अन्य उंगलियों से अंगूठियां निकालना प्रारम्भ किया। इस से हाथ विशेष भद्दा हो गया। फिर आपने सब वस्त्र और आभूषण उतार दिये। इस से आपको ज्ञान हुआ कि सब शोभा वस्त्रों और अभूषणों की है। शरीर तो असार है ऐसा विचार करते २ आप शरीर की अनित्यता का चिन्तवन करने लगे और शुक्ल ध्यान की श्रेणी तक चढ गये. उसी समय आप के ज्ञनघाती

कर्मों का क्षय हो गया। तथा आप केवल ज्ञानी मुनि बन गये। आप के साथ और बहुत भव्य प्राणियों ने दीक्षा ली और सब ने आत्म कल्याण किया।

(२) सगर—यह अजितनाथजी के समय में हुए। इक्ष्वाकु वंशी पिता समुद्र विजय माता सुबाला थी, सगर के ६०००० पुत्र थे। एक वार इन पुत्रोंने सगर से कहा कि हमें कोई कठिन काम बताइये, तब सगर ने कैलाश के चारों ओर खाई खोदकर गंगा नदी बहाने की आज्ञा दी। वे गये। खाई खोदी तब सगर के पूर्व जन्म के मंत्री मुनि केतु देव ने अपने वचन के अनुसार सगर को वैराग उत्पन्न कराने के लिये उन सर्व कुमारों को अचेत करके सगर के पास आकर यह समाचार कहें कि आपके सब पुत्र मर गये। यह सुन कर सगर को वैराग्य हो गया और भगीरथ को राज्य दे आप साधु हो गये। पुत्र जब सचेत हुए और पिता का साधु होना सुना तो यह भी सर्व त्यागी बन गये।

(३) –मघवा यह चक्रवर्ती सगर से बहुत काल पीछे श्री धर्मनाथ जी को मोक्ष हो जाने के बाद हुए। इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुमित्र और सुभद्रा के पुत्र थे. अयोध्या राजधानी थी, बहुत काल राज्य कर प्रिय-मित्र पुत्रको राज देकर साधु हो तप कर मोक्ष पधारे।

(४) सनत्कुमार–कुछ काल बीतने के बाद चौथे चक्रवर्ती अयोध्या के इक्ष्वाकु वंशीय राजा अनन्त वीर्य और रानी सह देवी के पुत्र आप बडे न्यायी सम्राट् थे, तथा बडे रूपवान थे। एक दिन आपके रूप की प्रशंसा इन्द्र के मुख से सुनकर एक देव देखने को आया, और देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। फिर राजसभा में प्रकट होकर मिलने को गया। उस समय उतनी सुन्दरता में विघ्न देखकर मस्तक हिलाया, सम्राट् ने मस्तक हिलाने का कारण पूछा। उत्तर में देव द्वारा

अपने रूप की क्षण मात्र में ही कम हो जाने की बात सुनकर चक्री को संसार की अनित्यता देख कर वैराग्य हो गया, उसी समय पुत्र देवकुमार को राज्य दे के शिव गुप्त मुनिसे दीक्षा ले तप करके मोक्ष पधारे। तपके समय एक बार कर्म के उदय से कुष्टादि भयंकर रोग हो गये एक देव परीक्षार्थ वैद्य के रूपमें आया और कहा कि औषधि लें। मुनिने उत्तर दिया कि आत्मा के जो जन्म मरणादि रोग हैं यदि उन्हें आप दूर कर सकते है तो दूर करें। मैं आपकी दी हुई अन्य वस्तुएँ लेकर क्या करूँगा? देवने मुनिको चारित्र में दृढ़ देखकर उनकी स्तुति की और अपने स्थान को वापिस चला गया।

(५) १६ वें तीर्थंकर श्री शान्ति नाथजी यह एक दिन दर्पण में अपने दो मुंह देख संसार को अनित्य विचार अपने नारायण पुत्र को राज्य दे साधु हो गये। आठ वर्ष पीछे ही केवली हो अन्त में मोक्ष पधारे।

(६) १७ वें तीर्थंकर श्री कुंथुनाथजी एक दिन वनमें क्रीड़ा गये थे। लौटते समय एक साधु को देखकर वैरागी हो गये। १६ वर्ष तक तप करके केवल ज्ञानी होकर मोक्ष पधारें।

(७) १८ वें तीर्थंकर श्री अरहनाथजी राज्यावस्था में एक दिन शरद्ऋतु में मेघों का आकाश में नष्ट होना देख आप वैरागी हो गये। १६ वर्ष तप कर आरिहन्त होकर उपदेश दे अन्त में मोक्ष पधारे।

(८) संभौम-श्री अरहनाथजी तीर्थंकर के मोक्ष के बाद में हुए। अयोध्या के इक्ष्वाकु वंशीय राजा सहस्रबाहु और रानी चित्रमती के पुत्र थे। आप का जन्म एक वन में हुआ था। इन के पिता सहस्रबाहु के समय में इन के बडे भाई कृतवीर्य ने एक बार किसी कारण

से राजा जमदग्नि को मार डाला। तब जमदग्नि के पुत्र परशुराम और श्वेतराम ने यह बात जान बहुत क्रोध किया। और सहस्रबाहु तथा कृतवीर्य को मार डाला, तब सहस्रबाहु के बडे भाई शांडिल्य ने गर्भवती रानी चित्रमती को वन में रखा यहां संभौम उत्पन्न हुए। वह १६ वें वर्ष में चक्रवर्ती हुए। एक दिन परशुराम को निमित्त ज्ञानी से मालूम हुवा कि मेरा मरण जिस से होगा वह पैदा हो गया है। निमित्त ज्ञानी ने उसकी परीक्षा भी बताई कि जिस के आगे मरे हुए राजाओं के दान्त भोजन के लिये रखे जावें और वह सुगन्धित चावल हो जावें वही शत्रु है। इस लिये परशुराम ने अनेक राजाओं को संभौम के साथ बुलाया। संभौम के सामने दांत चावल हो गये, संभौम को ही शत्रु समझ परशुराम ने संभौम को पकडा। परन्तु उसी समय संभौम को चक्र रत्न की प्राप्ति हुई। इस चक्र से ही युद्ध कर संभौम ने परशुराम को मार डाला। परशुराम सातवीं पृथ्वी के पांथडे में जाकर पैदा हुवा। दिग्विजय कर संभौम ने बहुत काल राज्य किया यह बहुत ही विषय लंपटी था। एकवार इस को एक शत्रु देवने व्यापारी के रूप में बडे स्वादिष्ट अपूर्व फल खाने को दिये। जब वह फल न रहे तब चक्री ने और मांगे। व्यापारी ने कहा कि यह फल एक द्वीप में मिल सकेंगे। आप जहाज पर मेरे साथ चलिये वह लोलुपी चल दिया। मार्ग में उस देवने जहाज को डूबो दिया और चक्रवर्ती खोटे ध्यान से मर कर सातवें नरक में गया।

(६) नव वें चक्री २० वें तीर्थंकर मुनि सुव्रत स्वामी के समय में काशी नगरी के स्वामी इक्ष्वाकु वंशी पद्मोत्तर और ज्वाला रानी के सुपुत्र महापद्म थे। बादलों को नष्ट होते देख वैरागी हो गये और साधु होकर मोक्ष पधारे।

(१०) दशवें चक्री श्री हरिसेण भगवान् नमिनाथ के काल में भोग पुर के राजा इक्ष्वाकु वंशी पद्म और मेरा देवी के सुपुत्र थे। एक दिन आकाश में चंद्र ग्रहण देख आप साधु हो गये तथा अंत में मोक्ष पधारे।

(११) ग्यारहवें चक्रवर्ती जय सेन श्री नमिनाथ भगवान के पीछे और अरिष्ट नेमि के पहिले में कौशाम्बी नगर के इक्ष्वाकु वंशी राजा विजय और रानी वप्रावती के पुत्र थे। एक दिन आकाश में उल्कापात देखकर वैराग्य हो साधु हो गये। तप करते हुए अंत में श्रीसम्मेदशिखर पर पहुंचे। वहां चारण नाम की चोटी पर समाधि मरण कर सिद्धि को प्राप्त हुए।

(१२) श्री अरिष्ट नेमिजी के पीछे और श्री पार्श्वनाथजी के पहले अंतर में चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त हुआ। यह ब्रह्म राजा व रानी चूल देवी का पुत्र था। यह विषय भोगों में फंसा रहा। अंत में मर कर सातवें नरक में गया।

कर्मावतार अर्धचक्री नारायण वासुदेव पद की प्राप्ति होने पर इन्हें सात रत्न प्राप्त होते हैं। वे निम्न हैं।

१ सुदर्शन चक्र
२ अमोघ शंख
३ कौमुदी गदा
४ पुष्प माला
५ धनुष्य अमोघ बाण
६ कौस्तुभमणि
७ महारथ

ये फलवान और महा सुन्दर होते हैं। इनकी ऋद्धि व सिद्धि चक्रवर्ती से आधी होती है। इतिशम

मंगल-प्रार्थना

—x(०)x—

(तर्ज-वालम आय बसो मोरे मन में—

प्रथम नमो देव अरिहन्ता ।— स्थायी

सुरनरमुनि जन ध्यान धरत हैं ।
प्रेमीजन नित नाम रटत हैं ॥
कलकलेश छिन माहिं कटत हैं ।
ऐसो नाम भगवंता ॥ १ ॥

संकट हारी मंगल कारी ।
सर्वाधार सर्व हितकारी ॥
किम वरणूं मैं महिमा तिहारी ।
गाय थके श्रुति सन्ता ॥ २ ॥

दीन दयाल दया के सागर ।
त्रयी गुणधारी जगत उजागर ॥
करही कृपा प्रभु निज भगतन पर ।
सिद्धरूप गुणवन्ता ॥ ३ ॥

"शुक्ल" प्रभु हम शरणागत हैं ।
विद्या बुद्धिवर मांगत हैं ॥
दीनों की बस आपही पत हैं ।
केवल ज्ञान अनन्ता ॥ ४ ॥

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

॥ ॐ असिआउसाय नमः ॥ ॥ परमेष्ठिभ्योनमः ॥

॥ श्री गुरवे नमः ॥

॥ अथरामायणम् ॥

दो नौ.- जिनवाणी नितदाहिने, अरिहन्तसिद्ध जगदीश
परमेष्ठी रक्षा करें, त्रिपद धार मुनीश ॥ १ ॥
श्री जिनवाणी शारदा, नमूं प्रथमहिय ध्याय ।
मनो कामना सिद्ध हो, विघ्नसमूह नस जाय ॥ २ ॥

चौ.नौ.- विघ्नसमूह नस जाय ध्यान, धरते ही जगदम्बाका ।
केवल है आधार श्री, त्रिशला दे सुतनन्दाका ॥
स्वपुरुषार्थ कहां शस्त्र, छेदना कर्म फन्दा का ।
सम्यक् ज्ञान निमित्त, राह दर्शक होता अन्धाका ॥

दौड़— गुरुचरण सिरनाके, सिद्ध ईश्वर को ध्याके ।
बात कुछकहूं पुरानी, क्या गौरव था भारत का
अब कथा सुनो सुखदानी ॥

दोहा— प्रथम शिष्य प्रभुवीरके, इन्द्र भूति शुभ नाम ।
पाठी चौदह पूर्व के, आतम गुण के धाम ॥
प्रसिद्ध थे गोतम गौत्रसे, श्रुतज्ञानमें ऊंचा आसन था ।
हितकारी प्राणीमात्रको, श्री महावीर का शासन था ॥
थे सर्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी, और तीन कालके ज्ञाता थे ।
सिद्धार्थ भूपके राजकुमर, नन्दी वर्धन के भ्राता थे ॥

विशेष ज्ञान के लिये पढो, तुम इनके जीवन चरित्र को।
शान्तवीर रस धरताके, देखो ज्ञान पवित्र को ॥
कुछ प्रश्न पूछने के हेतु, एक रोज श्री गोतम स्वामी।
नमस्कार कर यों बोले, जहां बैठे थे अन्तर्यामी ॥

दोहा— भगवन् ! इस संसार में, कौन है पद प्रधान।
किस पद से निश्चय मिटे, आवागमन तमाम ॥
अवतार कौन कहलाते हैं और क्या क्रम इनके होने का।
क्या सभी परस्पर एकरंग, या फरक है सोने सोने का ॥
वर्तमान में कौन कौन हैं, कर्ममेल धोने वाले।
औरभूतकाल में कौन भविष्य में, कौन कौन होने वाले ॥
कितने कितने अन्तर से, इस काल के सब अवतार हुए
कितने हैं भवधारी इसमें, कितने भव निधि पार हुए।
और काल का भी कुछ भाग पृथक् करके स्वामी दर्शावेंगे
मम इच्छा पूरण करने को, कृपया अमृत वर्षावेंगे।

दोहा— नम्र निवेदन शिष्य का, सुन करके भगवान्।
कृपा सिन्धु फिर इस तरह, बोले मधुर जबान ॥
तीर्थंकर पदको कहा, सबहीने प्रधान।
पाकर यहां विशेषता, पहुंचे पद निर्वाण ॥

अब सुनो एकाग्र चित्त करके, कुछ काल-विभाग बताते हैं
जिस जिस क्रमसे जिस जिस गुणसे, जैसे अवतार कहाते हैं
दश क्रोडाक्रोड सागर का, अबकाल यह अवसर्पणि है
उतसर्पणि इसका बीतगया, आगे भी उत्सर्पणि है ॥

दोहा— प्रति सर्पणि में हुए, होगें हैं अवतार।
त्रिषष्ठी प्रतिकाल में समझो गणितानुसार ॥

धर्मावतार हुवे चौवीस, अब हैं आगे को होवेगें।
सब तारन तरण जहाज आगामी कर्ममैल को धोवेगें॥
बारा भोगावतार हुवे, इस में आगे होगें बारा।
निग्रन्थ बने सो मोक्ष लहें नहीं बास अधोगति मंझारा॥

दोहा— कर्मावतार होते सभी सन्मुख बचे जो शेष।
वरणन करते हैं सभी, जो जो फरक विशेष॥
उक्त कालके हिस्सों में, नौनौ बलदेव कहाते हैं।
यह उत्तम प्राणी त्यागशीलसे, स्वर्ग अपवर्ग में जाते हैं॥
अनुजभ्रात इन के ही क्रमसे, वासुदेव कहलाते हैं।
अपर नाम नारायण जो, दुनियां से नहीं दहलाते है॥
संग्राम में इनसे बढ करके, दुनियां में ना कोई शूरा हैं।
क्योंकि इनका पिछला वांधा, होता नहीं पुण्य अधूरा है॥
पूर्व पुण्य शुभ भोग यहां, यहां का आगे जा पाते हैं।
बलिके द्वारे के अतिरिक्त, ना और कहीं पर जाते हैं॥
इन अष्टादश के पूर्व जात, नौ नौ नारायण होते है।
प्रति वासुदेव, कह दो चाहे, अवसान में सर्वस्व खोते हैं।
वासुदेव के हाथों से ही, क्रम से इनका मरना है।
बलके द्वारे विना इन्हें भी, और नहीं कहीं शरणा है॥

दोहा— इन नौ नौ के ही समय, नौ नौ नारद जान।
भूमंडल के भूपति, करते सब सन्मान्॥
अद्वितीय कलह प्रिय होते, पर होते हैं शुद्ध ब्रह्मचारी।
इनसे जो कोई प्रतिकूल चले, उसकी होती मिट्टी ख्वारी॥
विग्रह करके उपशान्त बनाना, वामे करका खेल सभी।
भ्रात भले जामात बुरे के, बदसे भला ना करें कभी॥

घर घर क्या सब रणवासों तक, ना रोक इन्हें कोई होती है।
और जिसने कुछ विपरीत किया, तो उसकी किस्मत सोती है॥
अन्त्यम् होता है स्वर्गगमन, ब्रह्मचर्य गुण के कारण से।
और वासुदेव संगप्रेम इन्हों का, होता असाधारण से॥

दोहा— जिसने पूर्व जन्म में, किया धर्म हितकार।
रूप ऋद्धि उनको यहां, मिलती अपरम्पार॥
अतुल रूप धारी चौवीस ही, कामदेव अवतार हुवे।
सब कामदेव को जीत जीत, वहुते भव सिन्धुपार हुवे॥
नरनारी क्या शुभ रूप देख, सुर इन्द्राणी मुर्झाती हैं।
किन्तु विषयों में खुचें नहीं, चाहे सुरललना तक चाहती है॥

दोहा— एकादशरुद्र हुवे महाक्रूर अवतार।
जाते आप अधोगति फैलाकर व्यभिचार॥
यह तप जपसे हो भ्रष्ट सभी, खोटे कर्मों में लगते हैं।
फिर अशुभ कर्म भोगन कारण, जाकुम्भिपाकमें गलतेहैं॥
शुभ पुण्यरूप नरतन पाकर, सबक्रूर कर्म में चलते हैं।
अनमोल समय चिन्तामणि तन, खोकर अपने कर मलतेहैं॥

दोहा— धर्म ध्यान शुभ शुक्ल दो प्राणी को सुखदाय।
नाम स्थानादिक, सभी देखो यंत्र मांय॥

---

२४ तीर्थंकर देवों का नाम और लक्षण

१	श्री ऋषभदेवजी	बैलका
२	,, अजितनाथजी	हस्तीका
३	,, संभवनाथजी	अश्वका
४	,, अभिनन्दनजी	कपिका

दोहा— कथन आपका है प्रभु प्रश्न व्याकरण मांय ।
सीता कारण क्षय हुवा महान् जन समुदाय ॥
अष्टम वासुदेव लखन श्री, रामचन्द्र और रावण का ।
हनुमान और सुग्रीव व्राघ सीता का हाल चुरावन का ॥

५ ,, सुमतिनाथजी	चक्रवाक् का
६ ,, पद्मप्रभुजी	कमल का
७ ,, सुपार्श्वनाथजी	साथिये का
८ ,, चन्द्रप्रभुजी	चन्द्रमा का
९ ,, सुविधिनाथजी	नाकु का
१० ,, शीतलनाथजी	कल्पवृक्ष का
११ ,, श्रेयांसनाथजी	गैंडे का
१२ ,, वासुपुज्यजी	भैंसे का
१३ ,, विमलनाथजी	वराह का
१४ ,, अनन्तनाथजी	सेही का
१५ ,, धर्मनाथजी	वज्र दण्ड का
१६ ,, शान्तिनाथजी	हिरण का
१७ ,, कुन्थुनाथजी	अज का
१८ ,, अरहनाथजी	मत्स का
१९ ,, मल्लिनाथजी	कलश का
२० ,, मुनिसुव्रतजी	कछुए का
२१ ,, नेमिनाथजी	कमल का
२२ ,, अरिष्टनेमीजी	शंख का
२३ ,, पार्श्वनाथजी	सर्प का
२४ ,, महावीर स्वामीजी	सिंह का

स्वामिन् है इच्छा सुनने की, वह भी कृपा हम पर होगी।
कौन कौन गये शुभ गतिमें, गतिको को हुए विषम भोगी॥

द्वादश भोगावतार चक्रवर्तियों के नाम

१ भरत चक्री
२ सगर चक्री
३ माधव चक्री
४ सनत कुमार चक्री
५ शान्तिनाथ (तीर्थंकर) चक्री
६ कुन्थुनाथ चक्री
७ अरहनाथ चक्री
८ सम्भूम चक्री
९ महापद्म चक्री
१० हरिषेण चक्री
११ जयनाम चक्री
१२ ब्रह्मदत्त चक्री

कर्मावतार नौ वासुदेव नारायण

१ त्रिपिष्ट
२ द्विपिष्ट
३ स्वयम्भू
४ पुरुषोत्तम
५ पुरुषसिंह
६ पुण्डरीक
७ दत्त
८ विलक्षण—लक्ष्मण
९ कृष्ण महाराज

कर्मावतार नौ प्रति वासुदेव प्रति नारायण

१ अश्वग्रीव
२ तारक
३ मेरक
४ मधु केटक
५ निशुम्भ
६ वल
७ प्रह्लाद
८ रावण
९ जरासिन्ध

नव बलदेव

१ अचल
२ विजय
३ भद्र
४ सुपुत्र

भाइयों में कैसा प्रेम और, मित्रों में क्या मित्रता थी।
पुत्रों में कैसी विनय और, चरित्र में क्या विचित्रता थी॥

---

५ सुदर्शन
६ आनन्द
७ नन्दन
८ पद्म (राम)
९ बलभद्र

नव नारद

१ भीम
२ महाभीम
३ रुद्र
४ महारुद्र
५ काल
६ महाकाल
७ दुर्मुख
८ नर्क मुख
९ अधोमुख

एकादश रुद्र

१ भीमबली
२ जीत शत्रु
३ रुद्र
४ विश्वनाथ
५ सुप्रतिष्ट
६ अन्तल
७ पुण्डरीक
८ अजित धर
९ जितनामी
१० पीठ
११ सात्यकि

चौवीस काम देवावतार

१ बाहुबली
२ अमिततेज
३ श्रीधर
४ दशभद्र
५ प्रसेनजीत
६ चन्द्र वर्ण
७ अग्नि मुक्ति
८ सनत् कुमार (चक्री)

क्या प्रेम था सासु वधु का और पतिव्रता कैसी थी नारी।
सत्यपथपर कैसे मरते थे, कैसे थे दृढ धर्म धारी ॥

९ वत्सराज	१७ हनुमानजी
१० कनक प्रभ	१८ बल राजा
११ मेघवर्ण	१९ वसुदेव
१२ शान्तिनाथ (१६ जिन)	२० प्रद्युम्न
१३ कुन्थुनाथ	२१ नाग कुमार
१४ विजयराज	२२ श्री पालनृप
१५ श्रीचन्द्र	२३ जम्बू स्वामी
१६ राजा नल	२४ सुदर्शन

चर्तुदश कुलकर (मनु)

१ प्रतिश्रुति	८ चक्षुष्मान
२ सम्मति	९ यशस्वी
३ क्षेमंकर	१० अभिचन्द्र
४ क्षेमंधर	११ गंद्राभ
५ सीमंकर	१२ मरुदेव
६ सीमंधर	१३ प्रसेनजीत
७ विमलवाहन	१४ नाभिराजा

द्वादश प्रसिद्ध पुरुष हुए

१ नाभिराजा	७ रावण
२ श्रेयांस	८ कृष्णाजी
३ बाहुबली	९ महादेव
४ रामचन्द्र	१० भीम
५ हनुमान	११ श्री पार्श्वनाथ
६ सीता	१२ भरतेश्वर

दोहा— अष्टमत्रक् अवतारों का जो जो विवरण खास ।
क्रम क्रम से होगा सभी, गति कर्म और वास ॥

भूतकाल के तीर्थकरों (अवतारो) के नाम

१ श्री निर्वाणजी	१३ ,, शिव गणजी
२ ,, सागरजी	१४ ,, उत्साहजी
३ ,, महासिन्धुजी	१५ ,, सानेश्वरजी
४ ,, विमल प्रभुजी	१६ ,, परमेश्वरजी
५ ,, श्रीधरजी	१७ ,, विमलेश्वरजी
६ ,, दत्तजी	१८ ,, यशोधरजी
७ ,, अमल प्रभुजी	१९ ,, कृष्णमतिजी
८ ,, उद्धारजी	२० ,, ज्ञानमतिजी
९ ,, अंगीरजी	२१ ,, शुद्धमतिजी
१० ,, सनमतिजी	२२ ,, भद्रजी
११ ,, सिन्धुनाथजी	२३ ,, अतिकान्तजी
१२ ,, कुसुमांजलीजी	२४ ,, शान्त स्वामीजी

भविष्यकाल के चौवीस अवतारों के नाम

तीर्थंकर के नाम	जिन्होने तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया
१ श्री महापद्मजी	१ श्रेणिक राजा
२ ,, सुर्यदेव	२ सुपार्श्व
३ ,, सुपार्श्व	३ उदय
४ ,, स्वयं प्रभ	४ पोटिल अनगार
५ ,, सर्वानुभूति	५ दृढायु
६ ,, देवश्रुत	६ कार्तिकसेठ
७ ,, उदय	७ शंख श्रावक
८ ,, पेढालपुत्र	८ आनंद

भारत का गौरव दर्शाने को, यह भी एक महाचरित्र है।
कर्तव्य जिसे कहती दुनियां, इस में भी महा पवित्र है॥
शिक्षा प्रद है इतिहास सभी, हर प्राणी को नरनारि क्या।
यदि चातक को ना बुन्द मिले, क्या करे विचारा वारिवाह॥

दोहा— आप्त के उपदेश में, दोष नहीं लवलेष।
आगे मति श्रुति ज्ञानि का, होगा कथन विशेष॥

ग्यारह लाख छियासी सहस्त्र और साढेसौ सात।
वर्ष पूर्व थे विचरते, मुनि सुव्रत जगनाथ॥

---

९ ,,	पोटिला	९	सुनंद
१० ,,	शतकीर्ति	१०	सत्तक
११ ,,	मुनिसुव्रत	११	देवकी
१२ ,,	सत्यभावित	१२	सत्याकी
१३ ,,	निष्कषाय	१३	कृष्णवासुदेव
१४ ,,	निष्पलाक	१४	बलभद्र
१५ ,,	निर्मम	१५	रोहिणी
१६ ,,	चित्रगुप्ति	१६	सुलसा
१७ ,,	समाधि	१७	रेवती
१८ ,,	सम्बर	१८	सथाल
१९ ,,	यशोधर	१९	भयाल
२० ,,	अनर्धिक	२०	द्विपायन
२१ ,,	विजय (माह्नी)	२१	नारद
२२ ,,	विमल	२२	अम्बड
२३ ,,	देवोपपात्त	२३	दासभृत-अमरजीव
२४ ,,	अनन्तविजय	२४	स्वातिबुद्ध

साढे बाइस सहस्त्र वर्ष, वीते थे गृहस्थाश्रम में ।
फिर साढे सात हजार वर्ष, भोगे थे सन्यासाश्रम में ॥
निर्वाण बाद इस भारत में था, विद्यमान इन का शासन ।
सत्य भूति कुल भूषण आदि, मुनियों का था ऊंचा आसन ।

दोहा— पंच परमेष्ठी नमन से, पड़े अरि के त्रास ।
बदला ले अरु सुख मिले, फल निर्वाण निवास ॥

गाना नं. १

शोरोगुल को बंद करके, लो मजा अब इस कहानी का ।
नेकों की नेक नामी और बदों की भी नादानी का ॥ स्थायी
थे भाईराम और लक्ष्मण, प्रेम दोनों प्राणी का ।
जमाना गौर कर देखा, मिला नहीं कोई शानी का ॥
पिता के ऋणको तारा था, जो था कैकयी महारानी का ।
आप वनवास को धाये, तजा सुख राज धानी का ॥
पर कारण ही तन मन धन, से था प्रयोग वाणीका ।
सार यह ही समझ रक्खा था, अपनी जिंदगानी का ॥

चौपाई– जम्बूद्वीप छोटासब मांही । भरत क्षेत्र स्थानक सुखदायी ।
चौथा आरा लम्बी आयु । उसका किंचित् हाल सुनाऊं ॥

दोहा नौ.-आप्त प्रणीत शास्त्रों में, गिनती का शुम्मार ।
संख्या संख्या पल सागर, सब लेवो गुरु से धार ॥

चौ. नौ.-बीस क्रोड़ क्रोड़ सागर का, एक काल चक्र होता है ।
जिसके आधे छः हिस्सों में, यह समय नाम चौथा है ॥
बैतालीस सहस्त्र कम एक क्रोड, का यह आरा होता है ।
हो सर्वज्ञ जीव करनी कर, कर्म मैल धोता है ॥

दौड— वडा होता सुख दाई, नहीं किसी को दुःखदायी ।
भेद इतना होता है वैसा ही फल मिलेजीव को ॥
जैसा कोई बोता है ।

दो.नौ.- यथा काल के क्रम से होते हैं अवतार ।
त्रिपष्ठि के पुरुष सब, पाते भव दधिपार ॥

चौ. नौ–तीर्थंकर चौवीस चक्रवर्ति, वारा ही पहिचानो ।
नौ वलदेव नौ वासुदेव, नौ नौ प्रति नारद जानो ॥
लब्धि धारक मनपर्यय और केवल ज्ञानी मानो ।
विद्याधर सुविशाल शूरमा, वहत्र कला सुविधानो ॥

दौड— चौवीस धर्म देव हैं, वाकी कर्म देव हैं ।
नहीं कुछ पुण्य में खामी, आठों कर्म संहार सभी ॥
होतें हैं मोक्ष के गामी ॥

चौपाई- मुनि सुव्रत जिन वीसवें स्वामी । लोका लोकके अंतर्यामी ।
नमस्कार करि कलम चलाई । निर्विघ्न ग्रन्थ होवे सुखदायी ॥
अष्टम वासुदेव वलदेव । दिन दिन बढता अधिक स्नेह ।

दो-नो—पुरी अयोध्या में हुवे, दशरथ भूप उदार ।
सूर्य वंश में आ लिया, राम लखन अवतार ॥

चौ.नौ.- रामचन्द्र लक्ष्मण सीता । रावण का करुं बयाना ।
थे योद्धा बलवान् वडे । शक्ति का नहीं ठिकाना ॥
वानर वंशी सुग्रीवादिक । का भी सब हाल सुनाना ॥
थे आधीन सब रावण के । पर सत्य पक्ष को जाना ॥

दौड— तीन खण्ड के मांही, फैली हुई थी प्रभुताई ।
अन्त क्या रहा हाथ में, अच्छे बुरे जो किये कर्म ।
वोही ले गये साथ में ॥

दो-नौ- अष्टम त्रक का हाल अब, सुनो लगाकर कान।
मुनि सुव्रत अरिहन्त का, शासन था विद्यमान ॥

चौ.नौ- वीसवें तीर्थंकर के वाद। पैदा का हाल इन्हों का।
आदि अन्ततक जो चरित्र, बतलाना सभी जिन्हों का ॥
घवरावें नहीं आपत्ति से। हो नाम प्रसिद्ध उन्हों का।
पर कारण सहे कष्ट मिला नहीं सुख कोई स्वल्प दिनों का ॥

दौड— सुनो जो मन चित्त लाके। ध्यान एकाग्र जमाके।
यदि होवे चित्त खिलारी। तो सुनने की अभिलाषमत
करो सुनो नरनारी ॥

चौपाई- सच्चे मन से धारे सोई। शिक्षा मिले अरु सम्पत्ति होई।
पावन महानाम अभिराम। सिद्ध हुए सुख आठोंयाम ॥

दो-नौ- जो शूर कर्त्तव्य में, वही धर्म में जान।
पाकर यहां विशेषता, अन्त भेद निर्वाण ॥

चौ.नौ-लक्ष्मण रावण जन्मान्तर में, तीर्थंकर पद पावेंगे।
अष्टकर्म दल को क्षय करके, मोक्ष धाम जावेंगे ॥
अभी देर तक कर्म बन्ध, वल द्वारे भुगतावेंगे।
फिर अनुक्रम से मनुष्य जन्म, में 'शुक्ल' ध्यान लावेंगे ॥

दोड— वारवें स्वर्ग मंझारी, बैठी है जनक दुलारी।
हुकम सब के ऊपर है, सीनेन्द्र हुवा नाम करी ॥
पूर्व करनी दुष्कर है ॥

दो. नौ -राम कथा अभिराम है, तजो निद्रा घोर।
जो जो कुछ वीतक हुआ, सुनो सभी कर गौर ॥

चौ. नौ–सुनो सभी कर गौर, यहां वृतांत सभी बतलाना ।
अद्भुत रंग दमकता था, जो था उस समय जमाना ॥
शूरवीर बांके दुर्दन्ते, घन गर्जात समाना ।
इस को यहां करुं समाप्त, आगे सुनो बयाना ॥

दौड— विपत्ति जो आई है, दृढ बन सभी सही है ।
सुन सुन कर होवोगे गुम, आदि अंत पर्यन्त
सभी धर कर के ध्यान सुनो तुम ॥

चौपाई– भरतक्षेत्र में देश पुरलंका, स्वर्णमयी है कोट दुर्वंका ।
अन्य नाम एक राक्षस द्वीप, अति अनुपमलंक समीप
वर्तमान थे अजित जिनेश, घन वाहन हुए आदि नरेश ॥

दो.नौ.– राक्षस सुत को राज दे, अजित स्वामी पास ।
संयम ले करणी करी, पहुंचे मोक्ष निवास ॥

चौ. नौ–पहुंचे मोक्ष निवास जिन्होंसें, दुःख ने किया किनारा ।
तप जप दुष्कर करनी कर, किया आत्म ज्ञान उजारा ॥
मानिन्द मिश्री मक्खी के, जिन दोनों लोक सुधारा ।
अवसर प्राप्त देख राक्षस, सुतने संयम धारा ॥

दौड— देव राक्षस अधिकारी, आप गये मोक्ष सिधारी
असंख्य हुवे हैं राजा, दशवें जिनवर समय
कीर्ति धवल नरेंद्र ताजा ॥

दोहा— उसी समय उस कालमें, मे धामिदापुर नाम ।
नगर अति रमणीक था, मानो है स्वर्धाम ॥

चौपाई– भूपअतीन्द्र विद्याधर, श्रीमति राणी अति सुन्दर ।
श्री कण्ठपुत्र सुखदाई, गुणमाला एक सुता कहाई ॥

दो. नौ.-रत्नपुरी नगरी भली, पुष्पोत्तर तहाँ राय ।
पुष्पोत्तर सुत के लिये, गुण माला की चाह ॥

चौ. नौ.-गुणमाला की चाह, जिन्होंने मांगी खगराजा से ।
वने परस्पर प्रेम हमारा, तेरा इस नाता से ॥
समझाया नृपने अपनी, अति वुद्धि वाचाला से ।
सन्तोष जनक नहीं मिला, उत्तर अतीन्द्र भूपाला से ॥

दौड़— समझ उसको नहीं आई, लंकपति को व्याही ।
मूल दुःख की यह दाता, 'पुष्पोत्तर खेचर को
सुनकर दिल में अमर्ष आता ॥

दोहा— पुष्पोत्तर की पुत्री, पद्मावती तसु नाम ।
चली सैर करने लिये, हुई जिस समय श्याम ॥

अपनी मस्तानी चाली से, भानु अस्ताचल जाता था ।
उदयाचल से चन्द्रमा भी, शुभ कदम बढाये आता था ॥

इस ओर मध्य भूमण्डल पर, चेरी जन से परिवरि हुई ।
पद्मा मस्तानी जाती थी, जौहर गौहर से भरी हुई ॥

मुखपर लाली थी सह स्वभाव, कुछ सूर्य ने चौचन्दकरी ।
कुछ शशि स्पर्धा के मारेने, अपनी किरण वुलन्दकरी ॥

पत्ती गण गायन करते थे, फूलों ने हंसना शुरु किया ।
यह अवसर देख हवाने भी, अपना वहना तनु किया ॥

पद्मा को स्पर्श करने को, तरुवर भी टान झुकाते थे ।
वह पत्र फूल स्वागत करने को, अपना आप मिटाते थे ॥

एक दूसरे से पहले, वसमार्ग में विछ जाते थे ।
यह सोच अंगना मैला हो, धूली समूह छिप जाते थे

मोर नृत्य कर कूकशब्द से, मीठा वचन सुनाते थे।
जिसने देखा यह पुण्य तनु, सबशोक समूह मिट जाते थे॥
चाली गति हंस निराली सम, गिनगिनकर चरण उठाती थी।
वह चिन्ह कुदरती तनपर थे, सुरललना भी मुर्झाती थी॥

दो.— इसी मार्ग से आ रहा, था सन्मुख श्री कण्ठ।
ठहर बाग तटपर जरा, लगा लेन कुछ ठण्ड॥
शुभ पुण्य रूप वह पद्मा का मुख, श्री कंठने जब देखा।
कुछ सहसा झलक दिखा करके, जा धसी बागमें वह देखा।
यहां मोह कर्म के उदय भाव से, पराधीन हुआ बोला है।
फिर मन ही मन में श्री कण्ठ, अपने मुख से यों बोला है॥

गाना नं. २

कहां गई वह कामिनी, दिल देख मतवाला हुवा।
मोहिनी मूर्त वदन, सांचे में था ढ़ाला हुवा॥
प्यासा इसी के दर्शका, सूर्य भी अस्ताचल खड़ा।
आ रहा इन्दु उधर से, करता उजियाला हुआ॥
देख मुखपर दमकता, दिल में हुआ ऐसा विचार।
इस पुण्य तन के सामने, दोनों का तन काला हुवा॥
शील लज्जा भोला पन, क्या गुण सर्व लक्षण अति।
चमन और संध्या से जिस का, रूप दो वाला हुआ।
किस तरह संयोग अब, इस पुण्य तन से हो मेरा।
पूर्ण हो आशा तो मैं भी, शुभ कर्म वाला हुआ॥

दोहा— मन ही मन में इस तरह, करता रहा विचार।
सेवक जन लख आकृति, बोले गिरा उचार॥

स्वामिन् क्यों सहसा हुआ, चेहरा आज उदास ।
किस कारण लेने लगे, लम्बे लम्बे स्वांस ॥
है प्रकृति अनुकूल सभी के, शोक मोचनी बनी हुई ।
संध्या भी अपना गौरव लेकर, सभी ओर से तनी हुई ॥
वायु कुमार ने मरुत की शोभा, शीतल कैसी रची हुई ।
जिसको लेकर ना चलती पवन, व सुगन्ध कौनसी बची हुई ॥

गाना नं. २

मेरे इस मर्ज की, तुम्हें क्या खबर है ।
यह दौरा मुझे सहसा, आया जबर है ॥
यदि घर चला तो, यह दूनी बढेगी ।
मुझे आता निश्चय ही, ऐसा नजर है ॥
इसी राजधानी में, ठहरेगें कुछ दिन ।
मेरे मर्ज की बस, मुझे ही फिकर है ॥
सिवा एक के बाकी, जावो भिदापुर ।
मिटेंगी यह कुछ दिन, में जो भी कसर है ॥
शुक्ल सत्य जानों, कि दो तीन दिन में ।
चिकित्सा का होवेगा, मुझपर असर है ॥

दोहा.—श्री कण्ठने इस तरह, किया वहां विश्राम ।
ढंग वही करने लगा, बने किस तरह काम ॥
मन ही मन में सोच के, भिदापुर के नाथ ।
कुशल पूछ दर्बान से, मिले प्रेम के साथ ॥
प्रेम देख श्री कण्ठ का, चकित हुवा दर्बान ।
बोला श्री महाराज मैं, हूं निर्धन अनजान ॥

श्रीमान् करना क्षमा, मैंने, श्रीमान् को पहिचाना ही नहीं।
एक निर्धन ने ऐसे प्रेमी, धनवान् को पहिचाना ही नहीं॥

जो रावरंक का मान करे, गुणवान को पहिचाना ही नहीं।
हैं कौन देश के आप रत्न, भगवान् को पहिचाना ही नहीं॥

बोले श्री कण्ठ मैं परदेशी, यहां भूला भटका आया हूं।
विश्राम के कारण ठहर गया, और भूख का अधिक सताया हूं॥

एक श्रमित बटोही परदेशी पर, इतना तुम उपकार करो।
भूखे की भूख मिटा कर तुम, एक अतिथि का सत्कार करो॥

कर भला भला होगा तेरा, मन में ना जरा विचार करो।
उपकार के बदले में भाई, यह पुरस्कार स्वीकार करो॥

दोहा— मोहरें लेकर हाथ में, भूल गया सब ज्ञान।
शीश नवा कर चल दिया, खुशी खुशी दर्बान॥
मोहरें लेकर चल दिया, जब वह पहिरेदार।
प्रेम पत्र लिखने लगे, श्री कण्ठ सुकुमार॥

गाना नं. ४

मन नहीं बस में रहा, जब सुन्दर सूरत देखली।
मोहिनी जादू भरी, एक चंद्र मूरत देखली॥

प्रेम की वीणा लिये, प्रेमी गुणों को गा रहा।
राग की झनकर ने भी, प्रेम की गत देखली॥

चूमते उपवन की चौखट, हैं खडे दर्बान बन।
क्या क्या अनुचित कर्म, करवाती है चाहत देखली॥

वैद्य के आगे न रोगी, रोय तो रोये कहां।
प्रेमप्राणी मात्र की, करता है जो गत देखली॥

प्रेम के सागर में, आशाओं की लहरें उठ रहीं ।
प्रेम वस बुद्धि हुई, कैसी है मदमत्त देखली ॥
प्रेम वस अनुचित, उचित का ज्ञान कुछ रहता नहीं ।
प्रेम के रंग में रंगे, शब्दों की रंगत देखली ॥
देख तेरे दर्शनों की, भीख आये मांगने ।
दिव्य दृष्टि से जभी, दाता की आदत देखली ॥

दोहा— जहां सम्पति तहां पराहुणें, और याचक गणजाय ।
मेघ वहां श्रावण जहां, बर्सन को तहां आय ॥

सास जहां तक जीती है, तब तक सासरा कहाता है ।
तीनों का जहां अभाव वहांपर, कौन कहां कोई जाता है ॥
विद्या वचन वपु वस्त्र, अरु विभव पांच वकार जहां ।
शुक्ल वहां जाना चाहिये, सुन्दर हो पांच वकार जहां ॥
जल रसना दोनों मीठे, दुखियों का दुःख जानते हों ।
शुभ विद्या और मति शोभन, गुण अवगुण को पहिचानते हों ॥
अपने गौरव जैसा प्राणी, बस ओरों का गौरव माने ।
सब काम सरलता का अच्छा, चाहे कोई बुरा भला जाने ॥
कल से यहां बाग तेरे की, आकर घूमन घेरी लाते हैं ।
बस सौ बातों की बात यहीं, अतितर हम तुम को चाहते है ॥
अनुकूल चाहे प्रतिकूल कहो, लिखना यह खास हमारा है ।
इस का ना समझें दोष कोई, जो पहिरेदार तुम्हारा है ॥
यदि उत्तर हाँ में है तो फिर कहना सुनना कुछ और नहीं ।
गर उत्तर नामें तो होनी आगे, कुछ चलता जोर नहीं ॥

दो.— पत्र लिख ऐसा दिया, कर चौतरफी वंद ।
पद्मा का ऊपर लिखा, नाम आप सानन्द ॥

आगे वढकर दिया फैंक, जहांपर वह आती जाती थी।
और संध्या भी अपना सौन्दर्य्य, लेकर सन्मुख आती थी॥

धमकल पहिरेदार उधर से, खाद्यपदार्थ लाया है ।
आगे धरकर मिष्टान्न सभी, श्री कण्ठ को वचन सुनाया है॥

दो.— पांच मोहर से अधिक, यह लीजे सव मिष्टान्न ।
वैठ आप यहां कीजिये, भोजन और जलपान ॥

मेरा शृंगार मुझे दीजे, अपने पहिरे पर डटता हूं।
सव कारण आप जानते हैं, संग खाने से जो नटता हूं।

राजकुमारी की संध्या अव, स्वागत करने आई है ।
फिर हमतो उनके सेवक हैं, आजीविका जिन से पाई हैं।

पराधीन स्वपने सुख नहीं, सत्य किसीने कह डाला ।
कारण यह पूर्व जन्म में नहीं, हमने कुछ शुद्ध धर्म पाला ।

ना किसी मित्र या सज्जन का, स्वागत पूरा कर सकते हैं
यदि परतंत्रता तजें कहीं, तो पेट नहीं भर सकते हैं

दोहा— श्रीकण्ठ-मित्र क्या कहने लगे, भोली भोली बात ।
कभी श्याम दिन रात्री, कभी होय प्रभात ॥

जो भेद नजर आता यहां वेशाक, कर्त्तव्य पूर्व जन्म कैसे
स्वतंत्र और परतंत्र बने, जैसा कोई कर्म करे वैसे ॥

परतन्त्र होकर भी तुमने, सेवा की है चित्त लाकर के
स्वतंत्र कौन कर सकता है, स्वार्थ में मन फंसा करके

यदि कर्म तेरे सीधे होगें, कल स्वतंत्र वन जावेगा ।

क्यों पहिरेदार रहेगा यहां, निज घर में मौज उडावेगा ॥
मित्र जो कह चुके तुम्हें, मित्र का अंग पुगावेंगे ।
अपना चाहे काम बने ना बने, पर बना तुम्हारा जावेंगे ॥

जो पांच मोहर वापिस लेलूं, क्या तुम पर अविश्वासी हूँ ।
विश्राम यहां करने से मैं, वन चुका मित्र संगवासी हूँ ॥

तुझमें मुझमें ना भेद कोई, यदि है तो मन से दूर करो ।
स्वावलम्बन हो बस अपने पर, इस निर्बलता को दूर करो ॥

दो— पद्मा के रथ का सुना, जब सुदूर झंकार ।
धमकल झटपट जा, हुवा पहिरे पर असवार ॥

श्री कण्ठने भी पद्मा के, सन्मुख ही प्रस्थान किया ।
और पैदल चलने की सीमा पर, पद्माने तज यान दिया ॥

आ मेल परस्पर हुवा वहां, कुछ संध्याने रंग वर्साया ।
कुछ वाग दुतर्फी फल फूलों, ने भी अपना रंग दर्शाया ॥

कुछ श्री कण्ठ के चेहरे का, पहिले ही रंग गुलाबी था ।
कुछ संध्यारंग से और खिल गया, सन्मुख अर्चीमाली था ॥

लक्षण व्यञ्जन गुण अवगुण, विद्या के दोनों ज्ञाता थे ।
संयोग मिलाने वन बैठे, मानों शुभ कर्म विधाता थे ॥

दो— आकार और आभ्यन्तर में, जैसी चेष्टा होय ।
भाषा नेत्र विकार से, जाने बुद्धि जन कोय ॥

वस एक दूसरे के अन्तर्गत, मन भावों को भास गये ।
कुछ मेरा हैं अनुराग इसे, उस को मेरा यह याच गये ॥

कुछ पूर्व जन्म का प्रेम, और आयु भी कुछ स्वीकारती है ।
कुछ लक्षण व्यंजन आकर्षण, शक्ति भी हाथ पसारती है ॥

चरित्र मोहिनी कर्म उदय, जिस प्राणी का जब आता है।
उस काम से लाख यातन करने पर, भी नहीं हटना चाहता है ॥
मन का मन साक्षी होता है, यह उदाहरण भी जाहिर है।
जो मर्ज थी श्री कण्ठ को यहां, पद्माना उस से वाहिर है॥

दो.— दोनों निज रस्ते लगे; भाव हृदय में धार ।
राजकुमारी जा धसी, अपने बाग मंझार ॥

गाना. नं. ५

मनोहर रूप पर मोहित ये, तबियत होई जाती है
अनोखी देखकर रचना को, उल्फत होई जाती है ।
अगर आज्ञा बिना स्वामीके, वस्तु लेना चोरी है ।
मनोहर मूर्ती से यों, महोब्बत होई जाती है ॥
यदि मांगू मैं राजा से, नहीं मानेगा हट धर्मी ।
हुआ अपमान जिसका उसको, नफरत होई जाती है ॥
मेरी शक्ति नहीं ऐसी, कि मैं बल से उसे जीतूं ।
शुक्ल निर्बल पुरुष को, छल की आदत होई जाती है॥

दो.— करता करता जा रहा, निज विचार श्रीकण्ठ ।
इधर आईये बाग में, लगे जरा कुछ ठण्ड ॥
पद्मा की दृष्टि पडी, उसी पत्र पर जाय ।
आज्ञा या चेटी दिया, उसी समय कर लाय ॥
जब पढ़ा पत्र सहसा विचार, चक्कर मस्तक मे घूम गया
या यों कहिये कि श्रीकण्ठ के, सिरसे बुरा मवसूम गया।
निवास गृह में जा वैठी, चेरी जन को निज काम लगा
ले हाथ लेखिनी कागज पर, उत्तर लिखने लगी ध्यान जमा।

— स्वस्ति श्री सर्वोपमा, गुणिजन में प्रवीण ।
आकर्षण गुण लेखने, लिया कलेजा छीन ॥

संबंध सभी पीछे होगा, पहिले परिचय करानेसे ।
कोई कष्ट पड़े उसको सहनेमें, अपना साहस बढ़ाने से ॥
कर्तव्य जो हो अपना उसपर भी, दृष्टि जमा लेनी चाहिये ।
प्रकृति मिले परस्पर परीक्षा, लेनी और देनी चाहिये ॥
क्या नाम आपका धाम सहित, और किसके राज दुलारे हो ।
अर्धाङ्गनी है कौन आपकी, याकि अभी कुंवारे हो ॥
आसान सभी कर्तव्य कठिन, होता दिल लेना देना है ।
मन मिले बिना क्या कहो आप, कब प्रेमका दरया बहना है ॥
अनमेलसे मेल मिला लेना, बुद्धि मानी से बाहिर है ।
बिगडे पप कांजी की छींट पड़े, यह भी मिसाल जग जाहिर है ॥
सिक्कसे मेल मिला करके, सोना निज गौरव खोता है ।
उस बीजका नाश निशंक बने, जो कि कल्लरमें बोता है ॥
बिन सोचे जो कोई काम करे, सोही पीछे फिर रोता है ।
जो द्रव्यकाल अनुसार चले, सोही जन विजयी होता है ॥
आशा निश्चय पूरी होगी, अनुमान नजर यह आते हैं ।
पर उद्यम सबका मूल यही, सर्वज्ञ देव बतलाते हैं ॥
यह बात सोचने वाली है, स्वार्थ ना कोई निकल आवे ।
सब रंग भंग हो जाय यदि, कोई समस्या निकल विकट आवे ॥
जो भी कुछ करना बुद्धिमानको, प्रथम सोच लेना चाहिये ।
आ स्वार्थ के अंकुरों को, हृदयसे नोच देना चाहिये ॥

— सज्जन ऐसे चाहिये, जैसे रेशम तन्द ।
धागा धागा खण्ड हो, कभी ना छोडे बंध ॥

से सज्जन परिहरो, जैसे अर्कज फूल ।
ऊपर लाली चमकती, अन्दर विषका मूल ॥

नीति और व्यवहार की दृष्टि, से कुछ लिखना पड़ता है।
पर प्रेम संस्कारी सबको तज, निश्चय आन जकड़ता है॥
किन्तु फिर भी व्यवहार मुख्य, लिये सबके खास जरूरी है।
खाली निश्चय पर तुल जाना, यह भी तो एक गलती है॥
व्यवहार यदि दुनियाँ का साधा, जावे तो क्या हानि है।
क्यों कि फिर मात पिता की भी, इच्छा होवे मन मानी है॥
इस तरह परस्पर दोनों की, व्यवहारिक शादी हो जावे।
प्रतिकूल में ऐसा संशय है, कोई जान मान ना खो जावे॥
बस इत्यलं कर के प्रतीक्षा, एक आप के दर्शन की ।
यह ख्याल ना करना इच्छा है, पद्मा को उत्तर प्रश्न की॥

दो.— ऐसा लिखकर लेख बस, किया बंध तत्काल ।
धमकल को बुलवा लिया, समझाने को हाल ॥

धमकल पहिरे दार शीघ्र, पद्मा के पास सिधाया है ।
और विनय सहित अपना मस्तक, भूमि तक आन निमाया है॥
कुछ बनावटी निज मुख मंडल, पद्माने भी मुर्झाया है।
सब बात पूछने के कारण, यो मुखसे वचन सुनाया है।

दो.— क्या कोई आया यहां, सच सच कहो बयान ।
झूठ ना कहना तनिक भी, समझ मुझे अनजान ॥

सत्य कहने वाले की परीक्षा, सत्य के ही आधारपे है
और मृषा भाषण वाले के लिये, दण्ड भी इस संसार पै है।

कोई जाता जाता जैसा भी, देखा हो वैसा बतलावो ।
यह सत्य सभीको अच्छा है. तुम भय ना कोई मनमें खावो ॥

दो.— जी हां आया था यहां, मनुष्य अपरिचित आज ।
व्यञ्जन लक्षणों का जिसे, मिला सभी शुभ साज ॥

सुन्दर सभी अवयव और तन था, सांचे में ढला हुआ ।
मालूम मुझे होता था जैसे राज, भवन में पला हुआ ॥
रसनामें जिसके आकर्षण, शक्ति थी मानों भरी हुई ।
और क्रोध लोभ मदमाया की, थी शक्ति सारी जरी हुई ॥
परिचित नहीं होनेसे भी वह, परिचित से ही बन जाते है ।
अवकाश मिले नहीं पूछन का, बस प्रेम बीच सन जाते हैं ॥
आतेही प्रसन्न बदन होकर, मुझको पागल सा कर डाला ।
देखने में सौम्य मूर्ति उन्नत, मस्तक तनु कमर वाला ॥
पहिरे पर आप खड़े होकर, मुझसे कुछ खाद्य मंगाया था ।
चल दिये यहां से आपके रथने, जब झंकार सुनाया था ॥
कुछ और मुझे मालूम नहीं, था कहां का कहांसे आया था ।
बस उसकी छांया का मुझपर, बेशक जादूसा छाया था ॥

दो.— (पद्मा) यह लो पत्र गुप्तही, रखो अपने पास ।
गर उनको यदि ना मिले, देना मुझको खास ॥
इतना कह कर के गई, पद्मा निज आवास ।
श्रीकण्ठ अगले दिवस, पहुंचा धमकल पास ॥

श्रीकण्ठ आगे कल की, जो थी सो सारी बात कही ।
पत्रिका राजकुमारी की, फिर राज कुमार के हाथ दई ॥

वह पत्र पढते ही सारा, वस हृदय कमल प्रकाश हुवा।
क्योंकि जिस काम की आशा थी, वह काम एकदम पास हुवा॥

पुण्योदय धनकल को भी, मिल गया द्रव्य खुश हाल हुवा।
चल दिये वहां से पद्मा के, आने का संध्याकाल हुवा॥

दोहा— अपना लिया सजा तुरत, शुभ श्रीकण्ठ विमान।
पहुंची यहां निज वाग में, पद्मासाभिमान॥

पृछ संतरी से वीतक, वातें अन्दर प्रवेश किया।
मीठी रसना के वने दास, कुछ लालचदे उपदेश दिया॥

प्रतिज्ञा करने से पहिले, श्री कण्ठ वागमें आ पहुंचा।
और मेल परस्पर होनेसे, पहिले निज कर्तव्य को सोचा॥

दो.— देखी जव श्री कण्ठने, पुण्यश्री यह खान।
उपमा मिलती ही नहीं, कैसे करे व्याख्यान॥

पद्मा थी वेशक चन्द्रसा, श्री कण्ठ न भानु से कम था।
यदि वह थी सुवर्ण की मुद्री, यह भी न नगीने से कम था॥

मानो थी सांचे में ढाली, पर यह भी नक़शकमें सम था।
प्रेम संस्कारी दोनोंका, एक दूजे से विषम ना था॥

जव सहित वीररस के सहसा, उस काम देव तन को देखा।
लज्जासे ग्रीवा झुका लई, और तिरछे चितवन से देखा॥

लक्षण व्यंजन देख फेर, ना पूछन की दरकार रही।
स्वर व्यंजन लक्षण के ज्ञाता, कुछ कहते वारम्वार नहीं॥

दो.— जो मतलव की वात थी, वतलाई तत्काल।
पद्मासे कहने लगा, इस कारण का हाल॥

निश्चय अपना और तेरा, घटा रहा हूँ मान।
इसका भी कारण सुनो, जरा लगाकर कान ॥
मेघाभिदापुर नगर है, अतीन्द्रपिता भूपाल ।
श्री कंण्ठ मम नाम है, श्रीमती शुभ मात ॥
वहिन मेरी गुण माला जो कि, पिता तेरे ने मांगी थी।
पर तात मेरे ने अति बहुत, कहने पर भी ना मानी थी ॥
उसी दिवस से जनक तेरा, हम से विरुद्ध है बना हुआ।
और शक्ति में भी अपने से, हमने तेजस्वी गिना हुआ ॥
वस कारण केवल एक यही, तुम को ऐसे लेजाने का।
और ऐसा किये बिना निश्चय, दिल को सन्तोषन आने का ॥
अब जानकी साथ न सच्ची होतो, जल्द विमान में चरण धरो।
कैसे होगा क्या वीतेगी, इसका नारंचक भर्म करो ॥
दे चुका तुम्हें दिल क्षत्री हूं, मुझ से ना शंका शर्म करो।
क्षत्राणी होना तुम भी तो, निर्भय होकर के निज कर्म करो ॥
जब तक ना आप का दिल होगा, तब तक ना कभी ले जाऊंगा।
कर चुका संकल्प तन मन धन, अपना तुम को दे जाऊंगा ॥
यदि अब ना तो परभव में तुमको, अवश्य मानना होवेगा।
तुम पछताओगे वारवार, परिवार मुझे सब रोवेगा ॥
कुछ जोर जफा ना तुम पर है, ना गिला हमें कुछ होवेगा।
पर नींद हमेशा की बन्दा भी, इसी बाग में सोवेगा ॥

दोहा— पद्मा ने ऐसा लखा, श्री कण्ठ का प्रेम।
और विशेष पिघल गई, ग्रीष्म में जिम हेम ॥

वशी करण के मंत्र हैं, दुनियां में यह चार ।
रूप, राग और नम्रता, और सेवा भली प्रकार ॥
पूर्व जन्म का था सम्बन्ध, कुछरूप का पारवार नहीं ।
कुछ रसना मीठी श्री कण्ठ की, नरमी का कोई पार नहीं ॥
कुछप्रेम तमाचे के समान, दुनियां में लगता सार नहीं ।
बस समझो सभी नमूने से, ज्यादा करते विस्तार नहीं ॥
सब कारण समझे पद्माने, व्यवहार नहीं अबसधने का ।
जो दिल में प्रेम बढ़ा बैठी, वह प्रेम नहीं अवहटने का ॥
विना मुझे इस रस्ते से कोई, मार्ग आता नजर नहीं ।
संयोग है पिछले जन्मों का निश्चय, है इस में कसर नहीं ॥

दोहा— ऊंच नीच सब सोचकर, बैठी तुरत विमान ।
श्री कण्ठ मन सोचता, बना सब तरह काम ॥

दो.— यह पुष्पोत्तर की सुता, पद्मारूप अपार ।
पुण्योदय से मिलगई, इन्द्राणी अवतार ॥

चौ.नौ.— इन्द्राणी अवतार की जिसका, मिलना अति कठिन है ।
याचन से देता नहीं भूपका, हमसे उल्टा मन है ॥
किन्तु इस मानव आगे, यह कौन क्रिया दुष्कर है ।
होगा सो देखा जायेगा, अब करो काम जो दिल है ॥

दौड— आज अवसर यह पाया, पुण्य सब मेल मिलाया ।
चलूं अब देरी क्या है, पहूँचूं निज स्थान बजेगी
रण भेरी तो क्या है ॥

दोहा— लात धमुक्के जो सहे, सोपावे जागीर ।
कायर कर सकते ना कुछ, क्षण में होय अधीर ॥

दाबी कला विमान की, सहसा गये आकाश ।
तिरछीकला मरोड के, आये निज आवास ॥

दो.— पुष्पोत्तर को जब हुवा, सुता हरण का ज्ञान ।
आज्ञा पाते ही सजे, जंगी महा विमान ॥

चौ.— जंगी सजे विमान व्योम में, बादल से छाये हैं ।
गिरफ्तार वहां शका में हुवे, नौकर घबराये हैं ॥
गुप्तचरों से भेद सभी पा, इष्ट दिशा धाये हैं ।
श्री कण्ठ था सावधान, यहां भेद सभी पाये हैं ॥

दौड.— तजी रियासत सुख दानी, चली संग पद्मारानी ।
शरण कोई सोच रहा है, कौन बचावे आज हमें वस
ये ही खोज रहा है ॥

दो.— क्रोधातुर लख भूप को, श्री कण्ठ सोचता धाम ।
शरणा दिल में धार के, लंका किया मुकाम ॥

चौ.— लंका किया मुकाम, बहनोई को निज बात सुनाई ।
पडा कष्ट मुझ पर आकर, अब कीजै आप सहाई ॥
इतनी शक्ति कहां मुझ में, जो नृप से करूं लड़ाई ।
उभय पक्ष की लंक पतिने, शुभसम्मिति कराई ॥

दोड— पक्ष के हो आधीना, विवाह पुत्री का कीन्हा ।
किन्तु मन में दुःख पाया, और लाठी जिसकी भैंस
समझ अपना जामात बनाया ॥

दो.— लंकपति कहने लगा, सुन श्री कण्ठ सुजान ।
वास यहां पर ही करो, जाना ठीक न जान ॥

चौ.— जाना ठीक ना जान, वहां पर शत्रु रहते भारी ।
यह शतरंज का खेल, चूक जाते हैं बड़े खिलाडी ॥
बच्चा तू नादान अभी, कच्ची है उमर तुम्हारी ।
शत्रु नीति निपुण तेरी, मिलकर सब करें ख्वारी ॥

दौड़— हृदय विश्वास ना धरना, ध्यान गौरव का करना ।
मुझे है प्रेम तुम्हारा, हितकारी शिक्षा उर धारो,
मानो वचन हमारा ॥

दो.— वानर द्वीप सुहावना, योजनशत तीन प्रमाण ।
राज वहाँ का कीजिये वर्तावो निज आन ॥

चौपाई– भगिनी पति का कहना माना । किष्किन्धा शुभ नगर वसना ॥
निर्मल स्थान अति सुखदाई । महल कोट छवि वरनी ना जाई ॥
वाग वगीचे नदी तालाब । भ्रमण करे मन अति सुखपाव ॥
धर्म कर्म करते सुखपाते । सब के अधिपति अधिक सुहाते ॥
देव गुरू और धर्म सेप्यार । धार मिथ्यात्व निवार ॥

दो.— वानर द्वीप वानर अति, देखे जब भूपाल ।
खुशी हुआ मारो मति, मत फैको कोई जाल ॥
अपनी जैसी जान है, सबके अन्दर जान ।
भोजन पान भण्डार से, देवो खुल्ला दान ॥

नौ. चौ. देवो खुल्लादान, सब जगह वानर चिन्ह कराये ।
इस कारण वहाँके वासीन्दे, वानर नाम कहाये ॥
थे नीति में निपुण, और विद्याधर अधिक सुहाये ।
जंगी चोला शूरवीर, कानों में कुण्डल पाये ॥

दौड़— नृप घर पद्मारानी, पुत्र हुआ अति सुखदानी ।
दान दुःखियों को दीना, वज्र सुकण्ठ दिया नाम
रातदिन रहे सुखों मे लीना ॥

दो.— सिंहासन पर एक दिन, बैठा भूपति आन ।
ऊपर को दृष्टि गई, देखा देव विमान ॥
अष्ट नदीश्वर द्वीपसुर, महिमा करते जाय ।
पीछे ही भूपालने, दिया विमान चलाय ॥

चौपाई- चलत चलत पर्वत पर आया। अटका विमान ना चले चलाया॥
चारों ओर फिर ध्यान लगाया। साधु देख चरण न चित्त लाया॥
समझा यह संसार असारा। बंध मोक्ष का हाल विचारा॥
रजोहरण मुखपती धारी। पुनर्जन्म की गति निवारी ॥

दोहा— वज्र सुकण्ठादिक हुए, अनुक्रम से राजान ।
वीसवें जिनवर के समय, घन वाहन् बलवान् ॥

चौपाई- वानर द्वीप घन वाहन नरेश । लंका में हुवा तडित केश ॥
आपस में है प्रेम घनेरा। शत्रु कोई आवे नहीं नेरा ॥

दो. नौ.-लंकपति गया भ्रमण को, निज नंदन वनमांह ।
थी संग में महारानियां, खेले अति उत्साह ॥

चौ. नौ -खेलें अति उत्साह उधर एक, वानर चलकर आया ।
चपल जात चालाक, झपट कर महारानी पर आया ॥
सहसा झपट पछाड़ तुरत, हृदय पर हाथ चलाया ।
रानी का लिया कुच पकड़, नाखूनी घाव लगाया ॥

दौ.— घबरा रानी चिल्लाई, दौड़ दासी सब आई ।
मचा कोलाहल भारा, सुन राजाने भेद कपिके
बाण खैंचकर मारा ॥

दो.— कपि बाण खाकर भगा, गिरा मुनि के पास ।
शरण दिया नमोकार का, सधं हुआ सुरवास ॥

चौ. नौ.-उद्धि कुमार हुआ देव, जिस समय अवधि ज्ञान में देखा।
किस कारण हुआ देव आन के, चढी पुण्य की रेखा॥
देखा पिछला हाल स्वर्ग के, छोडे सुख अनेका ।
उपकारी मुनि समझ आन कर, साधु सेवा विशेषा ॥

दौड— नृप के दिल रोष अपारा, मारो कपि हुकम करारा ।
देव दिल गुस्सा आया, बानर सेना विस्तार वैक्रिय
चारों ओर फैलाया ॥

दो — बानर सेना देखकर, घबराया गया भूपाल ।
शूर मंगा कर युद्ध किया, बानर दल विकाल ॥

चौ. नौ -बानर दल विकाल देख, राजा की सामर्थ्य हारी ।
मन में किया विचार, कपि दल ने सब फौज विदारी ॥
क्या आपत्ति वानर दल, चहुं ओर अति भयकारी ।
मारे मरते नहीं शस्त्र, आदि सब विद्या हारी ॥

दौड— देव कारण दिल धारा, भाव भक्ति सत्कारा ।
और करी नम्रता भारी, देव नरेन्द्र ने आकर मुनि
आगे अर्ज गुजारी ॥

चौपाई- कर वन्दना पूछे भूपाल । करुणा निधि कहो पूर्व हाल ॥
पूर्व कृत्य नृप बानर जो जो । ज्ञान बले मुनि भाषे सो सो ॥

दो.— मंत्रीश्वर का पुत्र तू, सावस्थी मंझार ।
दत्त नाम तेरा हुवा, धर्मी चित्त उदार ॥

चौ नौ.-धर्मी चित्त उदार, एकदा विरक्त हुवा भोगों से ॥
अनादि काल से पाया दुःख में, जन्म मरण रोगों से ।
श्री जिन धर्म अमूल्य मनुष्य तन, बचूं सभी धोखों से ।
दीक्षा लेकर हुए मुनि, सहे कटुक वचन लोगों से ॥

दौड— रहे सुमति ही ध्यान में, आ निकले तप मैदान में ।
जंग कर्मों से लाया, करते उग्र विहार चला चल नगर
वनारस आया ॥

दो.— देव कपि काशी हुवा, लुब्धक अति पापिष्ठ ।
आ रस्ते मुनि वरहना, अधर्म लगता इष्ट ॥

चौ. नौ.-अधर्म लगता इष्ट, समझ मुनि रोष नहीं कुछ कीना ।
समता दिल में धार, माहेन्द्रसुर पद मुनिवर लीना ॥
भोगे सुख अनेक स्वर्ग के, अमृत रस को पीना ।
जैन धर्म का यही सार रहै, दोनों लोक आधीना ॥

दौड— लुब्धक गया नरक में, आप सुख भोग स्वर्ग में ।
यहां पर हुवा नरेन्द्र, नरक गति के भोग अतुल दुःख
जन्मा आकर बंदर ॥

दो.— वैर वधाने वास्ते, घाव लगाया आन ।
बदला लेने वास्ते, तू नें मारा बाण ॥

चौ. नौ.-तू ने मारा वाण मृत्युपा, देव हुवा वानर है ।
इस कारण संसार महादुःख, उथल पुथल का घर है ॥
कभी नरक तिर्यञ्च, चहुं गति चौरासी चक्कर है ।
सम दम खम जिन धर्म बिना, खाता पिता टक्कर है ॥

दौड— सुना दुःख आवागमन का, वमन किया अनित्य चमन का।
ताज सुकेशी को दिया, संयमव्रत ले तडित केश ने
अक्षय मोक्ष सुख लिया ॥

चौपाई- वानर द्वीप घनोदधि राजा । संयम ले सारा निजकाजा ॥
किष्किन्धी किष्किन्धानायक । लंक सुकेशी अति सुखदायक ॥

दो.— क्षीर नीर सम प्रेम है, दोनों का शुभ ध्यान ।
राज ऋद्धि सुख भोगते, मानों स्वर्ग समान ॥

चौ नौ- मानों स्वर्ग समान, किसी का भय न कोई दिल में है
दिन दिन बढता प्रेम एकता हित, सब ही जन में है
भय खाते हैं आस पास वाले, राजे जितने हैं ।
चहुं ओर रहा तेज फैल, जैसे सूर्य किरणे हैं ॥

दौड— किन्तु नित्य तेज एकसा, रहा नहीं किसी नरेश का
जो होनहार की मर्जी, जीर्ण वस्त्र फटे तो फिरव
करे विचारा दर्जी ॥

॥ इति प्रथमाधिकारः ॥

दो.— पुष्पोत्तर नृप के हुवे, कुल में भूप अनेक ।
यहां सुकेशी के समय, नृप था अश्वनी वेग ॥

चौ नौ -राजा अश्वनी वेग सुरथनु, पुरी राजधानी थी ।
पुष्प सितारा लगा चमकने, शिक्षा सुखदानी थी ॥

तलवार इन्हों की आसपास के, राजों ने मानी थी ।
मध्य खण्ड के उत्तर में, शुभ दिशा भी सुखदानी थी ॥

दौड़— शुभमति चण्डारानी, शर्म खाती इन्द्रानी ।
पुण्य कुछ चढा निराला, थे विद्याधर इस कारण
दवते थे सब भूपाला ॥

चौपाई- पुत्रदोय महा बलवान् । सोहे नृप फल वृक्ष समान ॥
साम दाम आदिक के ज्ञाता । पूर्ण कृत्य कर्म सुखदाता ॥
विजय सिंह और विद्युत्वेग । दोय भुजा राजा की यह ॥
अन्य नगर आदित्य पुर नाम । मन्दिर माली नृप गिरिधाम ॥
तिसके सुता वनमाला नाम । चौंसठ कला सुगुण अभिराम ॥

दो. नौ.-स्वयम्वर एक मण्डपरचा, मन्दिर माली भूप ।
सुता विवाहने के लिये, रचना करी अनूप ॥

चौ नौ.-लिये भूप बुलवाय उपस्थित, हुवे स्वयम्बर घर में ।
भूषित हो वनमाला आई, वर माला ले कर में ॥
दासी चेटी संग सहेली, शोभा लाल अधर में ।
देख रूप विस्मित सब ही, जैसे दामिनी अम्बर में ॥

दौ.— अतिक्रम सब का करके, चित्त किष्किन्धा धर के ।
गलेवर माला डारी, तब विजय सिंहने क्रोधातुर हो
म्यान से तेग निकाली ॥

दो.— दगे बाज कुल में हुवा, दगे बाज ही साथ ।
शक्ति ना अब तेरी चले, देख हमारे साथ ॥

चौ. नौ.-देख हमारे हाथ यदि तू, शूर वीर योधा है ।
बदला सब लेने का मुझ को, मिला आन मौका है ॥

पहूँचा दूँगा परभव को, क्या इधर उधर जोता है।
यह वर माला रखो यहां, कहूं साफ नहीं धोखा है॥

दौड— चूक लड़की ने खाई, चोर गले माला पाई।
न्याय तलवार करेगी, शक्ति ही दुनियां में वर माला
को आज वरेगी॥

दोहा— एकत्रित हो सभी ने, किष्किन्धी लिया घेर।
गर्ज तर्ज हो सामने, बोला ऐसे शेर॥

दो. नौ.-हां मुझको भी आगई, बात पुरानी याद।
बनतेही आये सदा, आप के हम दामाद॥

चौ.— दामाद हमेशा आपके, सब हम बनते ही आये हैं।
खैंच खड्ग अब तक तुमने, गीदड ही धमकाऐं हैं॥
शस्त्र दिखाते जामतों को जरा ना शर्माये हैं।
सहर्ष करेंगे स्वागत रण का, क्षत्री के जाये हैं॥

दौड— जान की साथ न माला, मै हूं इसका रखवाला।
सन्मुख क्यों नहीं आता, पीठ दिखा या रण से कायर
खाली गालबजाता॥

दो— बात बात में बढ़ गई, आपस में तकरार।
रण भूमि में उस समय, बजन लगी तलवार॥

दोहा— (किष्किन्धी का) मैढक सा क्या उछलता, मारुं उदर में लात
पूछ बडों को जाय के, हम तुमरे जामात॥

दो— मित्र घेरा देखकर, लंकपति भूपाल।
जंगी वस्त्र पहिन कर, नैत्र कीने लाल॥

चौ. नौ.–नैत्र करके लाल भूपने, फौजी बिगुल बजाई ।
बन माला भी उस समय, झट किष्किन्धा पहुंचाई ॥
लगा घोर संग्राम होन अति, शूरवीर बलदाई ।
नभ में लड़े विमान महा, घनघोर घटा सब छाई ॥

दौड़— लड़े दिल खुशी अपारा, शूरमा योधा भारा ।
किष्किन्धी नृप के भाई, क्रोधातुर हो विजय सिंह के हृदय सांग चलाई ॥

दो.— विजय सिंह धरती गिरा, देखा तुरत नरेश ।
दृग् मसाल तुल्या करे, दिल में रोष विशेष ॥

चौ. नौ.- अश्वनी वेग ने क्रोधातुर हो, बाण खैंचकर मारा ।
लगा उरस्थल अन्धक के, परभव को किया किनारा ॥
आकाश धरन पर चले, सरासर मानोरक्त फुवारा ।
अग्नि बाण और नाग फांस तम, धुन्द बाण विस्तारा ॥

दौड़— दोनों ओर शूरमें, हुए खाक धूल में ।
लंक किष्किन्धाराई, पराजय होकर दोड भाग दोनों ने जान बचाई ॥

दोहा— अश्वनी वेग ने अरिपर, दल बल दिया चढाय ।
किष्किन्धा और लंक पर, लिया अधिकार जमाय ॥

चौपाई– निरघा तज योधा बुलवाया । राजस्थान पर उसे बैठाया ॥
देश नगर पुरपाटन सारे । यथायोग्य दिये प्रेम अपारे ॥
लंका किष्किन्धा पतिराई । लंका पाताल स्थिति बनाई ॥
यही विचारा समय वितावें । प्राप्त अवसर बदला पावें ॥

दोहा— अश्वनी वेग सहसार को, दिया राज्य का ताज ।
दुनियां से दिल विरक्त कर, सारा आत्म काज ॥

❀ पाताल लंक वर्णन ❀

दोहा— सुकेशी नृप के शिरोमणि, इन्दु मालिनी प्रवीण।
मालो सुमाली मालवान, पुत्र जाये तीन ॥

दो— किष्किन्धा नृप दुसरा, श्री माला शुभ नार।
ऋक्षरज आदित्यरज, पुत्र दो सुखकार ॥

चौ. नौ.-पुत्र दो सुखकार मधु पर्वत पर बास बसाया।
किष्किन्धा नाम दिया जिसका, नीति से राज चलाया।
शक्ति का अवलोकन कर, जंगी सामान बनाया।
बहत्र कला के जानकार, दो पुत्र भूप हर्षाया ॥

दौड— उधर सहसार नृप भारी, चित्त सुन्दरी पटनारी।
अनुपम सुत जाया है, इंद्र दिया तसु नाम तेज इ
वत् कह लाया है ॥

दो.— सुकेशी के सुतों के दिल में रोष अपार।
राज लिये बिन आपना, जीना है धिक्कार ॥

चौ.— जीना है धिक्कार जिन्हों का, राज करे शत्रु होते।
कोई मनुष्य नहीं वह है, मृतक जो देखा दिल में रोते
मानिंद स्वान के रोना है, जो डण्डे खा छिप जासों
पर शूर वीर रण क्षेत्रों में, अपनी यह जान सफल खों

दौड— सहसा करी चढाई, अति उत्साह मन मांही।
निरधा तज नृप घबराया, पराजय करके भगा वि
अपना अधिकार जमाया ॥

दो.— माली लंका अधिपति, किष्किन्धा सुर राज।
बदला लेकर खुश हुए, धराशीश पर ताज ॥

चौ. नौ.-धराशीश पर ताज खबर यह, इंद्र भूप सुन पाई ।
दलवल सवल विमान, सजाकर जंगी बिगुल बजाई ॥
घेर लाया चहुं और से, मेघ घटा सम छाई ।
वैश्रवण को दिया ताज, माली की करी सफाई ॥

दौड़— प्रसन्न मन में अति भारा, आज शत्रु को मारा ।
राज लिया अपना सारा, पाताल लंक में उधर सुमाली
के मन में दुःख भारा ॥

चौपाई—भूप सुमाली पाले लंका । रत्न श्रवायोधा सुतवंका ॥
साधें विद्यावन खण्ड जाई । शक्ति हो फिर कर चढाई ॥

दो.— जय विद्या साधन लिये, पुष्पोद्याने जाय ।
लगें वहां पर साधने, निश्चल ध्यान लगाय ॥

चौ नौ-निश्चल ध्यान लगाय उधर हुवा, हेतु अद्भुत भारी ।
कौतुक मंगलव्योम बिंदु, नृप जिस के दो सुकुमारी ॥
कौशिका विवाही वैस्रवा, को पूर्व जात दुलारी ।
कैकसी पूछावर अपना, तव ज्योतिषी कहे उचारी ॥

दौड़— महाकुसुमोद्यान में, कुमर एक बैठा ध्यान में ।
पति होगा वह तेरा, यदि लगाई देर फेर में
फेर दोष नहीं मेरा ॥

दोहा— इतना सुन कैकसी ने, कहा मात को आन ।
समझाकर आज्ञा लई, पहुंची बैठ विमान ॥
इधर उधर को भ्रमण कर, देखा एक स्थान ।
नल कुबेर सम शूरमा, बैठा लाकर ध्यान ॥
जब पुण्य रूप तनको देखा, तो प्रसन्नता का पार नहीं ।
देख देख मन भरा किन्तु, अभी आँखे हुई दो चार नहीं ॥

क्या सांचेमें ढला जिसम, इन्द्र भी देख शर्माता है।
तब ही यह जन्म सुफल जानूं, हो इससे मेरा नाता है॥

दो — निश्चय मेरा पुण्य भी, है वृद्धि की ओर ।
रूप रंग शुभ वर्णने, लिया चित्त मम चोर ॥

चौ. नौ.-है आशा मुझको आज, मनोरथ मनचिन्ते पाऊँगी।
बिना किये अब बात, यहाँ से मैं ना कभी जाऊँगी॥
निकल गया यदि तीर हाथसे, पीछे पछताऊँगी।
राजी से नाराजीसे, स्वीकार मैं करवाऊँगी ॥

दो.— समाधी जब खोलेगें, तभी मुख से बोलेगें ।
चाहे जितनी हो देरी, अब तो दिल मे ठान लई
बस बनूं चरण की चेरी ॥

दो.— विद्या सिद्ध जब हुई, मानव सुन्दरी आन ।
राज कुमार प्रसन्नचित, खोला अपना ध्यान ॥

चौ. नौ. खोला अपना ध्यान, सामने बैठी राज दुलारी ।
अद्भुत भोलापन मुखपर है, नल कुबेर बलिहारी ॥
चंद्रवदन वरगोल शुल्क, चौदस कीसी उजियारी ।
सदाचार की रेखा भी, मस्तक पर पडी निराली ॥

दौड— अंक में नहीं कसर है, लाल मुख विम्ब अधर है ।
ढलासांचे में तन है, मींच खोल आँख कुमरने सोच
मन ही मन है ॥

दोहा— क्या देवी ने आन के, धारा दर्शक रूप ।
या कोइ नृप कन्यका, अद्भूत रूप अनूप ॥

क्या मेरी परीक्षा लेने, कोई देवी सन्मुख आई है ।
या कोई राज कुमारी जिसने, मुझपर नजर टिकाई है ॥
या शरण वश वनमें आकर, दुःखिया कोई शरण चाहती है ।
क्योंकि यह अबला इस उद्यानमें, साथ रहित दिखलाती है ॥
कर्त्तव्य यही मेरा पहिला, इससे कुछ हाल मालूम करूं ।
यदि निराधार दुखिया कोई, तो सुख इसके अनुकूल करूं ॥
परीक्षा का कुछ कारण है, तो भी मुझको कुछ फिकर नहीं ।
क्योंकि अनुकूल है मन मेरा, प्रतिकूल का कोई जिकर नहीं ॥
यदि है चोला पराधीनतो, आपत्ती कुछ आवेगी ।
पर यहां से तो अब चलना है, होगी सो देखी जावेगी ॥

दोहा.—गुप्त दृष्टि से जिस समय, देखा अबला ओर ।
कैकसी अति खुश हुई, देख मेघ जिम मोर ॥

दो.— कैसे यहां पर आगमन, कौन कहां पर धाम ।
रूपराशि गुण आगरी, क्या है तेरा नाम ॥

चौ नौ.-क्या है तेरा नाम भूप, किसकी हो राज दुलारी ।
कारण क्या वनमें आनेका, कहो सत्य सुकुमारी ॥
साथ रहित हैं आप, या कोई आते और पिछाड़ी ।
सेवा हो मेरे लायक कुछ, सो भी कहो उचारी ॥

कैकसी दोहा.-सिद्ध सभी मेरा हुवा, आई थी जिस काम ।
कृपा और इतनी करें, बता दीजिये नाम ॥

दो.— रत्नस्रवा मम नाम है, पिता सुमाली भूप ।
विद्या साधन के लिये, सही वनों की धूप ॥

चौ. नौ-सही बनों की धूप, कार्य सिद्ध हुआ मम सारा।
चलने को तैयार शेष, यहां काम ना और हमारा ॥
जल्द उचारण करो मेरे, लायक हो काम तुम्हारा।
आती नजर कुमारी हो, ऐसा अनुमान हमारा ॥

दौड— काम मेरे लायक हो, आपको सुख दायक हो।
किन्तु अनुचित ना कहना, एकान्त अन्य सुकुमारी के
संग कर्म ना मेरा रहना ॥

दोहा— अन्य नहीं समझे मुझे, तुम निश्चय ममकंत।
चरण चंचरी वन चुकी, हूं आयु पर्यन्त ॥
मंगल पुरवर नगर व्योम, विन्दु की राज दुलारी हूँ।
मैं आशा एक आपकी पर ही, अब तक रही कुंवारी हूँ॥
बडी कौशिका बहन मेरी, वैश्रमण भूपको व्याही है।
और नाम कैकसी मैंने, तुम चरणों की सेवा चाही है॥

दो.— हाथ जोडकर यह बेनती, हो जावे स्वीकार।
आशा मम दिल को बंधे, आपका हो उपकार ॥

चौ. नौ.-आपका हो उपकार चाह है, वागदान पाने की।
इच्छामेरी प्रबल, आपके चरणों में आने की ॥
अर्धाङ्गिनी लो बना मुझे, बस और ना कुछ चाहने की
कर वाये विन स्वीकार बेनती, मै न कहीं जाने की।

कैकसी गाना नं. ६

सेवा करने की मुझे, आज्ञा तो सुना देना।
वचन देकर के मेरी, आशाको वंधा देना ॥ स्थायी
रूगण वन करके मैं, आई हूँ द्वारे तेरे।
करे जो कष्ट निवारण, वही दवा देना ॥

आशा करके आई हूँ, मैं शरणा लेने ।
निराश करके मेरी, आश ना गवा देना ॥

ताज इस जन्म का, निश्चय माना तुमको ।
यह जो उत्साह मेरा, इसको ना मिटा देना ॥

उत्कण्ठा है मुझे, आशा जनक शब्दों की ।
नांव मंझधार पड़ी, पारतो लंघा देना ॥

आयु पर्यन्त नहीं, आप विना लक्ष्य कोई ।
शुक्ल है ध्यान मेरा, धर्म तुम बचा देना ॥

दोहा.—सुन सुकुमारीके वचन, सोचरहा सुकुमार ।
मन ही मनमें मौन हो, करने लगा विचार ॥
क्या इसको कुछ हो रहा, जाति स्मर्ण ज्ञान ।
या यह रागान्धी हुई, बनी फिरे दुर्ध्यान ॥
कुछ भी हो किन्तु इसका, रंग रूप ही अति निराला है ।
अवकाश समय सुकर्म, कारीगरने सांचेमें ढ़ाला है ॥
और मात पिताने भी इस को क्या लाड प्यार से पाला है ।
वर्तमान में आज अद्वितीय स्त्री रत्न निराला है ॥

रत्नस्त्रवा वहिर शिकस्त गाना नं ७

यात्रा करके भारत की मैंने, चाहे कामिन हजार देखी ।
तो गौरव व चातुर्य रूप लावण्य, इसकी शोभा अपार देखी ॥
भँमर से वालों की गूंथी चोटी, गजव की पटियें झुका रही हैं ।
हेमतारों से गूंथी मोतीन से मांग, दिल को चुरा रही हैं ॥
हस्तरेखाक्या अंगूली सूक्ष्म हैं, सो मन लक्षण स्वभावे तनपर ।
गजव का गौहर करे है जौहर है. राजशान्तिका इसके मनपर ॥

मत्स्योदरी विम्ब अधरी, शशीके सदृश गोल वदना।
चम्पक डालीसी देख वाहों को, शम खाती है देव अंगना॥
है मुख पे लाली दमक निराली, जुलफ नागिनसी कालीकाली।
निडाल बिजली सी चमक आगे, फीकी लगती है सब उजाली॥
कटीले नेत्रौं के तेज वेशाक, हिरण के चित्तमें खटकते होगें।
इस पुण्य तन को देख देख कई, अपने सिर को पटकते होगें॥

शेर— पुण्य इसने पूर्वभव में, है अतुल कोई किया।
जन्म इसमें आनकर, शोभन यह फल इसने लिया॥
अनेकों दर्शक इसकी, चाहना में भटकते हैं।
समय पूर्व ही मार्ग में हुए, बेवल शटकते हैं॥

मिलान.—जैसी पद्मा ये वैसी हमने, ना घर किसी के है नार देखी।
तो शान शोकत व रूप, लावण्य में इसकी शोभा अपार देखी॥

दोहा— अब उत्तर दूं मैं इसे, हां नां में से कौन।
या कुछ और विचार लूं, जरा धार कर मौन॥
बड़ी कौशिका वहिन इसीकी, वैस्रवा को विवाही है।
यह शत्रु परम हमारे की, जो साली यहां पर आई है॥
विद्या सिद्धि वाद मुख्य, आई लक्ष्मी कैसे छोड़ूं।
कोई विघ्न ना डाल देवे शत्रु, सहसा नाता कैसे जोड़ूं॥
समय सोचकर वात करो, बुद्धिमानों का कहना है।
यदि हुई देर तो भेद समझ, शत्रु ने कव यह है सहना है॥
व्योम विन्दु पर भी निश्चय, प्रभाव उन्हीं का होना है।
इस लिये करेंगे धूम धाम, तो मानो सर्वस्व खोना है॥
है निश्चय प्रेम कैकसी का, मम साथ कभी ना छोड़ेगी।
यदि माता पिता ना माने तो, उनका कहना भी मोड़ेगी॥

पर अस्थान मित्रता के नृप से, शत्रु का नाता करना है।
जो होना चाहिये रस ही नहीं, तो फिर क्या साथ पकड़ना है॥
दो दिन में ही सहमत होकर, यदि सब ही कार्य कर लेवें।
तो निश्चय इष्ट हमें होगा, नहीं क्यों आपत्ति सिर लेवें॥
अनुराग इसे यदि पूरा है, तो फिर देरी का काम नहीं।
नहीं पता सभी लग जावेगा कि, प्रेम का नाम निशान नहीं॥

दोहा— क्या कह दूं मैं अब तुम्हें, अपने मुख से भाष।
हां मुश्किल यदि ना कहूं, तो होगें आप उदास॥
किन्तु जो भी कुछ कहना है, सो तो कुछ कह ही देते हैं।
और शक्ति के अनुसार बात, स्वीकार भी हम कर लेते हैं॥
यह सर्व कार्य करने में, केवल दो दिन स्वतंत्र हूँ।
घर गया तो मातपिता जानें, क्योंकि मैं फिर परतंत्र हूँ॥
वचन बद्ध हो चुका मुझे, जल्दी उत्तर मिलना चाहिये।
क्योंकि अब मैंने जाना है, और आप भी निज मार्ग जाइये॥

दोहा— प्रथम कहा जो आपने, हमें वही स्वीकार।
मीनमेख आदि कोई, होगा नहीं विचार॥
पहिर एक बस और आपको, यहां बैठे रहना चाहिये।
अरु लिये हमारे अनुग्रह कर, यह कष्ट उठा लेना चाहिये॥
आज्ञा मुझको देवें अब, कार्य सफल बनाने की।
सब मात पिता से कहूं बात, व्यवहारिक ढंग रचाने की॥

दोहा— आज्ञा ले कैकसी गई, मात पिता के पास।
जो जो इसको इष्ट था, कहा सभी कुछ भाष॥
कुछ पूर्व ले संयोग, ज्योतिषी ने कुछ दृढ बनाया था।
कुछ कैकसी से अनुराग मात क्या व्योम बिन्दु हर्षाया था॥

उसी समय महर्षि कुमर को, राज महल ले आये हैं।
और अति उत्सव से उसी रात को, पाणि ग्रहण कराए हैं॥
दिल खोल के राज कुमारी का, अति धूम धाम से विवाह किया।
अपना जामात बना करके, फिर यथा योग्य धनमाल दिया॥
कुसुमोत्तर नगर बसा के नया, अब खुशी से वहांपर रहने लगे।
पुण्य रति अब चढ़ती है, अपने मुख से यों कहने लगे॥

दोहा — एक समय महारागीजी, पहिन गले फूलमाल।
दृश्य देखती स्वपन में, सुन लो उसका हाल॥

प्रबल सिंह नभ से उतरा, गज कुम्भस्थल को दलता हुवा
अद्भुत लहरें चिंघाड़ शब्द, प्रवेश मेरे मुख करता हुवा।
जब खुली आंख महारानी की, स्वपने पर ध्यान जमाया है
करके निश्चय महाराज पे, आकर सब हाल बतलाया है

दोहा— हाल स्वपन का नृप कहे, सुनरानी मम बात।
पुत्र जन्मेगा तेरे, कटें सभी सन्ताप॥
स्वप्न अर्थ धारण किया, रानी चतुर सुजान।
शत्रु के सिर पग धरूं, गर्भ प्रभाते ध्यान॥
तलवार काढ देखे मुख को, अंग तोड़ मरोड़ दिखाती है
सम्पूर्ण शत्रु नाश करूं, कभी ऐसा शब्द सुनाती है
कभी ऐसा दिल में चाहती है, इन्द्र भूप का ताज हरूं
तीन खण्ड में आन मनाकर, अखिल भूमिका राज करूँ

दोहा — पुत्र जब पैदा हुआ, बरती खुशी अपार।
नाच रंग शोभा अधिक, खुले दान भंडार॥
गिरि बेल मानीन्द पुत्र निर्भय, नित्य वृद्धि पाता है
सर्व सुलक्षण देखदेख कर, जन समूह हर्षाता है।

पूर्व देव भूपेन्द्रने था, नौ माणिक्य का हार दिया ।
वह हार उठाकर राजकुमारने, अपने गले में डाल लिया ॥

दोहा— देख तमाशा पुत्र का, रानी खुशी अपार ।
पकड़ भूप पर ले गई, दिखलाने को हार ॥
स्वामी आभूषण गृह, खोला था इस बार ।
स्वयम् कुमरने हार यह, लिया गले में डार ॥

है देवाधिष्ठित हार आज तक, किसे नहीं पहिना गले में ।
अविनय इसकी करने पर भी, भयखाते थे सब मनमें ॥
मानिन्द पूजन के रक्खा था, यह पहिन खेल रहा लीलामें ।
और नौ प्रति बिम्ब पडे ऐसे, जैसे की दमक आरीसामें ॥

दोहा— छवि देख कर पुत्र की, मन में खुशी विशेष ।
दान पुण्य उत्सव करो, यह मेरा उपदेश ॥
इधर कान लगा करके, अब सुन ले बात कहूँ रानी ।
सुमाली गया था दर्शनार्थ, मुनिज्ञानवन्त भाषीवाणी ॥
यह नौ माणिक्य का हार खुशी से, स्वयम् जो बालक पहिनेगा ।
शत्रु होवें आधीन सभी, और तीन खण्ड में फैलेगा ॥

दोहा— नवप्रति बिम्ब नौ माणिक्य, दशमा सहज सुभाय ।
पिता नाम दश मुख दिया, दशकन्धर कहलाय ॥
अब के रानी स्वपन में, देखा देव विमान ।
सुत जाया तेजेश्वरी, भानु कर्ण तसु नाम ॥
अपर नाम था कुम्भ करण, दिन दिन प्रति कला सवाई है ।
अब बार तीसरा पुत्री का, जो शूर्पनखा कहलाई है ॥
शुकल जरा देखें आगे, यह कैसा रंग खिलायेगी ।
ससुर गृह और पितु कुल, इन दोनों का नाश करायेगी ॥

दोहा— देखा चौथे स्वपन में, सोलह कला निधान ।
ज्योतिषियों का शिरोमणि, ऐसा चन्द्र विमान ॥
जब पैदा हुवा तब देख सुलक्षण, कह राजा सुनले रानी।
शुभ नाम विभीषण देते हैं, सत्यवादी है उत्तम प्राणी॥
यह ऐसा सरल स्वभावी है, हित सर्व मात्र का चाहेगा।
निज पर की गणना नहीं इसके, और सत्य पक्ष चित्त लावेगा॥

दोहा— एक समय दशकन्धर की, दृष्टि गगन में जात ।
आता देख विमान एक, लगा पूछने बात ॥
वृतान्त कहो इसका माता, जो आज सामने आता है।
मेरे आगे कोई चीज नहीं क्यों, इतनी चमक दिखाता है॥
और मेरे मन में आता है, विमान तोड चक चूर करूं।
निज वक्षस्थल के तले दबा, इसका धड़ से सिर दूर करूँ॥

दोहा— प्रभाविक सुनकर वचन, रानी दिल हर्षाय ।
पूर्ववार्ता याद कर, हृदय गया मुर्भाय ॥
झट नेत्रों में जल भर लाई, गद् गद् स्वर से बतलाने लगी।
मुझ भगिनी पति वैश्रवण भूप, दशकंधर को समझाने लगी।
यह स्वाधीन है इन्द्र के, और पुण्य अतिशय छाया है॥
तुम पितामह को मार लंक गृही, राजा इसे बनाया है॥

दोहा— घनवाहन भूपाल से, तुम पितामह पर्यन्त ।
अखण्ड राज्य था लंक का, अब न रहा कुछ तंत ॥
मान महातम्य कहां जिन्हों की, जीते खुस जावे धरती।
आरंभ कहो किस गणना में, उलटी दुनियां निंदा करती॥
अब शुभ दिन वही धन्य होगा, शत्रु की शक्ति तोडेगा।
तब पुत्रवती हूं समझूंगी, संबंध लंक से जोडेगा॥

दोहा— देखूंगी जब अरि को, तुझ कारागर मांह ।
तब ही आतम प्रसन्न मम, इस दुनियां के मांह ॥
कुसुम व्योमवत् सब आशायें, हृदय मेरा जलाती हैं ।
जैसे वागड की प्रजाएं, सब घटा देख रह जाती हैं ॥
क्योंकि शत्रुशक्ति शाली, और पीठ भी जिसकी भारी ।
जो तुमने पूछी बात मेरे हृदय में लगी कटारी है ॥

दोहा— माता की जब यह सुनी, हृदय विदारक बात ।
जननी के यह भाव सब, समझे तीनों भ्रात ॥
तीनों राजकुमार परस्पर, ऐसे जोश दिखाते हैं ।
और उछल गर्ज करके सब ही, माता की धीर बन्धाते हैं ॥
होनहार बालक अपने, भावी कर्त्तव्य बताने लगे ।
क्षत्राणी का दूध पिया था, उसका असर दिखाने लगे ॥

दोहा नौ-विभीषण कहे मातजी, हैं क्षत्री के पूत ।
आशा तब पूर्ण करें, तोही जान सपूत ॥

चौ. नौ-तोही जान सपूत भ्रात दशकन्धर योधा भारा ।
प्रगट होत ही भानु के तारा गण करें किनारा ॥
और साथ में कुम्भकर्ण हैं, वीर महा बलधारा ।
अष्टापद को देख केशरी, झट ही करे किनारा ॥

दौड़.— मात मैं पुत्र तुम्हारा, जन्म इस कुल में धारा ।
गर्ज मैं जब लाऊँगा, मानिन्द बिजली के कड़क
पड़ूं कुम्भस्थल दल जाऊंगा ॥

दोहा— दशकन्धर कहने लगा, दे माता आदेश ।
विद्या आवें साधके, शक्ति बढे विशेष ॥

आज्ञा ले निजमात की, पहुंचे वनमंझार ।
शुद्ध तन मन कर साधली, विद्या एक हजार ॥
भानु कर्णने पांच लई, और चार विभीषणपाई है ।
पञ्चोपवास कर शस्त्र साधा, चंद्र हास बरदाई है ॥
क्षेम कुशल से घर आये, सब दिन दिन कला सवाई है
एक शेर दूजे काटी अब, देख मात हुलसाई है ॥

दोहा— विद्या साधन की विधि, ग्रन्थों से पहिचान ।
कथन यहां पर ना किया, समझो चतुर सुजान ॥
गिरि बैताड दक्षिण श्रेणी, सुरसंगीत पुर जान ।
मय नरेश के सुमती, रानी कला निधान ॥
मंदोदरी कन्या थी जिस के, जैसे नल कुबेर कुमरी
रत्न स्रवा दशकंधर सुत से, नृप ने उसकी शादी करी
अब लगा पुण्य भी बढने को, कोयल सम मीठी वाणी है
शक्रेंद्र के घर इन्द्राणी ऐसे मंदोदरी रानी हैं ॥

दोहा.— एक दिवस गये भ्रमण को, दम्पति बैठ विमान ।
फिरती राज कुमारियां, एक बाग में आन ॥
जब पड़ी नजर दशकन्धर की, विमान उधर को झोंकदिय
फिर उतर पास दो नैन मिला, कर प्रेम भाव सब पूछ लिया
गिरि मेघरथ भूपालों की, पुत्री सभी कहाती थीं ।
और भ्रमण करनको सभी सहेली, इसी बागमें आतीथीं

दोहा.— काम बाण जब लगत हैं, सुध बुध दे विसराय ।
इज्जत डाले धूलमें, यह है काम स्वभाव ॥
यह मात पिता का सभी प्रेम, शीशेकी लीक बनाडारे
और शर्म धर्म को फैंक कूपमें, चित्त आवे सो कर डारे

आपस में सहमत होकर, सबने वहां गन्धर्व विवाह किया।
फिर बैठ विमान में जल्दी से, विमान का चक्कर घुमादिया ॥

दोहा.—पद्मावती के पिता को, लगी खबर जब जाय।
क्रोधातुर राजा हुवा, दल बल दिया चढ़ाय ॥
यह दृश्य भयानक देख महा, पद्मावती दिलमें घबराई।
तब रत्नस्रवा सुतने सन्मुख, हो अपनी शक्ति बतलाई ॥
बिगुल बजा जब संग्रामी, तब शूर वीर ने गर्ज किया।
शत्रु के दलमें भगी पड़ी, नृप नाग फांसमें जकड़ लिया ॥

दोहा— पद्मावती के कथन से, सुर सुन्दर दिया छोड़।
आपस में शुभ मेल कर, लिया सम्बंध सब जोड ॥
महोदय नृप था कुंभ पुराधिप, रानी शुभ नैनावरणी।
थीं विधुत् माला पुत्री, जो कुम्भ करण को है परणी ॥
ज्योतिपुर पति वीर नरेश्वर, नन्दवती की जाइ जो।
पंकजश्री कमलवर नयनी, विभीषण को व्याही वो ॥

दोहा— मंदोदरी के सुत हुवा. महाबली सुख धाम।
लक्षण व्यंजन देख, शुभ इन्द्रजीत दिया नाम ॥
मेघवर्ण सम नयन हैं, दूजा सुत अभिराम।
मेघ वाहन चारु कुमर, मातपिता दिया नाम ॥
जब देखा शक्ति पूर्ण है तब छेड़छाड करवाने लगे।
श्री कुम्भ कर्ण और भ्रात विभीषण, लूट लंक में पाने लगे ॥
फिर वैश्रमण ने भेजा दूत, सुमाली के समझाने को।
जो चाहिये मुझ से मांग लेवो, यदि नहीं तुम्हारे खाने को ॥

दोहा— राजदूत ने जा कहा, नमस्कार महाराज।
अब आज्ञा उनकी सुनो, जो मेरे सिर ताज ॥

महाराजाने फरमाया है, यह त्त्री कुल का धर्म नहीं।
जो लूट मार कर ले जाना, क्या आती तुमको शर्म नहीं॥
जिस जिस वस्तु की चाहना है, ले जावों यहां कुछ कमी नहीं।
कल्यास आपका तभी तलक, जब तक रण भूमि जमी नहीं॥

दोहा— सुनी दूत की जिम समय, रसना कटुक गंभीर।
अर्धचंद्र धक्का दिया, दश कंधर बलवीर ॥
जा कायर धनदत्त को कह दे किसको तलवार दिखाता है।
अब सावधान हो जल्दी से दशकंधर लंका आता है।
रण भेरी जिस समय बजी, सब शूर वीर हर्षाये हैं।
झट उसी समय जा लंका पै, अपने विमान अडाए हैं॥

दोहा— रण में जुट गये शूरमा, पडी लंक में त्रास।
हाहा कार करने लगे, तज जीने की आस ॥
पैदल से पैदल लडते हैं, दारु गोलों का पार नहीं।
कहीं रक्त फुवारे चले सरासरे, दल बल का शुम्मार नहीं॥
शक्ति देख दशकंधर की, शस्त्र योधोंने डाल दिये।
जीत लंक स्वाधीन करी, सब मात मनोरथ सार दिये॥

चौपाई— चर्म शरीरी धनदत्तराया। सम्यक् चारित्र चित्त लाया॥
शत्रु मित्र पर समपरिणाम। तप जप कर पाया सुखधाम॥

दोहा— दशकंधर लंका लई, पुष्पक लिया विमान।
मात मनोरथ सिद्ध किया, पुरुषां यह प्रमाण ॥
भुवनालंकृत गज मिला, नग वैताड के मूल।
यह भी होता रत्न इक, मन इच्छा अनुकूल ॥
अब सुनो जिकर किष्किन्धा का, जहांपर हो रहीं लडाई हैं
सूर्यरज और ऋत्त सुरज, किष्किन्धी त बलदाई है ॥

यम राज उधरथा महाबली, जहां युद्ध अति घनघोर हुवा।
सूर्य ऋक्ष को यमराजाने, कारागार में ठोंस दिया ॥

ोहा— लिये सहायता के तुरत, खेचर बैठ विमान।
रावण से आकर कहा, पहिले कर प्रणाम ॥
महाराज तुम्हारे होते हुए, किष्किन्धी नृप सुत कैद पडे।
अब आप सहाय करो जल्दी, मैदान में शूरे अडे खडे ॥
प्रेम बडों में ऐसा था, वह इनका हुकम बजाते थे।
और यह भी उनके किये, कष्ट में अपना खून बहाते थे ॥

ोहा— सुनते ही दशकंधरने, दी सेना पहुंचाय।
फिर ललकारे आप जा, छक्के दिये छुडाय ॥
जब सुनी बात दशकंधर है, तो रंग सभी के बिगड गये।
लगे भागने जान बचा कर, योधे रण में बिछड गये ॥
यह दृश्य देख यम घबराया, बस अंत पीठ दिखलाई है ॥
सूर्य रक्ष के बन्ध छुडा, रावण ने प्रीति बढाई है।

ोहा— इन्द्र को झट दी खबर, विद्याधरने आन।
किष्किन्धा लंका लई, दशकंधर ने आन ॥
रूप अति विक्राल बना, मानो आपत्ति आई है।
अनुमान नजर यह आते हैं, कि सब की आज सफाई है ॥
पराजय हो यम भी आ पहुंचा, जो जो बीत बतलाया है।
सब इंद्र भूप को सुनते ही, झट क्रोध वदन में छाया है।

ोहा— सुनते ही सब वार्ता, लगी हृदय में आग।
कोप गर्ज ऐसे करे, जैसे जेहरी नाग ॥
दोड दिये दो लोकपाल, मम इंद्रपन में कसर पडी।
जा पीलूं शक्ति रावण की, जैसे घानी अन्दर ककडी ॥

जब देखा तेज मंत्रियों ने, सब इन्द्रको समझाने लगे।
कुछ सोच समझकर काम करो, सब द्रव्य काल बतलाने लगे॥

दोहा— सुर सुन्दर संग्राम में, जिसने दिया हराय।
लंका किष्किन्धा लई, शक्ति बडी कहाय॥
जिस कारण जा करें जंग, वह काम नहीं अब बनना है।
जलती ज्वाला बीच, पतंगो के समान जा जलना है॥
आपस में सहमत हो कर, अन्तिम यह सबने पास किया।
सुर संगीत प्रान्त यम को देकर के, वहीं बात को दाब दिया॥

दोहा— ऋक्ष नगर ऋक्ष राज को, किष्किन्धा सुर राज।
दे आधीन अपने किये, दिन दिन बढ़े समाज॥
फिर गायनरंग अतिहोने लगे, और जय जयशब्दध्वनि न्यारी।
चतुरंगी सेना सजी गगन में, धूम विमानों की न्यारी॥
अब लंका में प्रवेश किया, दशकन्धर दान किया जारी।
दई जगीरें योधों को, घर घर मंगल गावे नारी॥

दोहा— सूर रजके शिरोमणि, इन्दुमालिनी नार।
वाली सुत जिसके हुआ, शूर वीर बल धार॥
पुनरपि सुत दूजा हुआ, सुग्रीव दिया तसु नाम।
सुप्रभा हुई कन्यका, तीजे शुभ अभिराम॥
ऋक्षरज वर भामिनी, हरिकन्ता शुभ नाम।
नील और नल सुत हुए, सुन्दर कला निधान॥
सुर रज ने किष्किन्धा का, वाली सुत को राज दिया।
और मंत्रीपदपर योग्य समझ, सुग्रीवकुमारको नियत किया॥
विरक्त हुवा मन भोगों से, संयम व्रत नृपने धारा है।
तप जप संयम आराधन कर, बस आतम कार्य सारा है॥

दोहा— एक दिवस गया भ्रमण को, दशकन्धर भूपाल ।
पीछे जो भी कुछ हुवा, सुनो सभी वह हाल ॥
शूर्पनखां का चाल चलन प्रतिकूल था शुभ अवलाओं से ।
और काई पैदा होती है जैसे कि श्रेष्ठ तालाबों से ॥
अन्य एक छोटी रियासतका राज कुमर था खर दुषण ।
प्रिय विलासिता कोही जिसने समझा था अपना भूषण ॥
हुवा परस्पर मेल इन्होंका एक मर्ज के रोगी थे ।
दश अन्धों में अन्धे यह भी अशुभ कर्म के भोगी थे ॥
या ले भागी या ले भागा कुछ समझे दोनों भाग गये ।
या यों समझें कि एक दूसरे का करके अनुराग गये ॥

दो— पाताल लंक में गिरि एक देख किया स्थान ।
ग्रोह एक पैदा किया और जंगी सामान ॥
एक दिन लंक पाताल के भूपति चन्द्रोदर को मार दिया ।
छल वल करके खर दूषणने फिर राज सिंहासन सांभलिया ॥
अनुराधा श्री महारानी जो सभी गुणों की ज्ञाता थी ।
थी धर्मरत गौरव वाली पतिव्रता जगत विख्याता थी ॥

दो.— रानी पे आपत्ति का आकर गिरा पहाड ।
इससे वचने के लिये करने लगी विचार ॥
यह दृश्य भयानक ऐसा था, योधे भी धैर्य खोते थे ।
प्रलय काल ही आ पहुंचा, अनुमान ये जाहिर होते थे ॥
अनुराधाने समझ लिया, अब यहांपर रहना गलती है ।
क्योंकि इस शक्ति के आगे, ना पेश हमारी चलती है ॥

दो.— वुद्धिमान करते सदा, काम समय अनुसार ।
अनुराधाने भी किया, हितकरनिजी विचार ॥

नयनों से नीर बरसता था, महारानी के जो हितैषी थे।
मिल गये बहुत खर दूषण से, जो कृतघ्नी और द्वेषी थे॥
लिये सदा के पति परमेश्वर, क्षत्राणी से दूर हुवा।
और बिना गर्भ ना पुत्र कोइ, होनी का ध्यान करूर हुवा॥
जो भी कुछ हाथ लगा रानी के, हीरे पन्ने आभूषण।
कर साहस वहां से निकल चली, निज कर्मों को देती दूषण॥

गाना नं. ८

कर्मों के देखो सारे कैसे हैं जालजी।
कोइ फिरे वन वन में, कोई निहालजी॥

कल क्या दृश्य था सामने, और आज मेरे क्या है।
आगे पता क्या आयेगा, मुझपर बवालजी॥

शरणागत आते थे, जिन्हों का आसरा करके।
हम निराधार क्या कर्मों ने, कीने पैमालजी॥

जिस दिन में आई थी, बजे थे बाजे शाहाने।
यह दिन दिखलाये कर्मों ने, किया कमालजी॥

कहां ठाठ राजधानी का, कहां आज वन खण्ड है।
मैं स्वामी सेवक हीन हूँ, जीना मुहाल जी॥

हृदय की अग्नि शान्त अब, नहीं होगी रोने से।
पुरुषार्थ अब करना होगा, मुझको विशाल जी॥

पुरुषार्थ द्वारा जीव हो, कर्मों से स्वतंत्र।
होता है सिद्ध बुद्ध जहां पहुंचे ना कालजी॥

पुरुषार्थ हीनों का, नहीं अधिकार जीने का।
और पराधीन यह जिन्दगानी, होगी जंजाल जी॥

पालन करूं इस बच्चे को, जो होने वाला है ।
दिलवाऊँ हक इसका, इसे ये ही ख्यालजी ॥
ऐसी विपत्ति मनुष्य पर, आया ही करती है ।
इस कर्म गति से बचे रहे, किसकी मजाल जी ॥
क्षत्री धर्म कहता सदा, गौरव पर मरना सीखें ।
यश लेने की कोई शुक्ल युक्ति निकाल जी ॥

दो.— क्षत्राणी ने हृदय में की अंकित यह बात ।
वन में जैसे सिंहनी दिन नहीं गिनती रात ॥
घनघोर घटा मानिन्द निश्चय, विपदा रानी पे छाई थी ।
या यों समझें चीलों की न्याई, आपति मण्डलाई थी ॥
पतिव्रता देवी इस कारण, नयनों से नीर बहाती थी ।
अवलम्बित थी निज आशापर, और ऐसे कहती जाती थी ॥

दो.— अशुभ कर्म का ही हुआ, निश्चय में कोई जोर ।
किन्तु यहां व्यवहार भी, कहता है कुछ और ॥
कर्त्तव्य किया खर दूषण जो, नीति व्यवहार से वाहिर है ।
अन्याय का सिर होता नीचे, यह उदाहरण जग जाहिर है ॥
अन्याइयों से जो डरता है, वह भी संसार में कायर है ।
अन्याय के आगे दब जाऊँ, मेरी जमीर से वाहिर है ॥
आनन्द पति के साथ गया, और ठाठ वाट सब रहने का ।
कर्तव्य है अब इस दुःखको भी, सन्तोष के द्वारा सहने का ॥
जो काल के सन्मुख लड़ता है, उसको नहीं काल भी गहने का ।
यदि गह भी ले तो डर क्या है, जब धर्म है तन के वहने का ॥
क्षत्री पैदा करने वाली, ना दुनियां से भय खाती है ।
लिये धर्म के और शुभ नीति के. वह खेल जानपर जाती है ॥

अन्याई क्रूर अधर्मी सब, मेंडक होते बरसाती हैं।
या यों समझें कुछ समय लिये तारे होते प्रभाती हैं॥
न्याय तोड़कर अन्याई, जो पद अन्याय का पाते हैं।
ऐसे ही जो अन्याय को तोडे, सो न्यायी कहलाते हैं॥
अपना अपना मौका है, यहां द्वेष की कोई बात नहीं।
दृष्टि गोचर दो शक्ति हैं, पर एक एक के साथ नहीं॥

दो.— प्रति पक्षी है पुण्य का, पाप प्रत्यक्ष कहाय।
जो मार्ग सत्य धर्मका, अधर्म का मग नांय॥
दिवस किस तरह शुभ प्रमाणु, लेकर सन्मुख आता है।
प्रतिकूल अंधेरा रजनीका, कैसा-प्रभाव जमाता है॥
दुर्जन सज्जन का फरक यही धनीनिर्धनी में है।
जो अन्तर साता असाता में, वही गुणी और निर्गुणी में हैं॥
जड चेतन कोई चीज नहीं, जिसका कोई प्रति पक्षी ना हो।
वह काम भी बनता ही नहीं, जिस काम में दिल चस्पी ना हो॥
इस गिरितुङ्ग पर चढकर मैं निज नगरी और निहार तो लूं।
कुछ पवन व्योम की सेवन कर थोडासा और विचार तो लूं॥

दो.— महारानी ने जब लखा अपनी नगरी और।
घाव नमक वत और भी, बढा महा दुःख घोर॥
पतिव्रता ध्यान पतिका कर, हो निश्चय हाल विहाल गई
किन्तु अपने आत्मबल से इस मन को तुरत संभाल गई।
अरुणा वर्तकी लहरों के सम, मोह ममता को टाल गई
आशा वादन आशा कर, प्रतिज्ञा और कमाल गई॥

दो.— त्याग गये मुझको, मेरे प्राणपति आधार।
अब निरर्थ मेरे लिये यह सोलह श्रृंगार॥

कर्त्तव्य सभी अपना मुझको, पालन अवश्य करना होगा ।
व्यवहार यही है दुनियां का, निश्चय एक दिन मरना होगा ॥
था वास एक दिन वस्ती का, अब जंगल में रहना होगा ।
प्रतिकूल विपत्ति का समूह; अपने सिर पर सहना होगा ॥
सदाचार सादापन ही, यह अवश्य मेरा भूषण है ।
समयानुसार पुरुषार्थ, करने में ना कोई दूषण है ॥
आशा वादन हूं निश्चय, आशा मेरी फल लावेगी ।
पाप उदय खुस गई सम्पति, पुण्य उदय मिल जायेगी ॥
जो नांव भंवर में पडी हुई, पुरुषार्थ से तिर जायेगी ।
सर्वस्व लगाकर पति संपत्ति, हरी भरी लहरायेगी ॥

दो.— ससुर भूमिगृह नगर को, करती हूं प्रणाम ।
अवसर पाकर हर्ष से, फेर मिलूंगी आन ॥
है पास पति का रत्न मेरे, बाकी सम्पति का फिकर नाहिं ।
इस पौदे की रक्षा के बिन, इस समय जवांपर जिकर नहीं ॥
क्षत्री की हूं सुता वीर योधा, वर की मैं रानी हूं ।
और चण्डी हूं शत्रु के लिये, निज सुत के लिये भवानी हूं ॥
पुत्र को राज दिलाऊंगी, तब ही माता कहलाऊंगी ।
अथवा समझूंगी बांझ, या यों कहिये निज कूख लजाऊंगी ॥

दो.— तज अन्यों का आसरा, निजपर हो स्वालम्ब ।
दुःखित हुई देती कभी, कर्मों को उपालम्भ ॥
किन्तु कभी निराशा होकर, भी उत्साह नहीं छोडा ।
आपत्ति हजारों आने पर भी, लक्ष्य से मुखको नहीं मोडा ॥
जिसकी दिल में आशा थी, वह आशा एक दिन फल आई ।
मास सवा नौ के होते ही, सुतकी सूरत नजर आई ॥

बस फिर क्या अनुराधा, मनमें फूली नहीं समाती थी।
मुख रूप चन्द्रमा देख पुत्र का, दृष्टि नहीं हटाती थी॥
कुछ पूर्व वार्ता स्मरण कर, नयनों से जल भर लाई है।
फिर देख सुकर्मा दासी को, यों कोमल गिरा सुनाई है॥

दो.— आज सुकर्मा हो गये, उदय कर्म सुखकार।
किन्तु एक मेरे हुवा, दिल में दुःख अपार॥

यदि आज महल में सुत होता, तो तेरी आशा फल आती।
राजा को देती सन्देशा, तू अतुल द्रव्य वहां से पाती॥
होता मस्तक पर तिलक तेरे दासीपन से छुटी होती।
उत्सव में देदे दान बीजमें क्या क्या सुकृत का बोती॥
रोना आता मुझे लाभसे वंचित हैं सेवक मेरे।
अय कर्म मुझे कुछ पता नहीं अब कौन इरादे हैं तेरे।
इस समय तो जो कुछ कर सकती, सोई मैंने करना है
कम कम से अब तीन युगों तक इसी ढंग फिरना है।
बाकी मेरे तन के गहने, जो हैं डब्बे में भरे हुए।
वह भी आज से हैं तेरे, हिरे पन्नों से जडे हुए॥
दासीपन का शब्द आज से कहना सदा भुलाऊंगी।
अब समय समय पर कारण बस, सन्मान से तुम्हें बुलाऊंगी
कुल का यही दीपक है, और यही एक निशानी है।
प्रतीत हुआ लक्षणों से भी, लम्बी इसकी जिन्दगानी है
पालन इसका करें मुझे. निश्चय आशा पूरी होगी।
पुत्रवती कहाऊंगी, जिस दिन चिन्ता चूर्ण होगी॥
उस दिनकी मुझे प्रतीक्षा है, जिस दिन को यह दिल चाहता।
उत्साहियों के उत्साहों को, लख शंक काल भी खाता है

तुझपर ही विश्वास मुझे, तूही मेरी सह कारण है ।
तेरा मेरा देश का होगा, इस से दुःख निवारण है ॥

ो (सुकर्मा)-ग्रहण किया नित्य आपका, अन्न नमक सब चीज़ ।
जिसके कारण आपके, अर्पण है यह कनीज़ ॥
शाबास तुझे अय क्षत्राणी, अभ्यास यही होना चाहिये ।
मरना तो सबने है एक दिन, पर गौरव ना खोना चाहिये ॥
और जहां तक हो सुकृत का, बीज सदा बोना चाहिये ।
अज्ञान रूप मल को जिनवाणी, वारी से धोना चाहिये ॥

ो.— एक जान हो परस्पर, लगे सभी निज काम ।
सिंहनी वत् निश्चित् किया, पर्वत को निज धाम ॥
नाम व्राध रख दिया और, लगी निशदिन पोषण पालनको ।
या यों कहिये लगी शूर, वीरता के सांचे में ढालनको ॥
देश धर्म सेवा रूपी शिक्षा, जल नित्य सींचती है ।
और क्षत्रापन की चतुराई से, शत्रुका दिल भी खेंचती है ॥

ो.— दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा, होनहार सुकुमार ।
देख पुत्र के तेज को, माता है बलिहार ॥
ग्रह गणपति के समान, यह भी है चन्द्रमा चढ़ा हुवा ।
शत्रुकी हानि राजताज ले, चिन्ह तेज वह पड़ा हुवा ॥
आशा मेरी पूर्ण होती यदि, राज महल अन्दर होती ।
कह नहीं सक्ती जिह्वासे, मैं क्या क्या सुकृत यश बोती ॥

(दासी) आशा बादल आशा, रख दिल में समता धार ।
कभी महा प्रकाश हो, कभी कभी अन्धकार ॥
कभी रंक और कभी राव, यह दशा कर्म दिखलाते हैं ।
अशुभ कर्म के उदय होत ही, राजपाट खम जाते हैं ॥

शुभ कर्मों के आने से, सब ही आकर मिल जाते है।
करें मूल उद्यम इसका, जो जरा नहीं घबरातें हैं॥

दो(राणी) ठीक बहिन निज कर्म से, है दुःख सुख संयोग।
कर्त्तव्य वही करना मुझे, जो होता है योग्य॥
सम्पति है पास पुत्र को, नीति कला सिखाऊं मैं।
पाताल लंकका राज्य करे यह देख देख सुख पाऊं मैं॥

अन्याय को नीचा दिखलावे, ऐसे सांचे में ढालूंगी।
कर्तव्य जो होता जननी का, सम्पूर्ण उसको पालूंगी॥
माता द्वारा वीर व्राध की, दिन दिन कला सवाई है।
अब शूर्पनखां की खबर, उधर दशकन्धर ने सुन पाई है॥

दो— इधर उधर को चल दिये, योधा करन तलाश।
आखिर मुद्दा मिल गया, खर दूषण के पास॥
क्रोधातुर हो भूपने, दीना बिगुल बजाय।
अस्त्र शस्त्र सज खडे, योधा सन्मुख आय॥
दिव्य दृष्टि मन्दोदरी, थी लाखों में एक।
रावण को कहने लगी, करने को सुविवेक॥

दो (मन्दोदरी) बुद्धिमत्ता है इसी में, करें सोचकर काम।
सोच से मुख लाली रहे, सोच बिना मुखश्याम॥

प्राणनाथ यह तो बतलावो, किस पर कटक चढाने लगे।
जिसको जाने कुछ ही जने, तुम दुनियां को बतलाने लगे॥
बात जो होवे निन्दा की, बस उसे दबा देना चाहिये।
अपने कर्तव्यों पर भी, कुछ ध्यान लगा लेना चाहिये॥

दो— काम स्वयम् राजा करे, वही प्रजामन भाय।
आप ही रीत चला दई, अब क्यों मन घबराय॥

कहो क्या कटक चढा करके भगिनी को राण्ड बनावोगे ।
या और पति बनवा करके, काला मुंह आप कराओगे ॥
जहां परणावोगे वहांपर वह, तानों के दुःख उठायेगी ।
जो भाग गई थी वही बहिन, रावण की यह कहलायेगी ॥

दो.— रहस्य भरी यह जब सुनी, वात अति सुखकर ।
ठीक सभी बुद्धि हुई, सत्य कहा यह नार ॥
प्रेमभाव से खर दूषण संग, व्यवहारिक फिर विवाह किया ।
स्वाधीन बना करके अपने, पाताल लंकका राज्य दिया ॥
अब सुनो जिकर किष्किन्धाका, जहां बाली नृप बलधारी है ।
दश कन्धर को इख राज देन से, साफ हुवा इन्कारी है ॥

दो.— इस क़ारण दशकन्धर ने, किया एक दर्बार ।
मंत्री संग मिल वैठकर, करने लगा विचार ॥
किस कारण वाली हुआ, हम से आज विरुद्ध ।
क्या उस से अब चाहिये, करना हम को युद्ध ॥
अब कहो सोच करके सब ही, वाली से क्या चाहिये करना ।
सब नियम उप नियम तोड दिये, और छोड दई मेरी शरणा ॥
क्या दूत पठा करके पहिले, राजी से समझाना चाहिये ।
रणतूर बजा या मूर्खता का, स्वाद चखा देना चहिये ॥

दो-(भानुकर्ण) कृतघ्नता की वात है, उसकी सब महाराज ।
चरणी गिरते थे वडे, वाली अकडा आज ॥
वह दिन भूल गया वाली, जब वडे कैद में सडते थे ।
जहां गिरा पसीना उनका कुछ, वहां खून हमारे पडते थे ॥
आपने बंध छुडाये थे, और किष्किन्धा का राज्य दिया ।
ऐसे का मान करो मर्दन, और जिसने उसका साथ किया ॥

दो.— विभीषण कहने लगा, सुनो जरा कर ध्यान।
वाली कोई हलवा नहीं, शूर वीर वलवान॥
मामूली कोई चीज नहीं, और विचार अपना रखता है॥
अब रही बात बडो तक की, कोई जाकर समझा सकता है॥
पहिले दूत भेजकर के, इस बातका रहस्य प्रतीत करो।
फिर बाद में जैसा हो विचार, वैसा सब कार्य नियत करो॥

दो— विभीषण की बात में मिलगई सब की बात।
दूत गया वाली निकट, अगले दिन प्रभात॥
नमस्कार मम लीजिए, खडा सामने दास।
आगे श्री दशकन्धर का, सुनो हुकम जो खास॥
महाराजाने प्रेम भावसे, खबर यहीं पहुंचाई है।
कीर्तिधवल और श्री कण्ठ से, परम्पराचली आई है॥
ध्यान लगाकर देखोगे तो, सभी पता लग जाएगा।
यह बानर द्वीप तीन सौ जोजन, सभी हमारा पायगा॥

दो— मान नहीं अब कीजिये, यही बातका सार।
या भक्ति हृदय धरो, या रण हो तैयार॥
सुनकर सारी वार्ता बोले वाली फेर।
दशकन्धर से जा कहो, क्यों करते हो देर॥

चौ— क्यों करते हो देर यहां, नंगा है तेग दुधारा।
रणभूमि में हाथ रंगूंगा, कर कर ढेर तुम्हारा॥
देवगुरु को छोड नहीं, नमने का शीश हमारा।
तुम्हें आज तक मिला नहीं, कोई शूर वीर वलवारा॥

दौड— वडों का काम वडों के, साथ में गया उन्हों के।
किस लिये घबराता है, आ रण भूमि निकल यदि
परभव जाना चाहता है॥

दो.— सुनी बात जब दूत से, जलवल हो गया ढेर ।
जंगी बिगुल बजा दई, तनिक ना लाई देर ॥
तैयार हुए सब शूरमा, बडे बडे बलवीर ।
धावा बोल के चल दिये, गर्जे रहे रण धीर ॥
दोनों ओर सजी सैना, आ धूल गगन में छाई है ।
आकाश में रहे विमान घूम, जब अनी से अनी मिलाई है ॥
मारू बाजा बजा रहे, धौंसें पर चोंट जमाई है ।
ब्रह्माण्ड लगा जब फरने को, तो मानों प्रलय आई है ॥

दो.— उभय केशरी जब चढे, कांपन लगी जमीन ।
लगे सभी जन तड़फ ने, जैसे जल बिन मीन ॥
दोनों पक्षों के वीर बैठ, लगे सोचन मौका जाता है ।
लाखों वर्षों का मेल जोल, अब छिन्न भिन्न हुवा चाहता है ॥
कोई कारण नजर नहीं आता, जिस पर यह इतना रगडा है ।
नमस्कार या भेंट जरासी, क्या मामूली झगड़ा है ॥
सुग्रीव कहे निज सभा को, रहस्य बताऊं एक ।
लंका वाले यदि मानलें, रहे हमारी टेक ॥

चौ०— रहे हमारी टेक उन्हें, तुम इस नीति पर लावा ।
बाकी सैना हटा बाली, रावण का युद्ध करावो ॥
बाली भंग करे शक्ति रावण की निश्चय लावो ।
सभी सभासद मेल परस्पर, यही नियत करवावो ॥

दौड— क्योंकि सेना रावण की, नहीं काबू आवन की ।
यही एक ढंग निराला, अपना सब कुछ बचाव करो
शत्रु का ही मुख काला ॥

दो.— सभी के मन बस गये, रहस्य भरे यह भाव ।
सभा समय करने लगे, कभी उत्तार चढाव ॥
प्रति पालक हैं सभी के, दोनों ये सिरताज ।
किसके हम सहायक बनें किससे होवें नाराज ॥
झगडा आपस में दोनों का, हम निष्कारण क्यों पक्ष करें।
अन्त में एक ने नमना है, फिर लाखों जन क्यों फंसके मरें॥
दोनों ही को लडने दो, जो हारेगा नम जावेगा ।
देशप्रेम और राजमान, क्या सब ही कुछ बच जावेगा ॥

दो.— सर्व सम्मति से लिया, यही नियत कराय ।
रण भूमि में भूपति, दोनों दिये जुटाय ॥
उतर पडे रण धीर शूरमा, दोनों ही थे निडर बडे ।
गर्ज ध्वनि घन घोर घटा से, जैसे बिजली कड़क पडे ॥
लगे मेदिनी थर्राने अमोघ, शस्त्र जब आन पडे ।
अग्नि बाण कहीं धुन्द बाण, विमान गगन में आय अड़े ॥

दो.— दशकन्धर घबरा गया, देख शक्ति तत्काल ।
समझ लिया वाली नहीं, है मेरा ये काल ॥
गिरा देख मन रावण का, वाली ने कारे कमाल किया ।
पकड हाथ चहुं ओर घुमाकर, धरती ऊपर पटक दिया ।
सुग्रीवादिक ने वाली से, रावण का पीछा छुडवाया ।
हो शर्म सार शर्मिन्द सा, झट लंका को वापिस आया ।

दो.— नीचे ग्रीवा हो गई, मलते रह गये हाथ ।
सोचा था कुछ और ही, और हो गई बात ॥
वाली नृप का तेज बल, रावण पर गया छाय ।
रावण का जो घमण्ड था, पल में दिया गमाय ॥

चौपाई– वाली का दिल हुवा वैरागी। तप जप करने की लव लागी ॥
यह दुनियां सब धुन्द पसारा। फंसे जीव मकडी जिम जाला ॥
राज ताज सुग्रीव को दीना । ध्यान शुक्ल संयम रस लिना ॥
लब्धिधार हुए मुनि राई। चरणी गिरें देवन पति आई ॥
अष्टापद पर्वत पर आये। ध्यान अडिगखडे मुनि लाए ॥
दुनियां समझी कूड कहानी। आत्मसम समझे सब प्राणि ॥

दो.— राज ताज सुग्रीव ले दीर्ध विचारे ताम ।
शुभ विचार मुख रूप है उल्ट सोच मुखश्याम ॥
अब वह शक्ति कहां मुझ में, जो वाली वीर नरेशमें थी।
अपमान किया रावण का, फिर भी इज्जत रही देश में थी॥
सुप्रभा शुभ पुत्रीका, दशकन्धर से विवाह किया ।
प्रेमभाव सब पूर्ववत्, सुग्रीव नरेशने जोड लिया ॥

दो.— नित्या लोक जपुर भला, नित्या लोक नरेश ।
रत्नावली कन्या अति, रूप कला सुविशेष ॥
पुष्पक बैठ विमान में लगा उधर को जान ।
नग अष्टापद आन के, अटका तुरत विमान ॥
जब दृष्टि पसारी नीचे को तो मुनिध्यान में खडा हुवा ।
मुख पर मुखपति शोभ रही, जैसे चन्द्रमा चढा हुवा ॥
दो भुजा लटक रही नीचे को निर्भय वन में जिम शेर खडा।
देख मुनि को दशकन्धर, झट क्रोधानल में भवक पड़ा ॥

दो.— दशकन्धर नृप सोचता, यह वाली मुनिराय ।
शत्रु से अपना अब भी. वदला लेऊं चुकाय ॥
तप जप से निर्वल है शरीर, यह सोच सामने आया है।
तेज प्रताप देख मुनिवर का, मन में अति घबराया है ॥

फिर सोचा शिला उखाड़ूं मैं, और इसको नीचे दे मारूं।
परभव यह स्वयम् सिधारेगा, मैं अपना बदला ले डारूं॥

दो.— दशकन्धर निज शील से, शीला उठाई आन।
कंपन सुन मुनि राज ने, देखा लाकर ध्यान॥
उपयोग लगा देखा, दशकन्धर मुझे मारने आया है।
तब पांवसे जोर शिला पर दे, भूपाल का शीश दबाया है।
जब रोया और चिल्लाया तो, बाली ने चरण हटाय लिया
आ गिरा शरण माफी मांगी, तब मुनिवरने यों कथन किया
क्षत्री हो करके रोया तू, एक दाब जरासी आने पर
इस कारण रावण नाम तेरा है, दिया आज से हमने धर
नृप बार बार चरणन गिरता, बाली मुनि का गुण ग्राम कि
इतने में देव धरणेन्द्र ने आ मुनिवर को प्रणाम किया

दो.— सेवा करता मुनि की, जब देखा रावण वीर।
आमोघ विजय शक्ति दई, तोफा इक अक्सीर॥
आमोघ विजय शक्ति पाकर, रावण खुश हो उठ धाया
कहे तीन खण्ड के साधन को, यह शस्त्र अद्भुत पाया है
इन्द्र निज स्थान गया, मुनि निर्मल ध्यान लगाय लिय
दस विधका धर्म अराधन करके, अक्षय मोक्ष पदपाय लि

दो— गिरी वैताड विशेष ये, ज्योति पुर वर नाम।
विद्याधर था ज्वलनसिंह वहां राजा अभिराम॥
रानी जिसके श्रीमति, तारा सुता प्रधान।
चौंसठ कला प्रवीण थी, रूपवती गुण खान॥
चित्रांग नाम एक अन्य नरेश्वर, सहसगति सुत तिसका था
विमान चढी तारा को देखकर, मोहित चित्त हुवा उसका था

चारित्र मोहिनी कर्म उदय: ना अपना आप संभाल सका ।
प्रमत्त हुवा लगा कहन मित्र से, ना मौके को टाल सका ॥
दो.— मित्र सुमन यह कौन थी, मुझे मार गई तीर ।
नस नस में होने लगी अति असह्य मे पीर ॥
यक बिजली का टुकडा था, वह या रवि किरण गई आकरके ।
ना जाने कहां वह लोप हुई, एक चोट हृदय पर ला करके ॥
वह रूपवती चित चोर मेरी, सुध बुध सारी विसराय गई ।
कोई यत्न करो मिलने का उसे, वह मन को मेरे चुराय गई ॥
दुखिया का दरदी तेरे सिवा, अय मित्र नजर आता ही नहीं ।
दिल खोल दिखाऊं जिसे अपना, वह चन्द्रनजर आता ही नहीं ॥

दो.— हाल मित्र ने सब कहा, जो था पता निशान ।
करी याचना भूपसे, वही ध्वनि वही तान ॥
टेवा मंगाकर ज्वलन सिंहने, ज्योतिषी को दिखलाया है ।
स्वल्पायु है सहसगति की, गणितानुसार बतलाया है ॥
तब ज्वलनसिंहने पुत्री का, सुग्रीव से नाता जोड दिया ।
और दान दिया दिल खोल, भूप को हाथ जोडकर विदा किया ॥
पता लगा जब सहसगति को, दुःख सागर में लीन हुवा ।
सोच विचार अनेक किये, पर आर्तध्यानी दीन हुवा ॥

दो.— तारा के पैदा हुए, शूर वीर सुत दोय ।
जयानन्द अंगद भला, बेली समफल जोय ॥
सहस गति ने उधर रातदिन, सोचके बहुत उपाय किया ।
रूप परिवर्तन विद्या के साधनमें झट ध्यान दिया ॥
इधर लगा वह साधन में, अब दशकन्धर क्या चाहता है ।
सर्व देश साधन कारण, दलबल विमान सजाता है ॥

दो.— समय देख सुग्रीव ने, रावण के हितकार ।
अपनी सैना को किया, कूच के लिये तैयार ॥
रावण और सुग्रीव सहित, सैना के सज धज हुए रवां ।
पाताल लंक जानेका दिलमें, पुरा कर लिया इतमिनां ॥
पता लगा जब खर दूषण को, लिये स्वागत के पहुंच गये
भेंट हुई आपसमें जिस दम, प्रेम के बादल झूम रहे ॥

दो.— नदी नर्मदा के निकट, जाकर किया पड़ाव ।
सभासदों के वीच में बैठा रावण राव ॥
तत्काल चढ़ा जल ऊपर को, जा सेतु से टकराया है
निष्कारण क्यों चढ़ा आज, जल इसका भेद ना पाया है
फिर दिया हुकम दश कन्धरने, इसका कारण मालूम करो
यदि छोड़ा है किसी शत्रुने तो, उस दुर्जन का मान हरो

दो.— बैठ विमान में चल दिये, देखा जाकर हाल ।
दश कन्धर को आन कर, बतलाया तत्काल ॥
अद्भुत है रचना बनी, हुवा अनुपम काम ।
या यों कहिये भूमिपर, उतरा है सुरधाम ॥
महाराज यहाँ से वड़ी दूर, एक देश वड़ा लासानी
सहस्रांशु नृप तेज रविवत्, महिष्मति रजधानी है ।
वहुत भूप सेवा करते हैं, सहस्र एक सुन्दर रानी
प्रेम हेतु जलक्रीडा के, उसने रोका था वह पानी ।
करें कहां तक वर्णन वहां का, समझ नहीं कुछ आता
क्या वही स्वर्ग प्रत्येक कवि, दे उदाहरण कथ गाता
वहां नदी सरोवर के मानिन्द, है चारों और वना रव
लम्बी और चौडी शोभनीक, नौका है जिसमें ला रव

दोनों और बने सेतु, कोई खम्भा जिनके मध्य नहीं ।
जिस दम कपाट भिड़ जाते हैं, तो समझो और संबंध नहीं ।।
मध्योदक भवन बने अद्भूत, सुख पुण्य योग से पाया है ।
अभी थोड़े फट्टे खोल दिये, जिस कारण यह जल आया है ।।

ो.— सुनतेही दशकन्धर दी, रण भेरी बजवाय ।
दलबल सबल विमान से, घेरा डाला जाय ।।
पहिले दूत पढा रावण ने, नृप को खबर पहुंचाई झट ।
या भक्ति स्वीकार करो, या हमसे करो लड़ाई झट ।।
चढ़ी फौज लडने के लिये, आपस में शस्त्र चलाने लगे ।
और कई हुए रणभेंट शूरमा, पीठ दिखाकर कई भगे ।।
लिया बांध रावणने नृप को, उल्टा बंध चढ़ाया है ।
तब जंधाचारी महा मुनिने, आकर के छुड़वाया है ।।
यह पिता सहस्रांशु नृप का, सतबाहु नाम मुनीश्वर था ।
जिन नाशवान् दुनियां को, तजकर पकड़ा मारग संयम का ।।

ो.— सहस्रांशु महाराजने, दिल में किया विचार ।
तज झंझट संसार का, लेवें संयम धार ।।
सत्यशरण लिया श्रीजिन वरका, आधीन ना जो किसी ताजका है।
दुनियां का सुख अनित्य सभी, सुख नित्य परमपद राजका है ।।
है याद मुझे वह समय, मेरे एक मित्र ने था वचन दिया ।
अनरण नरेश ने उसी दीक्षा का, इकरार मेरे था साथ किया ।।

ो — अनरण नरेश को उसी दम, दीनी खबर पहुंचाय ।
समझ लिया कि हे चहै, दुनियां का उत्साह ।।
अनरण नृप भी सोचता, है मेरा संकेत ।
इस से वढ करके नहीं, दुनियां में कोई हेत ।।

अनरण भूपने उसी समय, दशरथ को राज्य संभाल दिया।
दई पुरी अयोध्या छोड, संगमित्र के संयम धार लिया॥
उधर सहस्रांशु सुतके, सिर ताज दिया दशकन्धरने।
और उसी समय उसको, अपने आधीन किया दशकन्धरने॥

दो— नारद घबराया हुवा, आया रावण पास।
आदर पा भूपाल से, कहा मुनि ने भाष॥
आपके होते अनर्थ हो, फिर यही तो दुःख वडा।
रहे यज्ञ में फूंक पशु, कई दुष्ट अनार्य खोद गढा॥
सद् उपदेश दिया तो, अग्निहोत्रोंने मारा मुझको।
चल रक्षा करो अनाथों की, संगले जाने आया तुमको॥

चौपाई– राज नगर और मरुत नरेश। मिथ्या दृष्टि अधर्म विशेष॥
कुगुरु जनका अति भरमाया। पशुवध महा यज्ञ रचाया॥
इतनी सुन दश कन्धर धाए। पशुओं के जा प्राण वचाए॥
यज्ञ विध्वंस किया तवसारा। याज्ञिकों के मनरोष अपार।
आत्मरूपी यज्ञ रचावो। द्वादश तम विधि अग्नि जलावो।
अशुभ कर्म सब दग्ध वनावो। यों कहे नारद परमपद पावो।

दो.— मरुत भूप की पुत्री थी, कनक प्रभागुण खान।
रावण संग विवाह दई, साथ मान सन्मान॥

चौ०— पा करके सन्मान अधिक मथुरा को हुवे रवाना।
था मधु वहां का भूप ठाठ, जिसका था अधिक सुहाना।
मिले प्रेमसे रावण को, कुछ भेंट किया नजराना।
देखा हाथ त्रिशूल, मधुसे पूछे रावण दाना॥

ोड़— पूछता गुण नृप रावण, मधु तब लगा सुनावन ।
चमरेन्द्रने मुझे दई है, पूर्व भवका का मित्र मेरा
जिन सभी कथा कही है ॥

— ऐरावत क्षेत्र भला. शत द्वारा पुरी नाम ।
सुमित्र भूपका मित्र है, प्रभवचतुर सुनाम ॥

— प्रभवचतुर सुनाम, मित्र दोनों रहते मंगलमें ।
एक दिवस ले गया, उड़ा घोड़ा नृप को जंगलमें ॥
पल्ली पति की सुता नाम, वनमाला मिली उपवन में ।
नृप से करके विवाह, खुशीसे आई राज भवन में ॥

ड़.— प्रभव आ मिला चावसे, पूछता कुशल भावसे ।
जब रानी को देखा है, लगा काम का बाण तुरत
पागल सा बन बैठा है ॥

— सुमित्र ने पूछा प्रभव से, कैसा आर्त्त ध्यान ।
साफ प्रभव ने कह दिया, जो था दिली अरमान ॥

।.— जो था दिली अरमान, सुमित्र सुन खुशी हुवा अति मनमें ।
मांगो देवें प्राण मित्र यह, कौन चीज़ चीज़नमें ॥
दई आज्ञा जावो रानी, मम मित्र के महलन में ।
रानी दई संभाल, आप छिप सुने शब्द काननमें ॥

ड— प्रभवसे कहे उचारी, कौन नाचीजमें नारी ।
मेरा पति देव है ऐसा, मांगे पर देवे जान तलक
क्या चीज नार और पैसा ॥

— गोरवकी यह बात सुन, गिरा चरण में आन ।
धन्य धन्य मम मित्र है, धन्य तू मात समान ॥

महा पापी चाण्डाल दुष्ट मैं, धर्मवृक्ष का कातिल हूं।
खुद पे कटार से वार करूं, मैं मर जाने के काबिल हूं॥
सुमित्र ने झपट हाथ, पकडा कहे वे भाई क्यों मरता है।
मैं समझा तू है श्रेष्ठ मित्र, तथा परीक्षा मेरी करता है॥

दो — सुमित्र ने संयम लिया, पहूंचा कल्प इशान।
हरिवाहनगृह सुत मधु, वहीं जन्मा मैं आन॥
प्रभव मित्र संसार में, कई वार देह धार।
जन्मा ज्योतिर्मति के, पुण्यवान् सुकुमार॥
संयम ले न्याणा करा, चमरेन्द्र बना जाय।
मुझ को मित्र स्नेह से, त्रिशूल दई यह आय॥
दो हजार योजन तक का, यह काम तुरत कर आती है।
फिर आत्म रक्षक है मेरी, ना पास किसी के जाती है॥
गुणवान मधुकको जान, रावणने कन्या उसे विवाही है।
सम्बन्ध जोड पुत्री का झट, आगे को करी चढ़ाई है॥

दो — लगा सितारा चमकने बढता जाय नरेश।
भूपति आ चरणों गिरें, सेवा करें विशेष॥
अष्टादश वर्षों तलक, रहा जंग से प्यार।
सूर्य किरणों की तरह, हुवा पुण्य विस्तार॥
फिर आये महिमण्डले, नलकुबेर दिग् पाल।
दुर्लंघ्यपुर का भूपति, राज्य करे सुविशाल॥
आशाली विद्या पर उसे, था अत्यन्त गुमान।
रखता था नगरी गिरद प्रचण्ड अग्निहर आन॥
कुम्भकर्ण सेना समेत, जब बढ़ा तर्फ रजधानी के।
ना सही गई आशाली झलक, तो छक्के छुटे गुमानी के।

फिर सबने सोच विचार किया, दश कन्धर भी घबराया है ।
विमान व्योममें चढा दिये, किन्तु ना रस्ता पाया है ॥

रावण कहे सुग्रीवसे, करो उपाय विवेक ।
जिससे यह कार्य बने, रहे हमारी टेक ॥
कपि पति तब कहने लगा, सुनिये कृपा निधान ।
काम अति यह कठिन है, बिना भेद भगवान् ॥
यही समझ में आता है, कुछ रूप बदल चहुं ओर फिरें ।
जो मिलें पकड़ लालचक देकर, लें भेद सभी ना फरक करें ॥
इधर लगे यह फिरने को, वहां नल कुबेर घर फूट पडी ।
शुक्ल जहां पर विरोध बढ़, वहां समझो के इज्जत बिगड़ी ॥

गाना नं. ९

अय फूट देवी तुमने, सबको रुला दिया है ।
अज्ञानियों के दिल पे, अड्डा जमा दिया है ॥
अटूट प्रेम में जो, लव लीन हो रहे थे ।
उनके भी सुख का, कारण तूने भुला दिया है ॥
मिल बैठ प्रेम से जो, निज लाभ सोचते थे ।
विपरीत इसके तूने, बिल्कुल बना दिया है ॥
उन्नत थे सब समझते, मानो सुमेरु चोटी ।
गौरव गिरा के उनका, धूलि मिला दिया है ॥
सब प्रेम की तरंग में, आनन्द ले रहे थे ।
लहरें सुखा के तूने, बालू उडा दिया है ॥
अब प्रेम के स्वपन की भी, हो रही निराशा ।
भर विरोध विषको उरमें, हृदय हिला दिया है ॥

हैं धर्म शुक्ल दोनों, यह ध्यान नाम मात्र ।
आरति विरोध का तू, दरिया वहा दिया है ॥

दो.— पूर्व पुण्य से यदि मिले, सुख साधन का अंश ।
अन्यों का अज्ञान वश, करने लगे विध्वंस ॥

अय मित्र गणों कुछ सोच करो, किस वातपे आप अकड़ते हो।
जिस फूटने सबका नाश किया, क्यों उसका हाथ पकड़ते हो।

मानिन्द नरक वह घर बनता, जिसमें यह चरण टिकाती है।
मित्रों का दिल फट जाता है, जब अपना कदम जमाती है।

वह अधोलोकवत् देश बने, जब यह महारानी आती है।
स्वपन मात्र ना सुख शान्ति, उस देश में रहने पाती है।
इस रोग की मात्र औषधी यह, जिन भाषित ज्ञानामृत पीना
मैत्री भाव की ओर बढो, व्यवहार सहित जब तक जीना।
अब करुणा भावके अंकुरे, तुम हृदय में पैदा होने दो।
शान्ति प्रेम से राग द्वेष, दुःख दायी जडको खोने दो।
चेतन और अचेतन क्या, सब में गुण है गुण गृहण करो।
त्रियोग शुद्ध सब का हितकारी, सादा रहन और सहन करो।
कायरता तज कर शूर बनो, प्रमाद नहीं करना चाहिये
तुम उद्यम शील बनो सारे, अन्यायपक्ष तजना चाहिये।
श्री वीतराग की वाणी से, जो सज्जन वेमुख रहते हैं
वह जन्म मरण संसार चक्रमें, पडे सदा दुःख सहते हैं।
सम्प सुमति का साथ छोड, सर्वस्व अपना खोते हैं
तो जान बूझ कर वह नर, अपने राह में कांटे बोते हैं।

दो.— यथा नाम कुवेर का, गुण थे तदनुसार ।
किन्तु वर की फूट ने, किया सर्व सुख छार ॥

दिवानाथ यदि भानु है, तो वह भी जगन्नाथ कहाता था ।
मानिन्द रजनी के शत्रु दल, मुंह देखत ही भग जाता था ॥
मानिन्द रवि की किरणों के, आधीन हजारों राजा थे ।
निःसन्देह थे भिन्न भिन्न, पर सदा हुक्म के तावा थे ॥
वह ज्योतिषियों का इन्द्र है, तो यह नरेन्द्र कहलाता था ।
उसका भ्रमण व्योम, सरोवर में यह दिल बदलाता था ॥
वर्णादिक स्वाधीन भोग, उपभोग किसी की कमी नहीं ।
स्वास्थ्यादि दश विध सुख पूर्ण, था समान कोई धनी नहीं ॥
और एक अनोखी विद्या जो, कि आशाली कहलाती थी ।
चहुं ओर कोट था ज्वाला का, शत्रु की पेश ना जाती थी ॥
इसके सुदर्शन चक्र का, कभी वार खाली नहीं जाता था ।
इन्द्र भूप भी नल कुबेरसें, इस कारण भय खाता था ॥
चढ़े हुए थे गौरव पै, जब फूट का आ साम्राज्य हुवा ।
उफ पश्चाताप बिना सब कुछ, खो महाराज बेताव हुवा ॥

— वैमनष्यता ने लिया, रूप भयानक धार ।
नृप रानी का परस्पर, बढ़गया द्वेष अपार ॥
जहां राग वहां पर द्वेष की नीमा, निश्चय पाई जाती है ।
द्वेष वहां पर प्रीति आ, विकल्प से असर जमाती है ॥
सम विभाग का नाम नहीं, वहां स्वार्थता छा जाती है ।
तव फूट महारानी भी आकर, आसन वहां बिछाती है ॥
उपरम्भाने कुमुदा दासी को, घर का भेद बताया है ।
कहे प्राणों का संदेह हमें, सौकनों ने जाल बिछाया है ॥
किन्तु सुख सार की निन्द्रासे, मैं भी ना इन्हें सोने दूंगी
और मुझे रुलाया तो, इनको फिर कैसे सुखी होने दूंगी

ऐ कुमुदा अब देर ना कर, झट रावण पास चली जा तूं।
यहां जाल बिछाया इन्होंने, अब वहां पर जाल बिछाया तूं।
यदि बनें सहायक वह मेरे, मैं उनको अक्सीर दवा दूंगी।
चक्र सुदर्शन देकर मैं, आशाली भेद बता दूंगी ॥
कह देना यदि अब चुके तो, फिर पीछे से पछतावोगे।
पराजय कुबेर नहीं होवेगा, तुम अपने प्राण गमाओगे।
सन्तोष जनक दिया उत्तर मुझे, तो आयु तक सुख पावोगे।
नहीं लाभके बदले हानि होगी, करमलते रह जावोगे।

दो.— आज्ञा पा दासी चली, पहुंची कटक मंझार।
इधर खडे थे गुप्तचर, पहिले ही तैयार ॥
पुण्य प्रवल महारावण का, सभी तरह पौबारे हैं।
उल्टा दैव कुबेर से समझो, कर्मों के फल न्यारे हैं।
अय आजकल के पामर प्राणियों, क्यों आपस में लडते हो।
क्रोध परस्पर करके क्यों, महादुःख कूपमें पडते हो।

दो.— अर्ज उभय कर जोडकर, करती हूं सरकार।
उपरम्भा की वेनती पर, कुछ करें विचार ॥
नृप से कुछ अनबन होनेपर, महारानी आपको चाहती है
आशाली विद्या सहित, लिये चक्र वह रानी आती है
मीन मेख आदि विचार, करने का कोई काम नहीं।
यदि अब चूके तो, समझ लेना इस फेल का खुस अंजाम नहीं

दो.— रावण ने कहा बोल मत रसना करले बन्द।
क्या हमपर तू गेरन लगी, प्रेम जालके फन्द ॥
चौ.— प्रेम जाल के फन्द सभी, क्या अनुचित बात सुनाई
ऐसा भाषण करने पर, क्या तुझे शर्म ना आई ॥

साथ हमारे छत्रापन पर, धूल डालनी चाही ।
आज हमारे उज्जल, मुख पर स्याही मलने आई ॥

ड़— प्रथम तो सभी फरेब हैं, राग से हमें परहेज है ।
सहायता हमें ना चाहिये, डाकू चोर डचक्कों की
गणना में हमें ना लाइये ॥

गाना नं १०

ऐयासी करते हैं इसरत में, पड़ गौरवको खोते हैं ।
नतीजा निकलता आखिर, पेसिर धुन धुन के रोते हैं ॥
यह भी इक कुव्यसन भारी, पराई नार हर लेना ।
अवश्य सर्वस्व खोकर, वह वीज दुर्गति का बोते हैं ॥
वनी ना जिनकी अपनों से, परायों से बनेगी क्या ।
घरेलू झगड़ों से यह, नीचता के ख्याल होते हैं ॥
यही कर्त्तव्य मानव का, सदा नीति करे पालन ।
वही दुनियां के गौरव की, शिखर चोटी पे सोते हैं ॥
गिरावट का यह मारग है, शुकल बचने से इसके को ।
नीति अरिहन्त वाली से, कर्ममल तकको धोते हैं ॥

— नके आसरा नीच सब, कायर क्रूर अधीर ।
रखे भरोसा आप पर, शूर वीर रण धीर ॥

— शूर वीर रण धीर भरोसा, भुज बलपर रखते हैं ।
चक्र भूप आशाली क्या, नहीं अन्तक से झकते हैं ॥
दुनियां भर के शूर सामने, हों न कभी हटते हैं ।
गौरव की रक्षा के कारण, सत्य पुरुष मरते है ॥

दौड़— हमें कुछ भी ना चाहिये, आप बस यहां से जाइये।
लगी क्या जाल बिछाने, मारूं चाबुक तान
सभी बुद्धि आजाय ठीकाने ॥

दो— धिक्कार शब्द खाकर हुई, कुमुदा कैम्प से बाहर।
स्वागत विभिषण ने किया, उसका समय विचार ॥
कुमुदा आप न हों कभी, रंचक मात्र उदास।
रानी की और आपकी, पूर्ण होगी आस ॥
पहिले दश कन्धर पे जाके, भूल आपने खाई है।
कुछ ऐसे होते हैं स्वभाव, कुछ होती बेपरवाही है ॥
यह काम सदा ऐसे वैसे, बनते हैं औरों के द्वारा।
निर्भय अब यहां पर, आजावों और समझो अपने पौवारा॥

दो.— विभीषणकी जब सुनी, रावणने यह बात।
मानो स्वकुल के हुवा, गौरव का आघात ॥
(रावण)-स्वावलम्बी होते सदा, शूर मुनि अवतार।
फेर योग्य अयोग्य का चाहिये जरा विचार ॥
चाहिये जरा विचार लिया, क्यों तैने नीच सहारा।
क्षत्रापन के गौरव को, यह है एक धब्बा मारा ॥
यदि वह सचमुच आही गई, तो कट जाय नाक हमारा।
शक्ति होते हुए धूर्त, जनकी संख्या में डारा ॥

दो.— (विभीषण)-ना हमें नीच विचार है, ना कुछ गौरव वहार।
एक लाभ दूजे मिले, करना पर उपकार ॥
शरणागत को शरण दे कर, कष्ट सदा हरना चाहिये।
जो स्वयं मिले लक्ष्मी आकर, तो उसे नहीं तजना जाहिये ॥

इसके प्राणों की रक्षा के, रक्षक भी हम कहलावेंगे ।
फिर करवा देंगे मेल परस्पर, दम्पति हिलमिल जावेंगे ॥
चक्र सुदर्शन आशाली, विद्या ही हमको चाहना है ।
यदि चूक गये तो लाभ, अपूर्व फेर हाथ नहीं आना है ॥
मरते विष के खानेवाले, व्यापारी कभी ना मरते हैं ।
द्रव्य क्षेत्र काल अनुसार सदा, वह सभी कार्य करते हैं ॥
इक लक्ष्य को सन्मुख रखते हुए, यहां हुवा हमारा आना है ।
अब साम दाम और दंड भेद, युक्तिसे काम बनाना है ॥
क्या क्षत्रापन रह जावेगा, ऐसे वापिस हो जाने से ।
या विघ्न ना सन्मुख आवेगा, कुछ आगे कदम बढ़ाने से ॥
यह भी शक्ति एक इन्द्र की, जो दाहिनी भुजा कहलाती है ।
यदि यही हाथ से निकल गई, तो पछताना रहे बाकी है ॥
साधारण कोई चीज नहीं, यह आशाली एक विद्या है ।
यहां घबरा गये सभी योधे, अब पीछे हटें तो निन्दा है ॥
पुण्पोदय यह समझ स्वयम, कुदरत ने मेल मिलाया है ।
अब इसे नहीं तजना चाहिये, यह भी एक अद्भुत माया है ॥
दशकन्धर ने जब सुनो, रहस्य भरी यह बात ।
मौन धार बैठा रहा खुशी से फूला गात ॥

गाना नं. ११

जिधर भी देखो जहां तहां, यह सभी पसारा प्रेम का है ।
नरसुर इस और परलोक, क्या बस सभी नजारा प्रेम का है ॥
ग्रहगणों का भी मेल होता, शशि की शोभा बढाने वाला ।
गिरी द्वीप और समुद्र रचना यह खेल सारा प्रेम का है ॥
बसन्त ऋतु जलवायु सब, जीका प्रेम अनुकूल गूढ होता ।
फलफूल पक्षी व मीठे स्वर क्या, सभी इशारा प्रेम का है ॥

मातपितुकी स्नेह दृष्टि, यार मित्र व वन्धु गण क्या।
स्वामी भ्राता व भगिनी पत्नी, यह नाता सारा प्रेम का है॥
किन्तु होते अनित्य सब यह, धर्म कर्म निज ध्यान भक्ति।
श्रद्धा चारित्र सेवा सतगुरुकी, मोक्षद्वारा प्रेम का है॥
विपरीत होती है इसके सृष्टि, विरोध जहांपर के भापता है।
शुकल उन्नति वहां पर होती, आगमन प्यारा प्रेम का है॥

दो.— एक ने दूजे की लई, मान परस्पर वात।
पुण्य खड़ा आ सामने जैसे शुभ प्रभात॥
रानीने विद्या लई, आशाली और भेद।
विधि सहित साधन करी, मिट गया जो था खेद॥
चक्र सुदर्शन लिया हाथ, जो महा अनोखी शक्ति है।
जिनसे शस्त्र लिये उन्हों, पर ही आ वनी आपत्ति है॥
वस प्रेम ही है वलवान अति, और फूट महा निर्बलता है।
यह है प्रसिद्ध के विरोध जिन्हों में, काम ना उनका चलता है॥
रावण और विभीषण का सव, प्रेमसे भय का फूर हुवा।
और जहां खुशी हरस्यायतथी, वहां से सुख आनन्द दूर हुवा॥
रावणने धावा बोलत ही, दुर्लंघनरेश को घेर लिया।
और होनी ने अपना चक्र, सीधेसे उल्टा फेर दिया॥
स्वाधीन कुबेर किया अपने, और उपरम्भा संग विदा किया।
या यों कहिये कि तौक गले, परतंत्रता का पहिन लिया॥

दो.— कैसी ही हो पण्डिता, कैसी ही प्रवीण।
झूठ दगा उल्टी मति, त्रिया में अवगुण तीन॥

चौपाई— रावण रथनुंपुर करी चढ़ाई। जो थी रडक हृदय दुःख दायी॥
सीमा पर जा कटक जमाया। उसी समय एक दूत पठाया॥

सहस्रार नृप इन्द्र को, कहता बारम्बार ।
बेटा अब ना मान कर, अपना समय विचार ॥

अपना समय विचार, है इस से सहस्रांशु नृप हारा ।
नल कुबेर सुर सुन्दर आदि, मान सभी का मारा ॥
आज्ञा में भूप अनेक, मुख्य सुग्रीव बड़ा बलवारा ।
चढा पुण्य प्रचण्ड तेज, सूर्य सम आज उजारा ॥

प्रथम ही प्रेम बढावो, रावण से भगिनी विवाहो ।
ध्यान गौरव का करना, यदि छिड़ा संग्राम पुत्र तो
पडेगा संकट जरना ॥

सुनी बात जब इन्द्र ने, जलबल हो गया ढेर ।
प्रबल सिंह सम उछल कर, खैंच लई शमसेर ॥

बोला ले तलवार तुम्हीं, ने तो कांटे बोए हैं ।
लंका और किष्किन्धा, आदि देश सभी खोए हैं ॥
कायर अति बल हीन, अपौरूष तुम्हरे मन होए हैं ।
प्रथम ही देता मसल, दिया मुझे रोक आज रोये हैं ॥

अरि की करें बढाई, मेरे मन को नहीं भाई ।
भय क्या दिखलाते हैं, उदय होत ही भानु के
सब तारे छिप जाते हैं ॥

निर्लज्जता की बात है, जो तुम किया विचार ।
शत्रु को दे बहन मैं, करूं सांप से प्यार ॥
इतने में दशकन्धर का दूत भी पहुंचा आय ।
इन्द्र को कहने लगा, पहिले माथ नवाय ॥

दो.— नमस्कार मम लीजिये, धीर वीर महाराज ।
दो अक्षरी एक बात में, कहने आया आज ॥
कहने आया आज आपका, भला सदा चाहता हूं ।
शक्ति भक्ति दो जीवके, रक्षक बतलाता हूं ॥
करो जो हो स्वाधीन आपके, मैं वापिस जाता हूं ।
देओ भेंट संग्राम करो या, अन्तिम समझाता हूं ॥

दो.— दूत वचन सुन इन्द्र को, छाया रोष अपार ।
बे इज्जती से दूतको, धक्का दे किया बाहर ॥
रण तूर बजाया उसी समय, सुन शूर सभी हर्षाये हैं ।
अब वीर परस्पर रण भूमिको, तेजी से उठ धाए हैं ॥
अति घोर संग्राम हुवा जहां रक्त फुवारे चलते हैं ।
आते हैं अग्नि बाण उन्हें जल बाणसे झट मसलते हैं ॥

दो.— शक्तिको सब देखते, पुण्य ओर नहीं ध्यान ।
पुण्य बिना शक्ति सभी, होती तृण समान ॥
मेघनादने इन्द्र की, मुश्कें लीं चढ़ाय ।
मान भंजने के लिये, लंका दिया पहुंचाय ॥
रावण सुतने इन्द्र को, लिया युद्धमें जीत ।
प्रसिद्ध नाम तब से, हुवा जग में इन्द्रजीत ॥
ऐश्वर्य अपना जमा वहां, फिर लंक पातालमें जाने लगे
त्रिखण्डी रावणको सब जन, जय जय के शब्द सुनाने लगे
उत्सव की वह महा धूम, सब तीन खण्डमें छाई है
अब लंकामें प्रवेश किया, घर घर में बंटी बधाई है

दो.— भयानक कारागारमें दिया इन्द्र को ठोंस ।
प्रबल से दुर्बल किया, सम्पदा ली सब खोस ॥

सहस्रार ने बेनती, की रावण से आन ।
पुत्र भिक्षा आपसे, मांगत हूं मैं दान ॥
बोला रावण दूं छोड़ किन्तु, यह ध्यान अवश्य धरना होगा।
अब कुछ दिन लिये, राज्य मार्ग को रोज साफ करना होगा ॥
कर दिया क्षमा हमने इस को, बस एक आपके कहने पर।
वरना यह सजा के लायक था, अपराध का पुंज जमानेभर ॥

- कर प्रतिज्ञा भूपने, इन्द्र लिया छुडाय ।
नीच काम करना पडा, मन में अति पछताय ॥

ई- ज्ञानवान मुनि एक पधारे । तब इन्द्र वेनती उच्चारे ॥
कौन कर्म प्रभु किया अति भारी। जिसने करी दुर्गति हमारी ॥

- पूर्वभव का जो सम्बन्ध, कहें मुनि समझाय ।
जिसका फल तुमको मिला, सुन लो कान लगाय ॥
अरिज नगर में ज्वलन सिंह, नृप वेगवती रानी तिस के।
अहिल्या नामक सुता अनूपम, रूपवती जन्मी जिस के ॥
रचा स्वयम्वर राजाने, नृप आए शोभा मतवाली ।
आनंद माली नृप के गल में, कन्या ने वर माला डाली ॥

- नाम तडित प्रभ तुम, तभा कोपे मन मंझार ।
आनन्द माली से, रहा तेरा द्वेष अपार ॥
अनित्य समझ आनंद मालीने, दुनियां तज चारित्र लिया ।
ध्यानारूढ देख मुनिवर को, तैने दारूण दुःख दिया ॥
आनंद माली का भ्राता, कल्याण मुनि गुण आगर था ।
तेजू लेश्या लगा छोडने, तप जप का जो सागर था ॥

दो.— सत्यवती तब नारने, मुनि शान्त किया आय ।
लेश्या तुरत सहार ली, तुझको दिया बचाय ॥
कई जन्म बाद सहस्रार के घर, आ जन्मा इन्द्र नामसे तू ।
पुण्य भुगत के हुवा लज्जत, मन्द कर्मों के परिणाम से तू ॥
दुःख दिया था जो मुनिराजों को, यह उसका ही फल पाया है ।
फल कर्म गति का समझ इन्द्रने, संयम में चित्त लाया है ॥

दो.— तीन खण्ड का अधिपति, दशकन्धर नृपराय ।
बडे बडे भूपाल सब, गिरे चरण पर आय ॥

चौपाई- एक दिवस दशकन्धर राई । नग सुवर्ण पर पहुंचा जाई ॥
अनंत वीर्य वहां केवल ज्ञानी । तीन काल के अंतर्यामी ॥
सुन उपदेश धर्म सुखदाई । दशकन्धर दिया प्रश्न सुनाई ॥
ऐसा कौन कहो नृप राई । मेरी घात करे जो आई ॥

दो.— मुनिवर ने तब यों कहा, सुनो त्रिखण्डी नाथ ।
पडेगा पाला आपको, वासुदेव के साथ ॥
परनारी सम्बन्ध से, होगा तेरा नाश ।
पुण्य आपका है अभी, कुछ समय तलक प्रकाश ॥
उसी समय रावण ने, दिलमें यह प्रतिज्ञा धार लई ।
परनारी ना चाहे जो मुझको, उससे करूंगा प्यार नहीं ॥
करके नियम चला लंका को, मुनिवर को प्रणाम किया ।
मन बचन कर्मसे नियम, निभाने का दिल निश्चय धार लिया ॥

(इति रावणोत्पत्याधिकार)

(अथ हनुमानुत्पत्ति वर्णनम्)

उत्पत्ति उस वीर की, सुनो लगाकर कान ।
नाम अमर जिन यहां किया, फिर पहुंचे निर्वाण ॥

गाना नं १२

पवन सुत अंजनी के जाए, धर्म के अवतार थे ।
सत्य के प्रतिपाल योधा, देश के शृंगार थे ॥
वीरता के पुंज तेजस्वी, गदा धारी यति ।
लंकपति आदि भी जिनकी, शक्ति पै बलिहार थे ॥
फांद के सागर को खलदल, दल सिया सुध लाये जब ।
राम सैना सहित उन पै, हो रहे बलिहार थे ॥
तेज तप संयम का पालन, भक्ति शक्ति थी अटल ।
देशव्रत धारी थे योधा, सर्व शुद्धाचार थे ॥
क्या लिखें महिमा शुक्ल, उपमा कोई मिलती नहीं ।
दीन के वन्धू थे वह, दुःखियों के प्राणाधार थे ॥

(तर्ज वहरे शिकस्त गाना)

गुण वर्णन मैं करू कहां तक न इतनी शक्ति जवान में है ।
शूर वीरता तेज निराला वीर्य सामर्थ्य हनुमान में हैं ॥
सच्चे पत्त के थे प्रतिपालक उत्पात् वुद्धि हर आन में है ।
कष्ट निवारा था माता का प्रगट नाम किया जहान में है ॥
उपकार तेरा नहीं दे सक्ता यह शब्द राम के जवानमें है ।
वड़े वड़े योधा किय पसया, शक्ति अद्भुत कमान में है ॥
तप संयम की क्या करूं वढ़ाई, शक्तिं नहीं प्रमाण में है ।
शुक्ल विराजे जा शिवपुर में, यह लज्जत पद निर्वाणमें हैं ॥

दो.— रूपा चल पर्वत भला, शोभनीक स्थान ।
बाग बगीचे महल का, गौरव अधिक महान् ॥
आदित्य नगर प्रह्लाद भूप, गृह के तुमतीरानी दानी।
उदयाचल पे भानु प्रकाश, स्वपने में देखा पटरानी॥
वृत्तान्त सुनाया राजा को, नृपने फल स्वप्नका बतलाया।
शुभ जन्म हुवा जब पुत्र का, राष्ट्र भरमें आनन्द छाया॥

दो.— दान बहुत नृपने दिये, निर्धन किये धनवान ।
नाम धरा फिर कुमर का, पवन जय गुणवान् ॥
शुभ लक्षण थे बत्तीस अंगमें, सर्व कलाके ज्ञाता थे।
प्रणवीर कुंवर रणधीर पवन, बलवीर थे जग विख्याता थे॥
माहेन्द्र पुर इक अन्य नगर था, भूप महेन्द्र वहां का था।
थे सौपुत्र बलवान्, और पुत्री का नाम अंजना था॥

दो.— पुत्री के वर के लिये, देखे राज कुमार ।
पवन कुमर विद्युत् प्रभ, थे कुबेर अवतार ॥
प्रथम टेवा विद्युत् का, महाराजा ने मंगवाया है ।
शुभलग्न स्पष्ट करने के हेतु, पण्डित को दिखलाया है।
अष्टांग ज्योतिषी बतलाया, तप संयम चित्त लगायेगा
वर्ष अठारह की आयूमें, प्राणान्त हो जावेगा ॥

दो.— पवन जय निश्चय किया, छोड़ विद्युत उसी आन ।
तीन दिवस में कर दिया, शादी का सामान ॥
पवन जय तब कहे मित्र से, क्या तुमने देखी बाला
पहिले मुझको दिखला दे, जिससे विवाह होनेवाला ।
एक घड़ी का चैन नहीं, बिन देखे राज दुलारी के।
कैसे हैं विलक्षण लक्षण, देखूं जाकर देश दुलारी के।

— प्रहसित मित्र कहे कुमर से, धीर धरो मनमांह ।
सूर्य अस्त हो जाय तो, फिर विचार कुछ नांह ॥
जब हुवा श्यांम का समय, विमान में बैठ माहेन्द्र पुर आये ।
जा खड़ा किया विमान, महल पै अंजना के दर्शन पाये ॥
बैठी हुई संग सहेलियों के, शोभायमान सुकुमारी थी ।
मानों तारा मण्डल में प्रगटी, चन्द्रमुखी उजियारी थी ॥

— पुण्य रूप तन देखकर, पाई खुशी अपार ।
स्नेह दृष्टि से देखते, थके ना पवन कुमार ॥
नवयुवकायें थी इधर, गा रही मंगलाचार ।
होनहार के हृदय में, था कुछ और विचार ॥

(गाना साहेलियों का कव्वाली)

गोरीमुख पर है काली लटा छा रही,
चन्द्रमा पर है मानो छटा छा रही ।
उमड़ आई दरिया वर्सने लगी,
चांदनी चन्द्रमा को तरसने लगी ॥
है जटाशंकरी पर जटा छा रही,
चन्द्रमा पर है मानो घटा छा रही ।
तेरी उलझी लटा कौन सुलझायगी,
हम संवारे तो महदी उतर जायगी ॥
है शुक्ल पक्ष में क्या छटा छा रही,
चन्द्रमा पर है मानो घटा छा रही ।

— सब सखियां थी गा रही प्रेम भरा यह गान ।
तब आरम्भ किया हास्य यों एक सखिने आन ॥

देखो री सखी अंजनादेवी, धर्मात्मा पुण्य निशानी है।
सुर नल कुबेर सम पति, पवनवर मिला अनूपम दानी है॥
है राज दुलारी चन्द्र मुखी, सूर्य मुख पवन कुमार सखी।
अंजना है शीलवती तो पवन भी, वीरता का अवतार सखी॥
चिर जिए युगल जोड़ी वांकी, सौंदर्य के है भण्डार सखी।
जगमें यशकीर्ति पायें शुक्ल, भारत के प्राणाधार सखी॥

दो.— मिश्र केशी कहे सखी, गुण भी देखो बीच।
विद्युत् प्रभ कहां केशरी, पवन जय कहां रीछ॥
वसन्त तिलकाने कहा, तुम नहीं जानो भेद।
विद्युत् प्रभ स्वल्प आयु है, सरती नहीं उम्मेद॥
चौथी बोली सोच समझकर, बात नहीं तू करती है।
कहां अमृत कहां जहर, सभी को एक भाव ही धरती है॥
अपना ही तान अलाप रही, गौरव ना जरा पिछानती है।
यह संस्कार पिछले जन्मों के, तू बावली क्या जानती है॥

दो.— वसन्त तिलका से फिर सखी, बोली कुछ झुंझलाय।
सुन मेरी तू बातको, वृथा ना घबराय॥
स्फटिक रत्न सुकांच कहां, और कहां मुलम्मा कहां मणि
राढ़ा मणि स्वर्ण मेल कहां, कहां हेम कहां लोहिताक्ष मणि।
कहां विद्युत् प्रभ चर्म शरीरी, कहां पवन जय भवधारी
कहां गुलाब और फूल सेवती, केसूफूल लसन क्यारी
सुनते ही व्याख्यान यह, हुवा पवन जय लाल।
तलवार खैंच करमें लई, बोला आंख निकाल॥

चौ.— बोला आंख निकाल मेरा, यह प्रेम नहीं रखती है।
अपमान मेरा सुन खुश होती, मन ही मनमें हंसती है

है इसके आधीन सभी, फिर मना नहीं करती है ।
क्या मित्र यही वह शून्य चित्त, मय अर्धाङ्गनी बनती है ॥

दौड़- मारकर आज दुधारा, करूं इसका सिर न्यारा ।
प्रहसित तब वचन सुनाई, नारी अवध्य कहाए बता
शूरमता कहां चलाई ॥

दो.— राज कुमारी सब तरह, है मित्र निर्दोष ।
निन्दा कुछ करती नहीं, ना मनमें कुछ रोष ॥
विवाहों के यह कार्य हैं, इनका यही स्वभाव ।
गाली हंसी अपमान सब, होते हैं रंग चाव ॥
अभी तो कुछ भी नहीं हुवा, फिर व्याह में तुम्हें दिखायेंगे ।
बर्ताव यही तुमसे होगा, देखें क्या आप बनावेंगे ॥
उसी समय वापिस आये दिल गुस्से में था भरा हुवा ।
पर शादी से इन्कार किया, अपमान का भूत था चढ़ा हुवा ॥

दो.— फिर समझाया मित्रने, प्रेम भाव से आन ।
मांग व्याहे बिन छोड़ना, यह भी एक अपमान ॥
क्षत्री नहीं वह मुर्दा जिसकी, मांग दूसरा ले जावे ।
अपमान है अपने कुल का, और निजमान नहीं परसे जावे ॥
प्रहसित मित्र ने समझा कर, कंगना तथा मुकुट बंधाया है ।
अति सजी जंज गाजे बाजे, हस्तीपर पवन चढाया है ॥

दो.— शोभा अधिक विमान की, वर्णी नहीं कुछ जाय ।
मानसरोवर जाय के, डेरा दिया लगाय ॥
माहेन्द्र नृप की लडकी का, मान सरोवर विवाह किया ।
हस्ती रथ विमान दहेज में, माणिक्य मोतीहार दिया ॥

चौसठ कला प्रविण, अंजना पहिले ही गुण आगर थी।
फिर भी विदा समय माताने, शिक्षा दई सुधाकर थी॥

गाना नं. १२

सिधारो लाड़ली मेरी, यह शिक्षा भूल ना जाना।
यह शिक्षाप्रद वचन मेरे है, भोली भूल ना जाना॥
पतिपूजा पति भक्ति है सच्चा धर्म नारी का।
धर्म सम्बन्धी सब ग्रन्थों का, पढना भूल ना जाना॥
न रखना खेद मनमें प्रेम, करना ननंद देवर से।
सकल सम्बन्धियों का, मान करना भूल ना जाना॥
ससुर सासु से लड़ना झगडना कुढना नहीं होगा।
सदा मिल बैठ करना धर्म, चरचा भूल ना जाना॥
पतिकी चरण धूली का, तिलक मस्तक चढ़ा लेना।
पति पग पे सदा सिर को, निमाना भूल ना जाना॥
आये गृह पे अतिथियों को, खिलाना प्रेम से भोजन।
सती साधु को देना आहार, प्रेम भूल ना जाना॥
कभी भूतों व प्रेतों से, न डरना भूल कर भी तुम।
सदा छलियों के छलछिद्र से, बचना भूल ना जाना॥
नहीं तावीज गन्डों को, भटकना दर पे पोपों के।
किसी धूर्त के फन्दे में, ना फंसना भूल ना जाना॥
किसी यंत्र या मंत्र तंत्र को, करना नहीं सेवन।
यह जादू टूणे हैं सब, पोप लीला भूल ना जाना॥
कभी संकट सताये तो, पढ़ो नमोकार मंत्रको।
सदा अरिहन्त का शरणा, तू जपना भूल ना जाना॥
शुक्ल आनन्द की बर्षा, सदा बर्षे तेरे गृह में
है करता धर्म ही प्राणी की, रक्षा भूल ना जाना।

दो— प्रेमभाव से विदा हो, आये निजस्थान ।
सुनो विचित्रता कर्म की, जरा लगाकर कान ॥
आदित्य नगरमें आते ही, रानी महलों पहुचाई हैं ।
और पवन जय नृप के दिलमें, बस वही रंजगी छाई है ॥
कर्म किसी के सगे नहीं यह, भंग रंग में करते हैं ।
इस कर्म जालमें फंसे हुए, संसारी नित्य दुःख भरते है ॥

दो.— बोली गोली से बुरी, तीखा आरा जान ।
आरा से बोली बुरी, कर देती घमशान ॥
बोल कुबोल न बिसरे, शूल्य समा सालन्न ।
रति कभी न उपजे, प्रति दिन आर्तअन्त ॥
ना कभी पासे जाए रानी के, ना उसको देखना चाहता है ।
अंजना को दिन रात निरन्तर, यहीं रंजो गम खाता है ॥
निश दिन पडी झुरे महलों में, भेद सासु ने जब पाया ।
समझाया बहुविधि कुमर, पर ख्याल तलक भी ना लाया ॥

दो.— प्रहसित तब कहने लगा, तुम हो चतुर सुजान ।
किन्तु उचित तुमको नहीं, अंजना का अपमान ॥
निन्दा उसकी होती है, जो शूरवीर रण से भागे ।
दृढ़ धर्मी वह कहलाता है, जो बुरा काम मनसे त्यागे ॥
वह मित्र दुष्ट जो छल करता, ब्रह्मचारी दुष्ट शील त्यागे ।
बुरा काम वह दुनियां में, जिसके करने से यश भागे ॥
वह नार दुष्ट जो तजे पति, है दूष्ट पति त्यागे नारी ।
वह भी दुष्ट जो न त्यागे वैर वदकार ना तजता वदकारी ॥
वह भी दुष्ट कहलाता है, जो निरपराधी को दुःख दे ।
तथा वह भी होता दुष्ट मित्र को, संकट में ना जो सुख दे ॥

दो.— समझाया सब तरह से, दे उपदेश विशाल ।
एक नहीं हृदय धरी, पत्थर बूंद मिसाल ॥
रावण का एक दूत तब, आ पहुंचा तत्काल ।
जो आज्ञा महाराज की, सभी बतलाया हाल ॥

दशकन्धर की यह आज्ञा है, दलबल लेकर जल्दी आवो।
वरुण भूप नहीं माने आन, तुम जल्द सहायक बन जावो॥
संग्राम महा नित्य होता है, और वरुण अति गर्वाया है।
सुग्रीवादिक सब आ पहुंचे, अब आप को शीघ्र बुलाया है॥

दो.— वरुण भूप के पुत्र में, शक्ति ला मकदार ।
खर दूषण को जिन्होंने, डाला कारागार ॥
है शक्ति में गम्भीर वरुण की, फौज का पार ना आता है।
नहीं हलवे का खैर, बैर ना दिल से जरा भुलाता है॥
सैना है कूंच को त्यार सिरफ, है देर तुम्हारे जाने की।
अब रावण ने दिल ठानी है, शत्रु को स्वाद चखाने की॥

दो.— जंगी वस्त्र पहिन कर, हुवे भूप तैयार ।
झट रण तूर बजा दिया, हाथ लई तलवार ॥
तैयार पिता को देखकर, आये पवन कुमार ।
पिता लड़े संग्राम में, सुत को है धिक्कार ॥
अज्ञानी वह पुत्र रहे घर, पिता जाय संग्राम लड़े ।
है अविनयी वह शिष्य, गुरु की आज्ञा के जो विरूद्ध पढ़े॥
पिता नहीं है दुश्मन जो, बच्चों को नहीं पढ़ाता है।
नहीं शूरमा है कायर, जो रण में पीठ दिखाता है ॥
नालायक वह वहु सदा, जो सास से टहल कराती है।
विनय रहित जो पुरुष, कीर्ति उसकी भी छिप जाती है॥

मैं रहूं पिता संग्राम जाय, यह बात ना मुझको भाती है।
है कायरता का कर्म मुझे, इस कर्म से लज्जा आती है॥

दो.— हय गय रथ पायक सभी, हुवे विमान तैयार।
जंगी वस्त्र पहिन कर, मन में खुशी अपार॥
पता लगा जब नार को, आई दर्शन काज।
हाथ जोड़ कहने लगी, सुनो अर्ज महाराज॥
ना कभी आज्ञा भंग करी, ना तन मन से अपराध किया।
था केवल शरणा एक आपका, क्यों उससे भी धिक्कार दिया॥
आप तो हैं रक्षक मेरे, फिर कसर कोई मुझ में होगी।
जिस अपराध से आपके, मन में नाराजी बैठी होगी॥

दो.— पवन जय जब देखता, तिरछी दृष्टि डाल।
बिन पानी फूल के, महारानी का हाल॥
चमक दमक सब मुर्झाई, शृंगार नहीं कोई अंग में।
शुभ लक्षण जो पडे हुए वह, कैसे छिप सक्के तन में॥
ताम्बूल ना कोई मिस्सी है, ना अंजन आंख में लाती है।
फिर भी तो यह सुन्दर पुतली, हीरे की चमक दिखाती है॥

दो.— आगे बढ रानी झूकी, गिरी चरण में आन।
आप मेरे भर्तार हैं, आप ही प्राण समान॥
एक आसरा चरणों का है, दोष क्षमा सब कर देना।
विजय आपकी हो रण में, फिर दासी को दर्शन देना॥
आप क्षमा के हैं सागर, और नारी मूढ़ अज्ञान हूं मैं।
बार बार तुम चरणों में, इक मांग रही क्षमादान हूं मैं॥

दो.— पवन कुमर ने रोष में, धक्का दे किया बाद।
उस अपराध का अब, तुम्हें आने लगा स्वाद॥

उस समय क्या रसना गहने थी, अब चपर चपर जो चलती है।
बेज्जती सुनकर खुश होती थी, अब चरणी शीश मसलती है॥
ये क्या चारित्र फैलाया है, ऊपर से प्रेम दिखाती है।
जैसा तूने किया काम यह, उसका ही फल पाती है॥

दो.— इतना कह कर कुमर ने, दिना विगुल बजाय।
मान सरोवर जाय के, डेरा दिया लगाय॥
तिरस्कार पति ने किया, रानी चित्त उदास।
बैठ महल में ले रही, लम्बे लम्बे श्वांस॥

(गाना) अंजना का

दिया दुःख ये कर्म ने भारा, हुवा विमुख ये कन्त हमारा।
कोई दोष नजर नहीं आता, ना भेद कोई बतलाता॥
अब यही फिकर एक भारा, हुवा विमुख ये कंत हमारा।
मैंने पिछले भव के मांही, बडे पाप किये दुःख दायी॥
दम्पति के मन को फाडा, हुवा विमुख ये कंत हमारा
जो सुनेगी मात हमारी, दुःख पायेगी अति भारी॥
मैंने किस के पल्ले डारा, हुवा विमुख ये कन्त हमारा
पिहर पूछेगी सखियां मेरी, दुःख सुख की बात घनेरी।
क्या कहूंगी हाल विचारा, हुवा विमुख ये कन्त हमारा
अय कर्म दुष्ट हत्यारे, तेने कब के बदले निकाले।
बर्बे नयनों से जल धारा, हुवा विमुख ये कन्त हमारा

दो.— बसन्त तिलका ने कहा, रानी दिल मत गेर।
सभी ठीक हो जायगा, है कोई दिनका फेर॥
कभी भिखारी बने जीव, कभी राजन् पति बन जाता है
कभी नरक दुःख भोगे जीव, कभी स्वर्ग महा सुख पाता है

जब उदय पाप कोई होता है, तो सबके दिल फिर जाते हैं।
चढ़े पुण्य चरणों में गिरते, और ठोकरें खाते हैं ॥

दो.— मान सरोवर पवन जय, सोया सेज मंझार ।
चकवी पति वियोगमें, रोवे ज़ारो ज़ार ॥
सुने रुदन के शब्द कुमर को, नींद नहीं कुछ आती है ।
पूछा मित्र प्रहसित कहो, यह क्यों इतना चिल्लाती है ॥
इसकी चीख पुकार हमें, आराम नहीं करने देती ।
भर भर आती नींद आंख में, जरा नहीं पडने देती ॥

दो.— प्रहसित कहे यह, दम्पती रहता है संयोग ।
रजनी आ बैरन हुई, स्वामी हुवा वियोग ॥
सोच कुमर को आगई, काम्प उठा तत्काल ।
पत्ती की जब यह दशा, तो अंजना का क्या हाल ॥
इसी तरह वह रात दिवस रोती और कुरलाती होगी ।
हार श्रृंगार छोड़ सारे ना, खाती और पीती होगी ॥
पहिले तो कुछ आशा थी, पर अब निराश हो जावेगी ।
रण से वापिस आने तक, वह अपने प्राण गंमावेगी ॥

चौपाई- उसी समय प्रहसित से बोले । भाव सभी जाने के खोले ॥
सन्तोष बिना मर जावे नारी । है पतिव्रता राज दुलारी ॥

दो.— दोनों बैठ विमान में, आये तुरत आवास ।
रानी दुखमें ले रही, लम्बे लम्बे श्वांस ॥

दो.— प्रहसित तब कहने लगा, रानी खोल कपाट ।
कुमर पवन जय आए हैं, लम्बी करके बाट ॥
रानी तब कहने लगी, कौन है हटो पिछाड़ ।
पहिरे हैं चारों तरफ, तू कहां महल मंझार ॥

चौ.— कौन तू महल मंझार, पति मेरा संग्राम गया है।
छल बल करता कौन, मेरे तू महलों में आया है॥
पकड़ा दूंगी अभी यदि, मरना पसंद आया है।
बारा वर्ष हो गये पति ने, चरण नहीं पाया है॥

दौड़— नाम ना सुनना चाहते, कहो कैसे घर आते।
मुझे तू क्यों बहकावे, भाग्य हीन मैं कहां पति
परमेश्वर दर्श दिखावे॥

दो.— रानीजी निश्चय तुम्हें, भ्रम और संताप।
बैठ झरोखे स्वामी के, दर्शन करलो आप॥

चौ— दर्शन करलो आप प्रहसित, मैं मित्र हूं स्वामीका।
तू है मेरी मात सती, मैं सेवक महारानी का॥
तेरे दुःख से आज दुःखी, हृदय अपार स्वामी का।
देखो दृष्टि डाल नयन, झरना हो रहा पानी का॥

दौड़— कटक सब मान सरोवर, विमान से आए हैं घर।
लौट कर फिर जाना है, देरी का नहीं काम पता क्या
कब मुड़के आना है॥

दो.— बैठ झरोखे अंजना, लगी देखने हाल।
निश्चय कर पट महल के, खोल दिये तत्काल॥
पवन जय प्रवेश हुवा तो, महाप्रसन्नता छाई है।
मेघ शब्द सुन घोरमोर, सममीठी कूक सुनाई है॥
थल पर मीन तडफती को, जैसें जल आके फरस रहा
आषाढ के लगते ही जैसे, बागड में पानी बरस रहा।

दो.— भद्रे! क्षम अपराध मम, दिया तुझे दुःख भूर।
दोष नहीं तेरा कोई, मेरा सभी कसूर॥

बिना विचारे किया काम मैं, मिला तुझे अनजान पति ।
और तू महान् गम्भीर समुद्र, शीलवती है पूरी ॥
अब आर्तध्यान तजो मन से, शीतल स्वभाव चन्दन तेरा ।
मैं हूं कटुक जहर मानिन्द, पत्थर समान हृदय मेरा ॥

— ऐसी बातें मत कहो, लगता मुझ को पाप ।
मैं चरणों की धूल हूं, परमेश्वर प्रभु आप ॥
आप तो रक्षक हैं मेरे, मैं ही निर्भागि, नकारी हूं ।
कुछ दोष नहीं महाराजा आपका, मैं कर्मों की भारी हूं ॥
जो भी है अपराध मेरा, सब भूल क्षमा करना चाहिये ।
मैं हूं नाथ शरीर की छाया, मुझे भूलाना ना चाहिये ॥

— दुःख फिकर जैसा नहीं, दुनियां में कोई रोग ।
खुशी प्रसन्नता सम नहीं, सुख का और संयोग ॥
दुःख चिन्ता सब दूर हुई, अबदिल में अति हर्षाये हैं ।
फिर हंसे रमे दम्पति प्रेम, दोनों ने अधिक बढ़ाए हैं ॥
जब लगा कुमर वापिस, जाने रानी ने गिरा सुनाई है ।
पास चिन्ह कुछ रखने को, यह सब ही बात बनाई है ॥

— प्राणपति तुम तो चले, लड़ने को संग्राम ।
मुझको देते जाइये, उत्तर का सामान ॥
इस बात को सभी जानते हैं, नहीं कुमर महल में जाता है ।
फिर चले आप संग्राम यहां, नहीं मेरी कोई सहायता है ॥
मुझे निशानी दे दीजे क्यों कि, अपवाद से डरती हूं
एक आसरा चरणों का, धर ध्यान गुजारा करती हूं ॥

— नामांकित दे मुद्रिका, पहुंचे कटक मंजार ।
फेर गये लंकापुरी, रावण के दर्बार ॥

रावणने दिया वरूण पे, अपना कटक चढ़ाय।
लगा घोर संग्राम फिर, रणभूमि में आय ॥
अंजना के होने लगे, प्रकट गर्भ आकार।
गुप्तपने की बात भी, कोई न जाने सार ॥
पता लगा जब सास को, केतुमति तसुनाम।
आग बबूला होगई गर्जी सिंहनी समान ॥
अरि पापिनी अंजना, अंजन कैसा नाम।
जैसा तेरा नाम है, वैसा तेरा काम ॥

चौ०— जैसा तेरा काम पापिनी, यह क्या कर्म कमाया।
पुत्र मेरा प्रदेश दुराचारण, कहां उदर बढाया ॥
अरि कलंकिन निर्भागन, तें कुल को दाग लगाया।
कुमर गया नहीं महल, बताये किस का गर्भ धराया

दौड़— पतिव्रता कहलाती, जरा भी नहीं लजाती।
डूब के मर जाना था या तो रखती शील नहीं
मुख नहीं दिखलाना था ॥

सासका गाना नं. १४

अय अंजना पापन महानिरभागिन, खोया है कुल गौरव मे
माया चारी करी तेने भारी
यदि सत्यहाल सुन पाऊंगी, तो दया भी तुजपर लाऊंगी
निर्मा की शकल बनाऊंगी, आयु तेरी निमवाऊंगी
नहीं आफत तुजपर आयेगी, रो रो कर समय वितावेगी
इस घर में जगह न पावेगी, वन वनमें धक्का खावेगी
उपर से भोली सुरत है, हृदय में महा कदुरत है।
धिक्कार ये तेरी सुरत है, जो कुल मर्यादा चुरत है।

बदनामी का ढोल बजा दूंगी, दुनियां से तुझे मिटा दूंगी ।
सम करके अभी दिखा दूंगी, नाकों से चने चबा दूंगी ।।

अंजना का गाना नं. १५

तुहै लासानी-पुण्य निशानी-कायम रहे यह गौरव तेरा
हितकारी सासु हमारी-ध्रुव
किन्तु अंधी यह ताक्त है, जो लाती हम पर आफत है ।
यह नौतर ही जो जाफत है, क्यों गला हमारा कापत है ।।
क्या इस में तेरी वढाई है, गम्भीर तास भी भुलाई है ।
दीनों पर करी चढाई है, जो प्रलय काल बन आई है ।।
ना भरम की कहीं दवाई है, इसका अंजामत वाही है ।
तुज को अब बेपरवाई है, ऐश्वर्य में गरवाई है ।।
कुछ कर्मों से डरना चाहिये, दुखियों का दुख हरना चाहिये ।
यह कोप दूर करना चाहिये, देना सबको सरना चाहिये ।।
सभ रौद्रध्यान यह दूर करो, विनंती हमारी मंजूर करो ।
सब चिंता दूर हजूर करो, चरणों से न हमको दूर करो ।।

ति-अय अंजना पापन, धिक्कार है तेरे सतित्व पर,
पतिव्रत पर, इस कृत पर ।।

ा- अरि प्रथम हृदय में तोलो । फिर कुछ बोलो वचन सुजान,
कर गुणवान सासुजी वोलो कुछ वचन सुधाकर,
कुछ खयालकर, सुन कान कर ।। ध्रुव

- अरि उलटी हम पर धौंस जमाकर बोलती जैसे नृत्यकर ।

- निस कारण क्यों झगड़ा है ।

- क्या सुना नहीं ।

अं.— यह वृथा सब रगड़ा है ।
के— दुख मिला नहीं ।
अं.— अरि होते है गंभीर वडे नित्य निज कर्तव्यपर ध्यान धर ॥
के— कुल को कलंक तै लाया ।
अं.— कहिये कैसा ।
के.— कैसे ये उदर बढ़ाया ।
अं.— चाहिये जैसा ।
के.— अरी धिक्कार हजारोंकार, और धिकाधिक शिक्षक गुरु कृत्यपर॥
अं.— गुरु निन्दा सास न करना ।
के.— बकवाद न कर ।
अं.— कुवचन ना मेरे जरना ।
के— अविनय से डर ।
अं.— गुरु निन्दक से ना डरूं, धरूं ढोकर सुरपति अग्यानी पर॥
के.— वस, जवान को कुलूप लगावो ।
अं.— मैं चोर नहीं ।
के.— कुकर्तव्य पर पछतावो ।
अं.— पति बिन और नहीं ।
के.— माया चारन, व्यभिचारन, लानत है तेरी कुरीत पर ॥
दो.— सास धीर मन में धरो, सुनो लगाकर कान ।
गर्भ तुम्हारे पुत्र का, नहीं और का मान ॥
चौ०-- नहीं और का मान अंगूठी, देख पास है मेरे ।
जिस दिन गये संग्राम, उसी दिन आये रात अंधेरे ॥
या मंगवाले पता वहां से, यदि न निश्चय तेरे ।
कटुक वचन ना वोल सासु, लगते हैं कांटे मेरे ॥

चौ०— अमृत से विष वेल, घन से विजली होती पैदा।
दीपक से जैसे काजल तैसे यह मुझ से हुई पैदा॥
सर्प कटी हुई अंगुली को, रखने से जहर पसरता है।
इसी तरह इस को रखने से, अपयश मेरा वरसता है।

दो.— देख सका ना दुःख महा, मंत्री चतुर सुजान।
राजा को कहने लगा, ऐसे मधुर जवान॥
राजन् करना चाहिये, सोच समझकर काम।
गुप्त महल रखो इसे, लेवो भेद तमाम॥
ससुर गृह रुसे लडकी तो, पिहर में आ जाती है।
यहां से आगे और कहीं पर, ठौर नहीं दिखलाती है॥
जल में नहीं अग्नि होती, ना ज्ञान असंगी पशु में है।
इस लडकी में कोई दोष नहीं, यदि है तो केवल सासु में हैं॥

दो— मंत्री तुमको नहीं पता, पवन जय प्रदेश।
यहां भी घृणा थी उन्हें, कारण कौन विशेष॥
अपनी बेज्जती पर मंत्री, सब कोई पडदा पाता है।
ऐसा कौन है दुनियां में, जो अपनी धूल उडाता है॥
जब छिपी हुई यह बात नहीं, फिर कहो तो क्या बन सकता है।
यदि वमन उछल गई छाती से, उसे रोक कौन जन सकता है॥

दो.— आज्ञा पाकर भूप की, ले गये बन मंझार।
बसन्तमाला और अंजना, छोड दई निराधार॥
दोनों उस वन खण्ड में, रोवें आंसू डार।
व्याकुलता छाई अति, दर्शत कष्ट अपार॥

अंजना गाना नं. १६

दुःख पड़ गया हमपर भारा, इस बेज्जती ने मुझको मारा
वारा वर्ष पति की जुदाई, मुश्किल से बनी थी रसाई॥

फिर गर्भ ये मैंने धारा । इस बेज्जती..........॥१॥
फिर सासने ताने मारे, वो भी सहन किये मैंने सारे ।
आखिर काला मुंह करके निकारा, इस बेज्जती......॥२॥
पितापालक भी हो गया उलटा, माता भाई भी ना कोई सुलटा।
अबतो आशा भी कर गई किनारा, इस बेज्जती.....॥३॥
जिस माता ने था जन्म धारा, हाय उसने दिया ना सहारा ।
पति भी परदेश सिधारा, इस बेज्जती..........॥४॥
खिला किस्मत का यह फिसाना, मेरा शत्रु बना कुल जमाना।
प्रभु तेरा एक सहारा, इस बेज्जती...............॥५॥
कौन धीर बंधावे हमारी, इस बन खण्ड के मझ धारी ।
बिना धर्म ना कोई हमारा, इस बेज्जती..........॥६॥
कहां संग की सहेली हमारी, पास रहती थी हर बारी ।
आज सबने किया है किनारा, इस बेज्जती........॥७॥

दो – (वसन्तमाला) रानीजी धीरज धरो, तुम हो गुण गम्भीर ।
रोने से कुछ ना बने, हरो धीर से पीर ॥

वसन्तमाला बहरे तवील गाना नं. १७

अरि रानी तू रोके सुनाती किसे,
बिना धर्म के कोई हमारा नहीं ।
आके कष्ट में कोई सहायक बने,
ऐसा दुनियां में कोई प्यारा नहीं ॥
रानी जब तक सरोवर में पानी रहे,
वहांचारों तरफ से आमेला भरे ।
सूखे पानी कोई ना चरण आ धरे,
उडता पत्ती भी लेता उतारा नहीं ॥

सारे माता पिता मित्र बन्धु कोई,
और सासु ससुर भाई दारापति।
कोई मीठा वचन भी न कहता सती,
जब होता है पुण्य सितारा नहीं।
जिनराज भजो मन धीर धरो,
सिद्ध ईश्वर प्रभुका ही ध्यान करो
शुक्ल शोभन कर्म से ही पाप हरो,
बिना धर्म के होगा गुजारा नहीं।

अंजना गाना नं. १८

कर्म चक्र ने निश्चय मुझे, दरदर रुलाया है।
किसी का दोष क्या इसमें, लिखा कर्मों का पाया है
किसी को आसरा देकर, निराशा कर दिया होगा।
इसी कारण मेरी जननी ने, भी मन से भुलाया है
सताई है अवश्य निर्दोष, कोई आत्मा मैंने।
मुझे व्यभिचारिणी कहकर, जो सासुने सताया है॥
किसी प्यारी को प्रीतम से, जुदा मैंने किया होगा।
यही कारण जो विरहानल, ने मन मेरा जलाया है।
विपत्ति सम्पति ऐश्वर्य, सुख दुःख और निर्धनता।
स्वयं निज कर्म से प्रत्येक, प्राणी ने बनाया है॥
इमानत में खयानत, शुक्ल मुझ से हो गई होगी।
जो मुझ से मेरे जीवन, धन को कर्मों ने छुडाया है

दो.— दासी कहे रानी सुनो, यह वन खण्ड उजाड़।
रो रो कर मर जांयगी, कुछ नहीं निकले सार॥

चौ.— कुछ नहीं निकले सार, शेरचीतादि खा जावेंगे।
चलो अगाडी निकल कहीं, विश्राम फेर पावेंगे॥

पाल गर्भ हो पुत्र तेरे, दुःख सभी भाग जावेंगे ।
पुत्र का मुख देख देख, मन अपना बहलावेंगे ॥
दौड़— धर्म है एक सहाई, ना कर चिन्ता मन मांही ।
ध्यान ईश्वर का लावों, पंच परमेष्ठी हिये धार
रानी मत दिल घबरावो ॥
दो.— दोनो आगे बढ़ चली, निर्जन वन घन घोर ।
हिंसक जीव फिरें अति, बोल रहे कहीं मोर ॥
एक मुनि वहां गुफा में, खडे लगाकर ध्यान ।
दासी से रानी कहे यह, क्या देख पहिचान ॥
दो.-(दासी) आते हैं मुझ को नजर, है कोई मुनि महान् ।
निश्चय कर मैंने कहा, करते आत्म ध्यान ॥
श्वेत वस्त्र हैं जैन मुनि, मुखपर मुख पत्ती लगी हुई ।
दो हाथ लटक रहे नीचे को, और दृष्टि ध्यानमें जमी हुई ॥
ये लाखों में नहीं छिप सकते, निग्रन्थ मुनि अति श्रेष्ट यति ।
बस अब समझो की आन जगी, महारानी अपनी पुण्य रति ॥
दो.-(रानी) दर्शन हों निग्रन्थ के, निश्चय कटते पाप ।
दासी मेरी फड़कती, बामी शुभ है आंख ॥

गाना नं. १९

समझ ले अब विपत्ति, दूर सारी होनेवाली है ।
जाग आयेगी शुभ किस्मत, मुसीबत सोनेवाली है
मुनि के चल करें दर्शन, हाल पूछेंगे कर्मों का ।
श्री जिनवाणी मेरे, आज मलको धोनेवाली है ॥
पुण्य मेरे उदय आये, पाप सब दूर जायेंगे ।
कृपा अरिहन्त भगवान् की, बीज शुभ बोनेवाली है ॥

रत्न सम्यक्त्व है मुझ पर, शील सन्तोष भी कायम।
मुनि संगति मेरी यह आज, कालिस खोनेवाली है॥
विपत्ति और अटवी में, अनुपम लाभ यह पाया।
मेरे इस धर्म गौरव को भी, दुनियां जोहनेवाली है॥

चौपाई- उसी समय मुनि पास सिधाई। दर्शन कर रानी सुखपाई
धन्य जन्म प्रभु तुमने धारा। आप तरें औरों को तारा
मैं दुःखियारी निर आधारा। धर्म रूप आसरा तुम्हारा
चरण कमल प्रभु शीश नवाऊं। अनमोल समय यह कब पाऊ

दो.— विधि सहित वन्दना करी, करके अति गुण ग्राम।
थकी हुई थीं बैठ कर, लगी लेन विश्राम॥

चौपाई- दासी ने फिर शीश निवाया। कर वन्दन निज हाल सुनाया
कारण कौन प्रभु बतलावो। कर्म भेद सारा दर्शावो
कलंक लगा किस कारण भारी। जिसने हम पर विपदा डारी
अमित गति चारण मुनि बोले। क्रर्म सिद्धांत भेद सब खोले
अनंत कर्म कहां तक बतलावो। कुछ जन्मों का हाल सुनावें

दो.— सुन ले रानी कान धर, कर्म बीज वट वृक्ष।
जिसका फल तुम भोगती, दोनों ही प्रत्यक्ष॥
जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में, मन्दरपुर वर नगरी कहिये
प्रिय नन्दी एक वणिक्, जया नामक जिस की नारी लहिये
पुत्र नाम सागर तिसके, बाग भ्रमण एक रोज गया
दर्शन करके श्री मुनिराज के, सम दम खम की खोज हुवा

दो— निर्मल व्रत को पाल के, दूजे स्वर्ग मंझार।
रूप वैक्रिय धार के, भोगे सुख अपार॥

नगर मृगांक हरिचन्द्र नरेश्वर, प्रियंगु लक्ष्मी रानी ।
स्वर्ग छोड़ रानी के जन्मा, सिंह चन्द्र सुत सुख दानी ॥
पुनः देव लोक पहुचे, तप संयम शुभ करनी करके ।
आगे सुनो वृत्तान्त इसी का, फिर जन्मा जहां आ करके ॥
वैताड़ गिरि है अरुण पुर, भूप सुकण्ठ उदार ।
कनकोदरीरानी भली, रूप कला सुखकार ॥
कनकोदरी के पुत्र हुवा था, नाम सिंहवाहन जिसका ।
राज सम्पदा भोग फेर, संयम में ध्यान हुवा तिसका ॥
विमल नाथ के शासन में, लक्ष्मीधर मुनि थे तपधारी ।
पास उन्हीं के संयम लेकर, तप संयम किया अतिभारी ॥

दो.— शरीर औदारिक छोड़ के, लंतक स्वर्ग मंझार ।
मन इच्छित भोगे वहां, जिसने सुख अपार ॥
पूर्ण करके वह सुर की आयु, गर्भ तेरे में आया है ।
सुख दायक सन्देशा अंजना, यह पहिले तुम्हें सुनाया है ॥
इस पुत्र के पैदा होते ही, सब दुःख तेरा नस जायेगा ।
और पूर्व से भी अधिक, तेरे हृदय में सुख वस जायेगा ॥
चर्म शरीर जीव इसी भव में, यह मोक्ष सिधायेगा ।
यह नाम प्रसिद्ध करे तेरा, अति शूर वीर कह लायेगा ॥
अब हाल तेरा वतलाते हैं, यहां कनक रथ एक राजा था ।
थी कनका पुरी राजधानी, नीति से राज्य चलाता था ॥

दो.— कनकोदरी लक्ष्मीवती दो थी जिसके नार ।
कनकोदरी के सुत हुवा, रूप कला शुभकार ॥

चौपाई– लक्ष्मीवती सुत दिया न कोई । पुत्र विरहमें माता रोई ॥
भेद मिला सुत लिया निकाल । वारा घड़ी दुःख हुवा मुहाल ॥

हुई बेज्जती और कर्म बन्धाया। उसका फल रानी तू पाया॥
फिर लक्ष्मीने धर्म शुद्ध पाला। पहिले स्वर्ग सुख अधिकरसाला॥

दो.— देव लोक सुख भोग के, आई तू इस धाम।
पवन जय है पति मिला, अंजना तेरा नाम॥
वसन्ततिलका यह बहिन तेरी, थी इसने प्रशंसा अति करी।
सामूदानी कर्म भोगनको, यह भी तेरे साथ वरी॥
जो कोई दुःख दे औरों को, वह कभी नहीं सुख पाता है।
बस्मा जैसे कभी नहीं, मेंहन्दी जैसा रंग लाता है॥

दो.— अशुभ कर्म रानी तेरा, होने वाला दूर।
मामा आन मिले तुम्हें, मिले सभी सुख भूर॥
पति भी आन मिले जल्दी, मत घबरावो मनमें रानी।
गगन गति कर गये मुनि, चारण कह कर शीतल वाणी॥
रानी ने चरण धरा आगे, एक सिंह सामने जबर खड़ा।
वह देख शेर को घबराई, जैसे हृदय पर वज्र पड़ा॥

दो.— शरण ले अरिहन्त का, पढ़न लगी नवोकार।
उधर खडा है शेर वह, इधर खडी है नार॥
शील धर्म का तेज शेर, नहीं आगे पैर बढाता है।
अनमोल श्री जिन धर्म, सभी आपति दूर भगाता है।
मणि चूड एक विद्याधर, उस वनमें गया विचरने को
और अष्टापद का रूप किया, अबलाओं का दुःख हरने को

दो.— अष्टापद के रूप को, देख भगा वह शेर।
रानी भी आगे बढी, तनिक न लाई देर॥
आगे जाकर आ गया, सुन्दर एक स्थान।
दासी रानीने वहां, किया देख विश्राम॥

गाना नं. २१

बताएं क्या भला तुम को, निशां अपना पता अपना
नहीं संसार में कोई, नजर आता सगा अपना ॥
न माता न पिता कोई, न सासु ही बनी अपनी।
पत्नि जिनकी बनी थी मैं, नहीं वह भी बना अपना
नहीं पातालमें आकाशमें, तिरछे में टोह अपनी।
रही एक सिद्ध शिला बाकी, वहां पर वास ना अपना
ठिकाना बेठिकानों का, किसी बनमें ना उपवन में।
निरासा मात है अपनी, दर्द दुःख है पिता अपना
जगत भरने तो ठुकराया, भुलाये भुलना चिन्ता।
शुक्र में ढूंढ हारी ना मिला, कोई सखा अपना ॥

दो.— (प्रतिसूर्य) समझ लिया मैंने, तुम्हे है आपत्ति भू
कहो यथार्थ बात जो, करूं सभी दुःख दूर ॥

दो. (**वसन्ततिलका**)-पवन जय भर्त्तार हैं, माहेन्द्र नृप तात
केतुमती सासू सही, हृदय सुन्दरीमात ॥
नाम अंजना रानी का मैं हूं, वीरन दासी इसकी।
नहीं सासरा पिहर हमारा, तो फिर आस करें किसक
पवन जय संग्राम गए हैं, केतुमति घर कंकाली।
कलंक दिया घर बाहर निकाला, यह हम पर विपदा डाल।॥

दो.— प्रति सूर्य कहने लगा, नयनों में भर नीर।
मैं पुत्री मामा तेरा, धारो मनमें धीर ॥

चौपाई- पुत्र भानजी सखी समेत। बैठे विमान अति दिल हेत॥
निज नगरी को चला महाराय। हर्ष हृदय में नहीं समाय॥

.— विमान वीच एक झूमका, सुन्दर शब्द रसाल ।
वच्चा लेने उछलता गिरा, धरन तत्काल ॥
माता हुई उदास वदन के, रंग ढंग सब बिगड गये ।
किया रुदन अपार मात क्या, सब ही के दिल धडक गये ॥
गिरा समझ पर्वत ऊपर, जीने से सभी निराश हुए ।
प्राण परवेरु समझ लिया, अब इसके परभव वास हुए ॥

.— उसी समय विमान को, नीचे लिया उत्तार ।
देखा वच्चा शिला पर, करता सुख संचार ॥
कुमर गिरा जिस शिला पर, हो गई चकनाचूर ।
कहे मामा पुण्यवान् यह, महाबली अति शूर ॥
उसी समय ले किया प्यार फिर, शीघ्र मात के अंक दिया ।
जरा मात्र ना लगी चोट यह, समझ नाम वज्रंग दिया ॥
माताने लेकर वच्चे को, अपने हृदय लगाया है ।
वह खुशी कथन नहीं कर सकते, फिर आगे पेंच दवाया है ॥

पाई- आ उत्सव हनुपुर में कीना । मामे दान खोल कर दीना ॥
कैसे कहें अद्भुत छविन्यारी । घर घर मंगल गावें नारी ॥
हनुपुर नगर दशोठन भारी । हनुमत नाम दिया सुखकारी ॥
अपर नाम श्री शैली प्रधान । कल्प वृक्ष सम सुख समान ॥
राजहंस जिम क्रीडा करे । वत्तीस लक्षण शुभ अंग परे ॥
सुत को देख मात सुख पावे, दाग देख अति मन में लजावें ॥

.— और दुःख सब हट गये, सुख मिल गया अमोल ।
दुःख एक वाकी रहा, जो सिर चढा कुबोल ॥
धन्य घडी धन्य भाग वही, जब पति मेरा घर आवेगा ।
रही समुद्रडूव वही, कालस आ दूर हटायेगा ॥

सत्य मेरे प्रगट होगा, यह दाग पति आ धोवेंगे।
धक्के दिये जिन्होंने मुझ को, लज्जित अन्त्यम होवेंगे।

दो.— पवन जय नृप वरुण से, जीता दल में जाय।
हर्ष हुए दिल में अति, सब प्रशंसें आय ॥
प्रस्थान किया सबने वहां से, रावण लंका में आया है
और पवन जय ने आन पिता, माता को शीश नवाया है।
जब पता लगा निज़रानी का, हृदय पर वज्रपात हुवा
झट गिरा धरन पर मूर्च्छित हो, पितु माता को संताप हुवा।

दो — निर्दोष को दुःख दिया, अन्याय किया तें मात।
बिना मौत मारा उसे, मेरी कर दई घात ॥

चौ०— मेरी करदई घात मात, तैने यह पाप कमाया।
बारह वर्ष सहा दुःख जिसने, अन्तिम धक्का खाया॥
पहिले देकर दोष फेर, तनें पिहर पहुंचाया।
इसका फल अब समझ मात, तूने पुत्र नहीं जाया॥

दौड़— कहां देखूं अब जाई, शेर चीते ने खाई।
मरूं अब मार कटारा, निर्दोषन को दिया दुःख
मैं महापापी हत्यारा ॥

दो.— मात पिता तथा मित्र ने, लिया कुमर समझाय।
देखन को चारों तर्फ, दिये विमान दौड़ाय ॥
अंजना के पितु मातसे, पता लिया नृप जाय।
महेन्द्र नृप ने कहा, वन खण्ड दी पहुंचाय ॥
साले आदि चले सभी, सब स्थानों में खोज करी।
पैदल फौज फिरे वन वन, विमान शहर और गिरि गिरि

नहीं पता चला कुछ रानी का, तब पवन जय घबराया है ।
और पास बुलाकर मित्रको, अपना सब भेद बताया है ॥

मित्र कहो जा मातसे, मम अन्तिम प्रणाम ।
मिली नहीं अंजना सती, करूं वास सुर धाम ॥
समझाया मित्रने पर, नहीं कुमर एक मनमें ठानी ।
फिर शस्त्र सब लिये मांग, प्रहसित बोल मीठी वाणी ॥
चला वहां से माता को, जो था सब हाल सुनाया है ।
सुन गिरि धरन मुर्छित हो के, इतने में राजा आया है ॥

हो सचेत कहने लगी, मैं पापिनी निर्भाग्य ।
वधु गई पुत्र चला, लगी कलेजे आग ॥

गाना नं २२ (महारानी केतुमति)

जो सतावे और को, सुख वह कभी पाता नहीं ।
आन अब मुझ पर बनी, यह दुःख सहा जाता नहीं ॥
मैंने सताई अंजना, पुत्र मेरा मरने लगा ।
राज गारत हो सभी, यह दुःख मुझे भाता नहीं ॥
बेटा प्रहसित तूने कभी, मित्र जुदा किया नहीं ।
आज क्या होनी बनी, क्यों जाके समझाता नहीं ॥
छोड तू आया अकेला, घात प्राणों की करे ।
फिर शुक्र मैं क्या करूं, कुछ भी कहा जाता नहीं ॥

(प्रहसित) माताजी मैं क्या करूं, समझाया हर बार ।
जब मैं कुछ न कर सका, तब आ करी पुकार ॥
शस्त्र तो मैं ले आया, करे और ढंग कुछ खबर नहीं ।
था दिल में बैचेन उसे, कोई घडी पलक का सबर नहीं ॥

शीघ्र बैठ विमान चलो, जाकर उनको समझायेंगे।
यदि हुई देर अपघात करे, कर मलते ही रहा जावेंगे॥

दो.— इतने में ही आ गया, हनुपुर से विमान।
अंजना का जो था पता, सभी बताया आन॥
राजा रानी और मित्र, प्रहसित पवन जय पे आये हैं।
था जलने को तैयार चिता में, देख सभी घबराये हैं॥
शीघ्र कुमार को हटा लिया, लक्कड़ सब दूर हटाये हैं।
हनुपुर है अंजना रानी सब भेद खोल दर्शाये हैं॥

दो (प्रहलादनरेश) शूर वीर योधा बली, क्षत्रिय राजकुमार।
नारी पीछे जान दे, यह का करी विचार॥

दो (पवनजय) अबला पीछे मरन का, मम नहीं पिता विचार।
निर्दोष को दुःख दिया, यही कष्ट अपार॥
इतने कष्ट दिये सबने, नहीं रोष फिर भी लाती है।
अवगुण तज लेती गुण सब के, पूर्ण सती कहाती है॥
पतिव्रता विनयवान् पूरी है, मानन्द शीतलचंदन के।
धर्मदृढ दुःख सहने में, ऐसी जैसे तरुवर बनके॥

दो.— पवन जय आदि सभी, हनुपुर हुए तैयार।
बैठ विमान में चल दिये, दिल में खुशी अपार॥
खेचर ने जाकर कहा, हाल अंजना पास।
दुःख पति का सुन हुई, मन में अति उदास॥
क्या मैं पापिन ऐसी जन्मी, जो सब को ही दुःख दायी हूं।
सुख नहीं देखा एक दिवस का, जिन दिन की परछाई हूं॥
फिर नहीं ऐसा कर्म करूं, मुनिराज ने जो बतलाया था।
कर्म बीज हो गये गिरि, घुल बारह घड़ी कमाया था॥

प्रति सूर्य भूपालने, लिया विमान सजाय ।
अंजना सुत दासी सभी, बैठे मन हर्षाय ॥
गये सामने मिलने को, मित्र प्रहसित की नजर पड़ी ।
झट बोले देखो पवन कुमर, यह दासी रानी दोनों खड़ी ॥
इतने में ही आन मिले, तो खुशीका ना कोई पार रहा ।
मिले प्रेमसे आपस में, सुख दुःख का सारा हाल कहा ॥

हाथ जोड़ अंजना सती, गिरि चरण में आन ।
पति देव का इस तरह, करन लगी गुण गान ॥

गाना नं. २३ (अंजना)

मेरे तुमही इष्ट देव, दूसरा ना कोई । (स्थायी)
विन पति पत लाज गई, सासु ससुर ने त्याग दई ।
कोटी विपत्ति नाथ सही, यह दुर्गति भई ॥ १ ॥
दर्शन विन नाहीं चैन, खोजत थके राह नैन ।
दीन दुःखी करत बैन, रैन दिवस रोई ॥ २ ॥
जब से पिया रूठ गये, कोटी प्रभु कष्ट सहे ।
गौरव गुण नष्ट भये, विपत बेल बोई ॥ ३ ॥
आवो पिया पधारो पिया, दर्शन दिखावो पिया ।
नेत्रों की ज्योत शुष्क, वाट तकत खोई ॥ ४ ॥

हनुमान के रूप को, देख मोहित नर नार ।
सभी लाल को प्रेम से, लेते हाथ पसार ॥
उसी समय ले पिता पुत्र को, हृदय तुरत लगाया है ।
पुण्य सितारा देख कुमर का, पवन जय हर्षाया है ॥
कोई शीश चरण चूमे उसके, कोई प्रेम से लाड लडाता है ।
कोई करे लाड की बातें और, कोई लेकर गोद खिलाता है ॥

दो — मात पिता भाई बहिन, सम्बन्धि परिवार ।
सभी हनुपुर आ गये, मिलते भुजा पसार ॥
भीड एकत्रित हुई बहुत, सब अंजना के गुण गाते हैं।
याचक लोग सभी खुश होकर, जय जय शब्द सुनाते हैं॥
उत्सव अधिक हुवा भारी, दस दिन तक मंगलाचरण रहा।
सब क्षमा मांगते अंजना से, महासति शब्द गुंजार रहा॥

दो.— क्षेम कुशल वर्ती वहां, सभी प्रसन्न महान् ।
फिर वहां से प्रस्थान कर, पहुंचे निज स्थान ॥
आठ वर्ष का जब हुवा, हनुमान सुकुमार ।
गुरु कुल में पढने लगे, विद्या ही गुण सार ॥
सौलह वर्ष पढी विद्या, सब बहत्र कला का ज्ञान हुवा।
शस्त्र कला शास्त्र वेत्ता, शूर वीर बलवान हुवा ॥
वरुण भूप दशकन्धर का, फिर से युद्ध अपार हुवा
आज्ञा पा दशकन्धर की नृप पवन जय तैयार हुवा ॥

दो.— पवन जय प्रति सूर्य लगे युद्ध में जान ।
सन्मुख आ हनुमान ने, करी चरण प्रणाम ॥

चौ०— करी चरण प्रणाम, आपकी प्रेमाज्ञा पाऊं मैं ।
स्वयं विराजें सिंहासन, संग्राम पिता जाऊं मैं ॥
वरुण भूप को कुचल कुचल कर, अभी वापिस आऊं मैं
धरोपीठ पर हाथ मेरे, क्षत्री सुत कह लाऊं मैं ॥

दौड़— धसूंगा जब जा रण में, मचे खलबल सब दल में
क्षत्रीय का बच्चा हूं, देवो मुझे आसीस नहीं
के फन में कच्चा हूं ॥

आज्ञा पा भूपाल की, चला वीर हनुमान ।
सुग्रीवादिक भूपति, मिले युद्ध में आन ॥
लगा घोर संग्राम होन, फिरे दलबल का कोई पार नहीं ।
नभ में लडे विमान और, चलते हैं अग्नि के बाण कहीं ॥
वरुण भूप के पुत्रों ने, दशकन्धर नृप को बांध लिया ।
जब लगे उठाने रावण को, हनुमान ने आकर रोक दिया ॥
वरुण सुतों पर डालकर, नाग फांस का जाल ।
दशकन्धर को हनुमान ने खोल दिया तत्काल ॥
क्रोधातुर हो वरुणभूपने, हनुमान को फिर घेर लिया ।
लिये सहायता के रावण ने, निज दल आगे ठेल दिया ॥
वज्रन्ग चढे जब तेजी से तो, सभी वरुण दल घबराया ।
चिन्ह दिया झट सन्धी का, है समय समय की सब माया ॥
मान सभी मर्दन हुवा, अन्तिम मानी हार ।
शर्तें रावन की सभी, करी वरुण स्वीकार ॥
वरुण भूप की कन्य का, सत्यवती शुभ नाम ।
परणाई हनुमान को, समझ वीर अभिराम ॥
अनंग कुसुमा शूर्पनखां की, पुत्री रूपवती प्यारी ।
वह हनुमान को परणाई, रावण ने समझा हितकारी ॥
वानर पतिने निज पद्म, सुरागा पुत्री वज्रन्ग को व्याही ।
शूरवीर अति वली समझ, राजों ने पुत्रियां परणाई ॥
आदर पा हनुमत घर आया । मातपिताको शीश निवाया ॥
भोगे सुख पूर्ण संसारी । धर्म जिनेश्वर अति हितकारी ॥

(जनकपरिचय)

मिथुला नगरी अति भली, हरिवंशी राजान ।
वासव केतु भूपति, विफला नार सुजान ॥

तेज बड़ा रवि तुल्य है, नाम जनक जग जोय ।
प्रजा पाले प्रेम से, पिता सरीखा होय ॥

रामचन्द्रोत्पत्ति वर्णन

दो.— जिस कुल में पैदा हुवे, श्री रामचन्द्रजी आन ।
हाल सुनो क्रम से सभी, हुए जो हैं राजान् ॥

चौ.— जम्बू द्वीप दक्षिणार्ध, अयोध्यापुरी राजधानी थी ।
आदीश्वर आद्य नरेश, जिन्होंने दया मुख्य मानी थी ॥
सुनन्दा सुमंगला नृप के, दो सुन्दर रानी थी ।
निन्यानवें पुत्र सुमंगला के, हुए बडी जो पटरानी थी ॥

दौड— सुनन्दा के बाहूवल, एक ही सिंह अतुल वल ।
बडा भरतेश्वर ही था, वज्र ऋषभ संहनन जिन्हों का
रूप अति सुन्दर था ।

दो.— पुत्र बहुत भरतेश के, बडा सूर्य यश नाम ।
राज तिलक उसको हुवा, शूर वीर वलवान् ॥
सूर्य यश से सूर्य वंश, शुभ नाम प्रसिद्ध हुवा भारी
क्रम से भूप अनेक हुवे थे, शूर वीर पर उपकारी ।
मुनि सुव्रत स्वामी के समय थे, विजय नरेश्वर वलधारी
पुरन्द्र वज्र वाहु दो नंदन, हेम चूला तिस की नारी ।

चौपाई— नगर आदितपुर अति अभिराम । हेम वाहन राजा का नाम
चूड मणि नामक पट्टनारी । पुत्री मनोरमा अति सुखकारी
वज्र वाहु संग किया विवाह । मंगलाचार हुवा उत्साह
नव वधु कुमर एकदिन लाया । उदय सुन्दर सालासंग आया
मार्ग में मुनि सागर पाया । देख कुमर ने शीश नवाया
कर गुणग्राम चरण कर लाये । धन्य भाग शुभदर्शन पाये

चौपाई– जब घर नन्दन जन्में आई। तब संयम लेना नृप राई॥
जिस के पीछे नहीं संतान। उसका घर श्मशान समान॥

दो.— मंत्री की यह बात सुन, लिया भूप मन मोड।
बोला सुत होगा तभी, देवेंगे मोह तोड॥
सह देवी के पुत्र हुवा, नहीं भेद बताया रानी ने।
पर ऐसी नहीं यह चीज हमेशा छिपे कहीं राजधानी में॥
लगा पता जब भूपति को, तो जन्म उत्साह किया भारी।
सुत अपने को दिया राज, और आप बने संयम धारी॥

दो.— जिन वाणी हृदय धरी, करते उग्र विहार।
पुरी अयोध्या आ गये, विचरत वह अणगार॥
सुना आगमन मुनि का, रानी मन दुःख पाय।
प्रथम राज को तज गया, कहीं अब ना सुत ले जाय॥
अन्य फकीर बुलाये रानी, जटा जूट जक्कड धारी।
दिनरात जहां उड़ता सुलफा, और बम बम शब्द रहे जारी॥
फिर उन से कहा यह रानीने, यह साधु शहर बाहिर कर दे।
यदि तंग करे तुमको कोई, तो मुझ को झट खबर कर दो॥

दो.— अब तो फिर क्या ढील थी, चढे वह भंगड नाथ।
नगर बाहिर मुनि कर दिया, धक्कम धक्के साथ॥
जब सुनी बात यह जनता ने, तो दिल में दुःख हुवा भारी।
यह दशा देख कर बावों ने, की रानी से आहो जारी।
शांत भाव मुनिराज रहे, न क्रोध जरा भी आया है।
और उधर धाय माताने, भूप सुकोशल को समझाया है।

दो.— विचरत मुनि आया यहां, बेटा तेरा तात।
नगर बाहर करवा दिया, ऐसी तेरी मात॥

लाड चांव के साथ में, पाला तेरा बाप ।
हाय आज इसको दिया, रानीने संताप ॥
सुकोशल ने जब सुने, धाय मात के वैन ।
दारुण दुःख हृदय हुवा, भर आया जल नैन ॥
अहो खेद माता ने पिता, मुनि दुःख दे बाहिर निकाला है ।
फिर हैं संसार से त्यागी वह, संयम व्रत जिन्होंने पाला है ॥
फंसे जो प्राणी दुनियां में, उसका होता मुंह काला है ।
मिले मोक्ष सुख उसे गायन, जो प्रभु का करने वाला है ॥

— हुवा तैयार नृप जान को, उसी समय मुनि पास ।
विरक्त भाव मन में लगी, संयम की अभिलाष ॥
चित्र जय माला रानी ने, निज पति से विनय उचारी है ।
राजवंश विन सुत के स्वामी, कैसे चले अगाडी है ॥
जा पुत्र तेरे गृह जन्मेगा, भूपाल ने ऐसा वतलाया ।
राज तिलक देना उसे, रानी मेरे मन संयम भाया ॥

— मंत्री के सिर पर धरा, सभी राज का भार ।
आप पिता के पास जा, संयम व्रत लिया धार ॥
जव सुना मात सहदेवीने, झट गिरी धरन मूर्छा खाकर ।
वह आर्तध्यान के वशी भूत, मर वनी सिंहनी अति भयंकर ॥
सुकोशल और कीर्तिधर, मिल पिता पुत्र यह दोनों मुनि ।
तप संयम में लीन हुए, शुभ शुक्ल ध्यान में लगी ध्वनि ॥

— चातुर्मास के वाद फिर, कर दिया उग्र विहार ।
आन मिली वह सिंहनी, मार्ग के मंझ धार ॥
मुनिवर वोले सुनो शिष्य, यह अति परिसह आया है ।
अव होने दो मुझ को आगे, तप संयम वहुत कमाया है ॥

बोला शिष्य मैं कायर कैसे बनूं, जब आपका शिष्य कहाता हूं।
और करू तुम्हें डर कर आगे, इस बात से मैं शर्माता हूं॥

दो.— पीछे कर निज गुरु को, आगे हुवा मुनि वीर।
आई सिंहनी कूदके, लक्ष्य पे जैसे तीर॥
मुनि समाधी लीन ध्यान, क्षपक श्रेणी का लाया है।
जिस सुत को पाला माता ने, बस आज उसी को खाया है॥
ब्रह्मज्ञान अन्तिम पाकर, मुनि जा निर्वाण सिधाया है।
कीर्तिधर ने भी अन्तर पा, अक्षय मोक्ष पद पाया है॥

दो.— चित्र जय माला नार ने, जाया सुन्दर नन्द।
हिरण्य गर्भ नामे भला, शत्रु कन्द निकन्द॥
हिरण्य गर्भ के नार है, मृगावती शुभ नाम।
नधुक नाम का सुत हुवा, दुःखि जन को विश्राम॥
हिरण्यगर्भ भूपाल ने, देखा श्वेत सिर केश।
विरक्त भाव मन में हुवा, सुन यम दूत संदेश॥
दिया नधुक को ताज भूपने, आत्म कार्य सारा है।
रानी सिंहका नधुक भूपके, रूपरंग कुछन्यारा है॥
शस्त्र कलाकी थीं ज्ञाता, पतिव्रता धर्म बजाती थी।
लिये पति के करूं न्योछावर, प्राण तलक यह चाहती थी।

दो.— उत्तर दिशा भूपाल का लगाहोन संग्राम।
दक्षिण आक्रमण किया, एक शत्रुने आन॥

चौ.— एक शत्रुने आन तुरत, रानी ने करी चढ़ाई।
शत्रु को पराजय करके, अपने महलों में आई॥
भूप नधुक ने जब रानी की, बात सभी सुन पाई।
देख वक्र व्यवहार, दुराचारण नृपने ठहराई॥

फौज कम नहीं हमारी, युद्ध में गई क्यों नारी।
बेज्जती का कारण है, कहे नपुंसक हमको दुनियां
रानी गई लड़न है ॥

कुछ विरुद्ध रहने लगा, रानी से महाराय।
भ्रम छेदने क़ा रही, रानी सोच उपाय ॥
एक समय महाराज को, उत्पन्न हो गई दाह।
औषधि ना कोई लगे, दिलमें दुःख अथाह ॥
रानी किया विचार भ्रम, राजा का दूर हटाऊं अभी।
निश्चल हो बीजाक्षरों से, किया नमोकार का जाप तभी ॥
मैं पतिव्रता यदि पूर्ण हूं, कोई अन्य पुरुष नहीं वांछा।
तो मम हाथ फेरने से, पतिदेव मेरा होवे अच्छा ॥
रानी ने यह बात कह, फरसा नृप का अंग।
रोग तुरत भागा सभी, गरुड़ से जिमे भुजंग ॥
भ्रम दूर नृपका हुवा, मन में खुशी असूल।
पूर्ववत् राजा हुवा, रानी के अनुकुल ॥
पुत्र हुवा महारानी के, सौदास नाम रक्खा जिसका।
दिया पुत्र को ताज क्यों कि, संयम में ध्यान हुवा नृप का ॥
अष्टाइक उत्सव करके, श्री जिनवर का गुण गाया है।
जीव न कोई मारे ऐसा, नृपने हुकम सुनाया है ॥
सौदास नृप को कुव्यसन था, एक कुसंग अनुसार।
हर घडी मदिरामांस से, रखता था पावह प्यार ॥
देख समय मंत्रीशने, दी शिक्षा सुखकार।
नहीं राजों का कर्म यह, जो पकड़ा व्यवहार ॥
पूर्व पुरुष हुए जितने भी, मांस नहीं खाया किसीने भी।
अभक्ष पदार्थ जो कोई खावे, धर्म नष्ट हो नरक में जावे ॥

ऊपर से नृप करी सफाई, अन्दर वसया मांस मन माही।
भृत्य पाचक बोले नृपराई, मांसविना क्षण रहा ना जाई॥

दो.— अय पाचक यदि तू मुझे, आज खिलाये मांस।
पारितोषक देऊं तुझे, पूरूं मनकी आस॥

चौ — अति अन्वेषण किया भृत्यने, मांस नहीं कहीं पाया है।
और भृतक एक मिला बच्चा, वस उठा उसीको लाया है॥
बना दिया वह ही भृत्यने, जिस समय भूप ने खाया है।
कई गुणा बढ़कर आगे से, स्वाद अति तर आया है॥

चौपाई- एक शिशु नृप नित्य मरवावे। पाया भेद मंत्री समझावे॥
दुष्ट कर्म यह सुन महाराई। तडफें पिता जिनके और माई॥

दो.— समझाया मंत्रीश ने, नहीं माना भूपाल।
राज पुरुष प्रजा सभी, विगड़ गये तत्काल॥
एक रंग होकर सब ने, सीमा से वाहिर नृप राज किया।
सिंह रथ पुत्र उसके को, प्रजाने मिलकर राज दिया॥
दक्षिण दिशि सौदास गया, वहां मुनि मिला एक तपचारी।
करी चरण प्रणाम मुनि थे, ज्ञानी बाल ब्रह्मचारी॥

चौपाई- दिया उपदेश मुनि हितकारी। मदिरामांस पाप महा भारी॥
यहां वेइज्जती परभव दुःख कारी। नरकों में अति होय ख्वारी॥
सुन परभव दुःख नृप घवराया। तब मुनिवर ने नियम कराया॥
अशुभ कर्म के बने सुत्यागी। पुण्य दशा पूर्वक जागी॥

दो — नगर महापुर में गये, वहां के जो मंत्रीश।
नृप हीन प्रजा सभी, चाहते थे कोई ईश॥
सौदास देख बत्तीस लक्षणा, सब प्रजा के मन भाया है।
योग्य समझ दे पंचदिव्य, सिंहासन पर बैठाया है॥

अब लगा सितारा बढ़ने को, नृप अमर वेलक्त छाया है।
और देख समय अब नगर अयोध्या अपना दूत पठाया है ॥

दूत आन कहने लगा, सिंहरथ के पास।
हुकम आपको है दिया, नृपराए सौदास ॥
मैं वैसे भी हूं पिता तुम्हारा, सेवा कर मेरी आकर।
या रण भूमि में आ जावो, बस कहूं साफ मैं समझाकर ॥
स्वीकार किया नहीं पुत्र ने, सौदास चढा दलबल लेकर।
उधर अयोध्या पति सिंहरथ, आया तुरत बिगुल देकर ॥

रणभूमि में जुट गये, पिता पुत्र दो वीर।
पराजय सुत दल में हुवा, जीता पिता आखीर ॥
हुवा प्रेम उत्पन्न पुत्र को, हृदय से ला प्यार किया।
दोनों राज्य दिये सुत को, और आप मुनिव्रत धार लिया ॥
इस अवसर्पणी काल में, सूर्य वंश-महा प्रधान हुवा।
प्रत्येक भूप इस वंश का, अन्त्यम संयम ले निर्वाण हुवा ॥

राज तिलक जिनको मिला, आगे उनके नाम।
अनुक्रम से सुन लो सभी, शूर वीर अभिराम ॥
ब्रह्मरथ नृप चतुर्मुख, हेमरथ सत्य रथ।
उदय पृथु वारि शशी, आदिरथ समर्थ ॥
माना भ्राता समर्थ वली, वीर सेन शुभ नाम।
प्रत्युमन्यु अति शूरमा, पद्मबन्धु सुख धाम ॥
रतिमन्यु मन श्रेष्ठ है, वसंत तिलक नरेश।
कुबेर दत्त कुंथु सर्भ, द्विरद और विशेष ॥
सिंह दर्श दिलपाक्र हरि, कसि पूजी सुखदाय।
पूज्य स्थल प्रोढो शशि, और ककरथ रघुराय ॥

चौपाई- कोई मोक्ष स्वर्ग गया कोई । सूर्य वंश बडा जग जोई
पुरी अयोध्या अरण्य राजा । प्रजा का सारे सब काजा।
अनन्त रथ दशरथ दो सुत याके। पुण्यवान् सुत दोय पिता
राज तिलक दशरथ को सजाया। अरण्य ने संयम चित ला

दो.— अरण्य और अनन्त रथ, सहस्रांशु नृप साथ।
लीन शुक्ल शुभ ध्यान में, सफल जायें दिन रात॥
एक मास की आयुमें, दशरथ को मिला ताज।
चंद्र कला सम बढ रहा, दिन प्रति दल बल साज
शस्त्र शास्त्र आदि सभी, बहत्र कला का ज्ञान।
विनय विवेक विचार सब, पण्डित चतुर सुजान॥
यौवन वय प्राप्त हुवा, शूर वीर बल धार।
दाता भोक्ता और गुणी, वसुधा यश विस्तार॥
दर्भ स्थल का भूप सुकोशल, अमृत प्रभा रानी जिस के
इन्द्राणी अवतार अनूपम, अपराजिता सुता तिसके
दशरथ नृप को परणाई, जहां उत्सव हुवा अति भा
प्रेम परस्पर दम्पतिमें, जैसे के समझ क्षीर वारि॥

दो.— मित्र सुभू भूपाल के, सुशीला रानी जान।
सुमित्रा पुत्री भली, चौसंठ कला निधान॥
विवाह हुवा जिसका दशरथ से, भूपने प्रीति दान दि
ग्राम प्रान्त सेवक जन भी, देकर उत्तम सन्मान कि
पूर्व पुण्य प्रगटा आकर, दिन दिन प्रति वृद्धि पाता
उधर ज्योतिषी से रावण, निज हाल पूछना चाहता

दो.— एक दिवस रावण-प्रभु, बैठा सभा मंझार।
ज्योतिषी से तब प्रश्न यूं, किया समय विचार॥

परदारा सम्बन्ध से, करे मेरी कोई घात ।
सभी असम्भवसी लगी, मुनिकथन की बात ॥
तीन खण्ड में बतलावो, कोई है मुझको मारन वाला ।
सुनते ही नाम मात्र मेरा, योधापर छा जाता पाला ॥
असुर भी आज कांपते हैं, फिर मनुष्य मात्र है चीज ही क्या ।
मसल दिये सब ही कांटे, और सहस्र एक साधी विद्या ॥
निमन्तक तब कहने लगा, सुनो श्री महाराज ।
सदा किसी का ना रहा, आयु साज समाज ॥
यही अनादि नियम अटल है, कभी सवेरा श्याम कभी ।
बने सुरपति पुण्य उदय, हो हीण पुण्य खुस जाय सभी ॥
चक्रवर्ती से चल गये, ना जिसम किसी के साथ गया ।
राज खजाने गए छोड़ था, जिसका भाग्य संभाल लिया ॥

गाना नं. २४

पैदा हुवा जो महिपर, अन्तिम वह एक दिन जायगा ।
फूल खिलकर बाग में, आखिर को वह कुम्हलायगा ॥
यह महल मन्दिर और खजाने, सब पड़े रह जायगें ।
डेरा बने परभव में जा, जब काल सिरपर आयगा ॥
राज पाट और फौज पलटन, मित्र गण के देखते ।
सामने बंधुजनों के, काल तुमको खायगा ॥
अंग रक्षक पुत्र रानी, क्या सहायक जन सभी ।
इनके द्वारा ही यह तन, अग्नि में डाला जायगा ॥
हो रहा खुश देख सम्पत्ति, सो सभी काफूर हो ।
आप जैसों का पता नहीं, आपका कहां पायगा ॥
इन्द्रादिक भी ना रहे, मनुष्य मात्र क्या चीज ।
उलट पलट संसार का, श्री जिन भाषा बीज ॥

जनक सुता के हेतु भूप, दशरथ सुत तुमको मारेगा।
तीन खण्ड का बने अधिपति ताज शीश निज धारेगा॥
लगे सभी अट अट हंसने, उसका उपहास्य उड़ाते हैं।
तब वीर विभीषण सभा मध्य, अपने यों भाव सुनाते हैं।

दो — दशरथ को और जनक को, परभव देऊं पहुंचाय।
उत्पति होवे नहीं, बीज दग्ध हो जाय॥
नाश करूं दोनों का जाकर, झूठा इसे बनाऊंगा।
सब देऊं खटका मेट भ्रात का, तभी अन्न जल पाऊंगा॥
थे नारद जी वहां विद्यमान, सुन बात सभी मिथिला आए।
और भाव विभिषण के नारद ने, जनक भूप को बतलाए॥
फेर अयोध्या में आकर के, दशरथ को समझाया है।
भयभीत हुवा यहां रघुवंशी, मिथिलेश वहां घबराया है॥
तब मंत्री ने यह समझाया, तुम लिये यात्रा के जावो।
हम ठीक सभी कुछ कर लेगें, पीछे का भय तुम मत खावो॥

दो.— भेष बदल कर चल दिये, छोड राज घर बार।
पीछे मंत्रीने किया, अद्भुत एक विचार॥
लेप मयी तस्वीर एक, दशरथ की मूर्ति बनाई है।
रंग आदि भर के सब ही, सिंहासन पर बैठाई है॥
अद्भुत ढंग रचा ऐसा, पहिचान कौन कर सकता है
वरणन क्या हम करे ना, इस शंका का कोई भर सकता है।

दो — यही ढंग मिथिलापुरी, जनक भूप का जान।
समय देखकर आ गया, वीभिषण चढ विमान॥
बैठ विमान विभीषण ने, इक घूम गगन में लाई है।
झपट बाजवत् देख समय, अपनी तलवार चलाई है।

फेर व्योम में दौड गए, थी मंत्री की हथ फेरी सब ।
पकडो पकडो दुष्ट गया वह, मारके नृपको जानसे अब ॥

ज्ञान था मंत्री को सभी, शत्रु गगन मंझार ।
निश्चय दिलवाने निमित्त, शुरु किया व्यवहार ॥
अंग रक्षक सेवक योधे, सब मारेमारे फिरते हैं ।
सब रुदन करें रानी सेवक, जन जरा धीर नहीं धरते है ॥
सिंहासनपर पडा भूप, बस रक्त ही रक्त हुवा सारे ।
शब्द भयानक हाहाकारके, रोते हैं बांधव प्यारे ॥

संस्कार मृतक किया, मंत्री ने तत्काल ।
देख बिभीषण चल दिया, मन में खुशी कमाल ॥
यही अवस्था करके जनक की, जा रावण को बतलाया ।
जो खटका था सो मिटा दिया, दशकन्धर मन में हर्षाया ॥
यह मंत्री के अतिरिक्त भेद ना, और किसी ने पाया है ।
उधर फिरें दोनों राजे, अपना सर्वस्व बचाया है ॥

कौतुक मंगल नगर में, शुभ मति है भूपाल ।
पृथ्वी रानी की सुता कैकयी रूप विशाल ॥
द्रोण मेघ था पुत्र भूप के, शूर वीर अति बल धारी ।
रचा स्वयंवर लड़की का, आडम्बर बहुत किया भारी ॥
बड़े बड़े भूपति आये, स्वागत की आतितार रहे ।
लगी खबर यह दशरथ को, मनमें यों सोच विचार रहे ॥

सूर्य वंशी नित्य से रहे, सब राजों के सिरताज ।
पुण्य हीन निर्भाग्य हम, गणना में नहीं आज ॥
खेद आज सूर्यवंशिन को, नौता तक नहीं आया है ।
क्या मैं ही ऐसा जन्मा जिसने, वंश का नाम लजाया ॥

जिस होनी से कल होना है, वह आज ही क्यों ना हो जावे।
आन ना जावे वंश की चाहे, मेरी जिन्दगी खो जावे॥
पर गणना में नहीं नाम हमारा, कैसे स्वागत पावेंगे।
ख्याल नहीं इस बात का भी, तलवार से जगह बनावेगें॥
बन का राजा सिंह कहाता, किसने उसको ताज दिया।
यह उसके पराक्रम का फल है, जो ईश सभीने मान लिया॥
जो कोई हमसे अन्याय करे, तो झगड़े से क्या डरना है।
यह गौरव हीन का दुनियां में, जीने से मरना अच्छा है॥
यही सम्मति जनक भूप की, अवश्यमेव चलना चाहिये।
व्यवहार को जिसने तोड़ दिया, तो उस खल को दलना चाहिये॥

दो.— दोनों मित्र चल दिये, सहमत हो तत्काल।
ठाठ बाट चाहे न्यून था, पर था पुण्य विशाल॥
वहां जा बैठे यह भी दोनों, जहां कुछ सिंहासन खाली थे।
और बडे बडे भूपति बैठे, जिनके सेवक रखवाली थे॥
थी मान में गर्दन ऊपर को, कानों में कुंडल पडे हुए।
शुभ सच्चे मोती हीरों से, मानों थे सारे जडे हुए॥
जब समय हुवा वर माला का, लाखों नर नारी साजे हैं।
शशि समान हुए दशरथजी, बाकी तारोंवत्-राजे हैं॥

दो.— आरम्भ हुवा व्यवहार अब, बैठे चतुर सुजान।
अपने अपने पुण्य की, होने लगी पहिचान॥

चौपाई - आई मण्डप राज दुलारी। दासी संग सहेली सारी॥
राजों के प्रतिबिम्ब दिखावे। धाय मात ऋद्धि बतलावे॥
सोलह श्रृंगार सहज अंग मांही। सोलह ऊपर अधिक सुहाई॥
देख रूप सब का मन मोहे। इन्द्राणी सम छवि अति सोहे॥

— मन ही मन यों सव कहे, धन्य वही भूपाल ।
जिस की यह रानी बने, डाल गले वर माल ॥
दशरथ नृप मन में बसा, पहनाई वर माल ।
हरि वाहन नृप जल गया, चढा रोष विक्राल ।

— चढ़ा रोष विक्राल है, किसको वरमाला पहिनाई ।
तमाश वीन कोई खड़ा आन, गिनती राजों में नाही ॥
दे वरमाला भाग यहां से, इसमें तेरी भलाई ।
नहीं मार तलवार अभी, गर्दन की करूं सफाई ॥

ड— चूक लड़की ने खाई, भूलकर तुझे पहि नाई ।
देर अव जरा ना करना, यदि नहीं परभव पहुंचाऊं
तुझे ना यहां कोई शरणा ॥

— अनुचित वातें जब सुनी, दशरथ भूप उदार ।
ललकारे यों सिंह सम, सहसा ले तलवार ॥
क्या आंखे काढ़ काढ़ कायर, सूर्य को चमक दिखाता है ।
और धमकी देकर प्रवल सिंहसे, वरमाला को चाहता है ॥
भाग यहां से जान वचा, मरना स्वीकार क्यों करता है ।
सूर्यवंशी सिंह कभी क्या, गीदड से भी डरता है ॥

— देख तेज रणधीर का, शुभ मति करे विचार ।
यह मामूली व्यक्ति नहीं, शूर वीर वलधार ॥
वन चुका जमाई मेरा अव, इस लिये पक्ष लेना चाहिये ।
रणतूर वजाकर मानभंग, इनका सवकर देना चाहिये ॥
उसी समय रणभूमि में, सव जुटे शूरमा आ करके ।
हो गये वहुत रण भेंट वीर, कई गिरे मूर्छा खा करके ॥

दो.— दशरथ नृप का सारथी, गिरा धरन में जाय।
देख दृश्य यह कैकयी, मन में कुछ घबराय ॥

करी वेनती रानी ने, महाराज की आज्ञा चाहती हूं।
सम्पूर्ण कला है ज्ञात तुझे, संग्रामी रथ चलाती हूं ॥
कृपया आपकी से देखो, मैं अपने हाथ दिखाती हूं।
जीतो शत्रु दल को तुम, मैं बिकट को हवा वनाती हूं॥

दो.— कवच पहिन रानी चढी, और दशरथ झूझार।
सहसा दल में मच गया, हूं हूं हाहा कार ॥
पराजय होकर भागे शत्रु, विजय हुई दशरथ नृप की।
खुशी हुवा बोला नृप रानी, मांगो जो मरजी मन की ॥
जो कुछ मांगोगी सो दूंगा, क्षत्री में कहलाता हूं।
तेरी देख वीरता को मैं फूला नहीं समाता हूं ॥

दो.— रानी तव कहने लगी वर रक्खो भंडार।
लेऊंगी प्रभु आपसे, जब होगी दरकार ॥
प्रेम भाव से दशरथ नृप को, शुभमति भूपने विदा किया।
शूर वीर जामात समझ, दिल खोल द्रव्य और मान दिया ॥
मिथिलेश गया मिथिला नगरी, सब तरह मित्र का साथ दिया।
राजगृही नगरी में जाकर दशरथ नृप ने वास किया ॥

दो.— कुछ नीति कुछ बुद्धि से, चढा पुण्य का जोर।
आस पास के देश में, करी मित्रता और ॥
अपराजित और रानी, सब ही परिवार बुलाया है।
शुभस्थान देख गद्दी, रचना कर हुकम चलाया है ॥
लगा पुण्य प्रति दिन वढने, जैसे घनघोर घटा छाई।
शुक्ल पुण्य अनुसार समागम, मिलता है सब सुखदाई ॥

१— सुख में सोती एक दिन, सुन्दर सेज मंझार ।
महारानी अपराजिता, स्वप्न विलोके चार ॥
प्रथम स्वप्न में देखा हस्ती, अद्भुत चाल निराली है ।
मद भर रहा कपोल शब्द, गुंजार छवि मतवाली है ॥
स्वप्न दूसरे में प्रबल सिंह, चिंघाड़ शब्द लहरें भरता ।
उछल कूद चहुं ओर रहा, और नहीं किसी से भी डरता ॥

— ग्रहगणों का अधिपति, रोहिणी का भर्तार ।
उतरता आकाश से, चंद्रमा सुख कार ॥
चौथे स्वप्न में सूर्य आया, सहस्रांशु फैलाता हुआ ।
किया आन उद्योत उस समय, तेजी अति दिखलाता हुआ ॥
खुली आंख निश्चय करके, दशरथ नृप पै आई रानी ।
हाथ जोड की नमस्कार, शीतल मुख से बोली वाणी ॥

— रंग ढंग सब स्वप्न का, बतलाया तत्काल ।
खुशी की ना अवधि रही, सुना सभी जब हाल ॥
[illegible] कोई पुण्यवान, [illegible] ।
[illegible] और [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible] ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

दो.— दूजी नार सुमित्रा, स्वप्न विलोके सात ।
सुखशैय्या आराम से, सोती पिछली रात ॥
प्रथम स्वप्न में हस्ती देखा, चारों ओर उछलता हुवा ।
प्रबल सिंह दूसरे आया, कुम्भ स्थल को दलता हुवा ॥
तीजे शशि रवी चौथे, आ अपनी चमक दिखाई है ।
धूम रहित शिखा अग्नि, शुद्ध नजर पांचवे आई है ॥

दो.— छठे सरोवर में कमल, खिले हुए शुभ रंग ।
रानी को ऐसा मिला, स्वप्न में प्रसंग ॥
भरा समुद्र देख सातवें, रानी मन हर्षाई है ।
निश्चय कर फिर पति पास, जा सारी बात सुनाई है ॥
सुनते ही राजा के दिलमें, खुशी का ना कोई पार रहा ।
फल विचार स्वप्नों का नृपने, रानी को सब हाल कहा ॥

दो.— रानी सुत होगा तेरे, प्रबल सिंह समान ।
तेज प्रताप सम रवि के, फैला पुण्य महान् ॥
शुभ पुण्य अहो रानी जिसका, सागर मानिन्द लहरायेगा ।
आधीन करे सब दुनियां को, अति शूर वीर कहलावेगा ॥
निर्भय सिंह हस्तियों में, अयसें यह दरजा पावेगा ।
जब उतरेगा रणभूमि में, तो सन्नाटा छा जावेगा ॥

दो.— यथा योग्य नित्य पथ्यसे, रही गर्भ को पाल ।
मास सवानों में हुवा, आन अनूपम लाल ॥
देवलोक से चवकर आया, पुण्यवान् योधा भारी ।
राजकुमार का रूप देख कर, प्रेम करें सब नरनारी ॥
नारायण शुभ नाम दिया, प्रसिद्ध लखन अति सुखकारी ।
उत्सव का कुछ पार नहीं, दशरथ नृप दान किया भारी ॥

वहत्र कला प्रवीण थे, दोनों राज कुमार ।
शूर वीर योधा अति, देख खुशी नर नार ॥
देख भुजा वल दशरथ राजा, पुरी अयोध्या आया है ।
केकयी रानी के पुत्र हुवा, शुभ नाम भरत कहलाया है ॥
शत्रुघ्न पुत्र हुवा चौथा, दशरथ नृप सुन हर्षाया है ।
नग गज दन्तों की तरह, भूप मेरु मानन्द शोभाया है ॥
सुप्रभारानी के हुवा शत्रुघ्न, पाठान्तर से कहते हैं ।
चाहे जैसे हो प्रेम पूर्वक, चारों भाई रहते हैं ॥

दशरथ राजा की हुई, पूरी सभी उमंग ।
पुण्य उदय कुल बाग में, खिलने लगा शुभ रंग ॥
राम लक्ष्मण की जोडी, नीलाम्बर पीताम्बर सोहे ।
था प्रेम परस्पर दोनों का, अति राज हंस सम मन मोहे ॥
भरत शत्रुघ्न की जोडी, थे अतुल वली योधा भारी ।
तेज प्रताप प्रचण्ड अति, महा वृद्धि होने लगी सारी ॥
ग्रीष्म अन्त जैसे श्रावण, या जैसे मेला जंगल में ।
शुभ शुक्ल समाज मिला ऐसे, सुख जैसे सुर नन्दन वन में ॥
यह पहिला अधिकार हुवा, दशरथ राजा सुख पाया है ।
तेल विन्दु सम गया फैल, जंगी सामान वनाया है ॥

इति रामायणस्य प्रथमो भाग

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

॥ ॐ श्री वीतरागायनमः ॥

* श्री जैन रामायण द्वितीयभाग *

मंगलाचरण

दो.— जिनवाणी नित्य दाहिने, अरिहन्त सिद्ध जगदीश ।
परमेष्ठी रक्षा करें, त्रिपद धार मुनीश ॥
अजर असर अमूर्ति, निराकार भगवन्त ।
लोकालोकमें आपका, फैला ज्ञान अनन्त ॥

चौ.— फैला ज्ञान अनन्त स्वयं, सत्‌चित् आनन्द अविनाशी ।
फिरे भटकते जीव चराचर, पड़ी कर्मगल फांसी ॥
सत्‌चित् निश्चय पास किन्तु, आनंद की करें तलाशी ।
अज्ञान अन्धमें पड़े जीव, नहीं पावें मोक्ष सुख राशी ॥

तोड.— विना जिन देव धर्म के, पाश नहीं कटे कर्म के ।
घूम सारे जग आया, विना तुम्हारे देव सहारा
नहीं दूसरा पाया ॥

दो.— भामण्डल सीता सुता, युगल पणे अवतार ।
प्रसन्न हुवा राजा जनक, और विदेहा नार ॥

झोक.— यह कर्म बड़े बलवान् जीव को, खुशीमें दुःख दिखलाते हैं ।
करते प्राणी नेत्र बन्द कर, फिर पीछे पछताते हैं ॥
अब सुनोहाल भामण्डल का, जिसने आकर के जन्मलिया ।
होगया विरह बचपन से ही, नहीं माततात अन्नपान किया ॥

दो.— जम्बू द्वीप भरत क्षेत्र में, दारुण नामक ग्राम ।
अनुकोशा का है पति, द्विज वसुभूति नाम ॥

चौक— अनुभूति है नाम पुत्र का, वधू सरसा सुखदायी है।
कयान विप्र ने मोहित होकर, सरसा स्वयं चुराई है॥
ढूंढन को पतिदेव गया, नहीं पता कहीं पर पाया है।
पीछे मोह वश गई मात, और संग पिता उठधाया है॥

दो.— जात वाम की फिर मिले, मिले लाल दुश्वार।
पुत्र के मोह में फिरें, दोनों होते ख्वार॥

चौ.— मार्ग में निर्ग्रन्थ मिले जिन, दुःख नाशक उपदेश दिया
मोह कर्म सिर डाल धूल, दोनों ने फिर भेष लिया।
पहिले स्वर्ग पहुंचे जाकर, सुरपुर के सुख भोगे भारी
आ जन्म लिया वैताडगिरी, फिर भी हुए दोनों नरनारी।

कड़ा— प्यारेजी चन्द्रगति भूपाल नाम विद्याधर भारी।
पुष्पावती अभिराम, नाम सुन्दर तसु नारी॥

दो.— सरसा नजर बचाय के, भागी अवसर देख।
संयम का शरणा लिया, अविचल रक्खे टेक॥

चौ.— दूसरे स्वर्ग पहुंची जाकर, अनुभूति विरह में भटका है
अनमोल मनुष्य तन खो बैठा, भव चक्र गर्भमें लटका है
हुआ हंस बालक जाकर, हस्तीने ग्रहण कर फैंक दिया
जा पड़ा मुनि के चरण में, नमोकार मंत्र का शरण दिया

चौपाई.- देव लोक में पहुंचा जाई। वर्ष सहस्र दश आयु पाई
जीव कुसंगति से दुःखपावे। शुभ संगति से सुख मिल जावे

दो.— विदग्ध नामक नगरमें, प्रकाश सिंह महाराय।
रेवती नामक नार के, पुत्र जन्मा आय॥

चौ.— कुण्डल मण्डित नाम पुत्रका, सुन्दर जिसकी काया है
अब सुनोहाल कयान विप्रका, जन्म जहां आ पाया है

चक्र ध्वज राजा चक्रपुरी का, धूमसेन पुरोहित जिसका ।
स्वाहा रमणी है विप्राणी, पिंगल सुत कयान हुआ तिसका ॥

— करती थी नृप कन्यका, विद्याका अभ्यास ।
पिंगल अति मोहित हुआ, देख रूप प्रकाश ॥

क.- समय देख अपहरण करी जा, विदग्ध नगर निवास किया ।
इस काम बाण ने बड़ों बड़ों का, अन्त में समझो नाश किया ॥
विदग्ध नगर के नरनारी, इस रूपपे आश्चर्य करते थे ।
कई वशीभूत होकर मोह में, कुछ के कुछ शब्द उचरते थे ॥
कुंडल मंडित कुमर हाल सुन, घोडे पर चढ आया है ।
देख रूप उस राज दुलारी, का मन अति हर्षाया है ॥
चारित्र मोहिनी उदय हुआ, सद्ज्ञान हृदय से दूर हुआ ।
उस रूप की महिमा गाने लगा, जब राजकुमर मजबूर हुआ ॥

— अतुल्य पुण्य इसने किया, मिला जो अद्भुत रूप ।
क़िन्तु पति इसको मिला, अनपढ और कुरूप ॥

.— अनपढ़ और कुरूप, यह किसने लालगचे गल डाला ।
सांचे वासा ढाला जिस्म है अद्भुत रूप निराला ॥
इस कौवे गल नहीं शोभती, यह रत्नों की माला ।
लूं छीन इसे तो पिता मेरा, यहां का न्यायी भूपाल ॥

ड-- दिला वापिसी देगा, मेरा नहीं पक्ष करेगा ।
यही अब ढंग रचाऊं, ले पर्वत पर चढूं दूर जाकर
कहीं वास वनाऊं ॥

.— जो कुछ आया हाथ में लेकर के सामान ।
दोनों वहां से चलदिये, * नग में किया मुकाम ॥

* पर्वत

चौक.—पीछे पिंगल फिरे भटकता, विरहने आन सताया है।
सिर पीट पीट कर हार गया, अन्तम संयम चित्त लाया है॥
सुधर्म देवलोक में पहुंचा, विराधक सुर पदवी पाई है।
कुंडल मंडित ने यहां दशरथ के, राज्यमें धूम मचाई है॥
डाके और चौरी छल से, प्रजा को लगा सताने को।
इस तरह आसुरी वृत्तिसे, लगा अपना समय विताने को॥
वालचन्द्र दिया भेज भूप, दशरथ ने उसे पकड़ने को।
जो घेरा डाला सेनापति ने, डाकू चौर जकड़ने को॥
कुंडल मंडित को फुरती से विषम स्थान में रोक लिया।
निज्ञ शक्ति और चातुर्य से, पकड बंधन में ठोक दिया॥
नियत समय पर कोतवाल, दशरथ के सन्मुख लाया है।
भूपाल ने रहस्य समझ, कुंडल मंडित को यों समझाया है॥

दो (दशरथ)-विषय वासना जगत में, शत्रु महा कठोर।
अशुभ कर्म से वन गया, राजकुमर से चोर॥

चौ.— शिक्षा प्रद वचन हमारे हैं, मन से सब आर्तध्यान तजो।
इस दुष्ट विलासिता को तजकर, मनुष्य वनो जिन राज भजो॥
क्षमा सभी अपराध किया, तुम से न द्वेष हमारा है।
पहिचानो अपने गौरव को, इस में ही भला तुम्हारा है॥

दो— शिक्षा देकर इस तरह, मन रिपुता से मोड।
कुंडल मंडित को दिया, दशरथ नृपने छोड़॥
उपकार मान नृप का, चला पहुंचा निजस्थान।
कुंडल मंडित को रहे, नित्यप्रति आर्तध्यान॥

छंद— राज का रहे ख्याल निशदिन, सोच अति मन में करे।
ताज पाऊं राज का, मेरा पिता जल्दी मरे॥

अविनीत पन का ताज अब तो, सिर मेरे रक्खागया ।
जिस दिन से आया भाग, अरु कुव्यसन यह चक्खागया ।।
मम बुद्धिपर परदा पड़ा और सोच सब मारी गई ।
अब राज की भी हाय कुंजी, हाथ से सारी गई ।।
रहता पिता के पास और, गुप्त रखता वाम यह ।
स्वामी बना रहता हमेशा, क्यों बिगड़ता काम यह ।।

·— इतने में आया नजर, मुनिचन्द्र ऋषि राय ।
कुमर जाय वंदना करी, चरणन शीस नवाय ।।
जो भी मन की बात थी, सभी दई बतलाय ।
सुनकर के मुनि ने दई, कर्म गति दर्शाय ।।

र— बोले मुनि हे कुमर तू, कुछ धर्म चित्त लाया नहीं ।
खेद अति है भय जरा, परभव का भी खाया नहीं ।।
प्रत्यक्ष तुझ को कुव्यसन का, फल तो यहां कुछ मिल गया ।
जो था सितारा पुण्य का, वह सब किनारा कर गया ।।
अब और जो कर्त्तव्य तेरा, यह नरक का प्रमाण है ।
घात चिंते भूप की, यह दुष्ट तेरा ध्यान है ।।
देऊं तुझे शिक्षा समझ, तन मन से रखना पास यह ।
दोनों भवों में लाभ दायक, छोडती नहीं साथ यह ।।
धर ध्यान श्री अरिहन्त का, अन्तःकरण निग्रह करो ।
द्वादश नियम कर गृहस्थ के, गुण ग्रहण में दृष्टि धरो ।

।.— सागारी व्रत मुनि से, लिये कुमर ने धार ।
किन्तु इच्छा राज की, रहती मन मंझार ।।
इसी विचार में मरा अन्त, आ जनक भूपके जन्म लिया ।
सरसा ब्राह्मण की पुत्री, बन फिर तप संयम में ध्यान दिया ।।

पहुंची* ब्रह्म लोक जाकर, वहां दीर्घ काल आराम किया
सुर आयु भोग विदेहा, रानी के सीता अवतार लिया।

❀ सीता भामंडल जन्मोत्सव ❀

दो.— जनक भूपने जब लखा, राज कुमर का रूप।
रानी से फिर उस समय, यों बोले वर भूप ॥
पुण्य उदय अपना हुआ हुआ, आज अति सुखकर।
युगल पने आकर हुवा, पैदा राजकुमार ॥

चौ— पैदा राजकुमार खुशीका, अवसर मिला जबर है।
देख देख मुख इनका रानी, आता नहीं खबर है॥
क्या जन्में आकर नल कुबेर, कुछ लगती नहीं सबर है
दमक रहा भानु सानिन्द, मस्तक जैसे इन्द्र है ॥

दौड़— बलूंद सितारा इनका, समान कोई नहीं जिनका।
रूप क्या तेज निराला, देखो रानी बहन भाई क्या ए
ही सांचे ढाला ॥

दो.— राजा प्रजा सब खुशी, घर घर मंगलाचार।
जनक भूप ने दान के खोल दिये भंडार ॥

चौक— उत्सव का कुछ पार नहीं, अति खुशी सभी दिलछाई है
और जय जयकार की, ध्वनी सहित, ही सबने आन बधाई
धाइयां पांच लगी पालन, सब आगे पीछे फिरते हैं
अब होनहार के आगे चल, देखो क्या रंग विखरते हैं

❀ पिंगल देव द्वारा भामंडल का अपहरण ❀

दो.— पिंगल का जो जीव था, पहिले स्वर्ग मंझार।
अवधिज्ञान से एक दिन, देखा दृष्टि पसार ॥

---

* पांचवे देव लोक

देखा दृष्टि पसार देव के, क्रोध बदन में छाया ।
पूर्व वैरी समझ आन, भामंडल तुरत उठाया ॥
देऊं इसको मार, देव के मन में यही समाया ।
राज कुमार का पुण्य प्रबल, यों असुर सोच मन लाया ॥

मारूं यदि इस बालको, महापाप लगता है मुझे ।
छोड़ूं यदि जीता इसें, यह भी नहीं जंचता मुझे ॥
बाल हत्या है बुरी, रुलता फिरूं संसार में ।
कौनसा अब ढंग करूं, जिससे लेऊं निज खार* में ॥
रक्खूं गिरी वैताढ्य पर, वहां से न कोई लायगा ।
खा जायगा कोई श्वापद,† या स्वयं मर जायगा ॥

चन्द्रगति विद्याधर का भामंडल को उठाना

देव वहां से चल दिया, रख शिला पर लाल‡ ।
उधर भ्रमण को आगया, रथनुपुर भूपाल ॥

चन्द्र गति रानी समेत, विमान बैठकर आया है ।
जब देखा बच्चा पर्वत पर, राजा मन में हर्षाया है ॥
लिया उठा कर कमलों में, तो खुशी का न कोई पार रहा ।
दे दिया गोद में रानी के, घड़ियों तक देता प्यार रहा ॥
(चन्द्रगति) बोला अए रानी पुत्र बिन, सूना था सब राज ।
पुण्य उदय तेरा हुआ, आज सधे सब काज ॥

इसके समान नहीं रानी, कोई नजर दूसरा आता है ।
भामंडल नाम धरें इसका, बस यही मेरे मन भाता है ॥
दाबी कला विमान की, झट रानी महलों में पहुंचाई ।
पुत्र जन्मा महारानी ने, सब जगह बात यह फैलाई ॥

---

* वैर, † हिंसक पशु, ‡ बच्चा.

दिल खोल भूप ने दान दिया, और उत्सव अधिक मनाया है।
बंदी छोड दिये सारे सब समुह हर्षाया है ॥
लगा पुत्र वृद्धि पाने, दिन दिन अतिकला सवाई है।
अब हाल सुनों मिथिला का, जहां कर्मों ने चाल चलाई है ॥

मिथिला में शोक —

दो.— जनक भूमि की दासियां, रहीं चंडोल* ढुलाय।
कोई देती है लोरियां, कोई रही झुलाय ॥

चौक— कोई रही झुलाय, धाय तब दूध पिलाने आई।
लडकी है प्रत्यक्ष किन्तु, नहीं देता कुमर दिखाई ॥
उसी समय घबराय दासियां, सब एकत्र हो आई।
चहुं ओर से आने लगे, रोने के शब्द सुनाई ॥

दौड— धाय माता का दिल धड़के, सभी के मस्तक ठनके।
देख बिन कुमर हिंडोला, गिरी धरण मुर्झाय अंगरक्षक
का भी दिल डोला ॥

दो (क)-दासियां घबरायी हुई, पहुंची रानी पास।
दु:खदाई वाणी सभी, बोलीं ऐसे भाव ॥

दो (दासी)-आश्चर्य हुआ रानी महा, कहें किस तरह बात।
लुप्त हो गया सामने, तव सुत नहीं देत दिखात ॥

गाना नं. १ (बहर तवील)

(दासीयों का रानी से कहना)
अए रानी सभी यह प्रत्यक्ष है,
इस हिन्डोले में छौना तुम्हारा पड़ा।

* पालना (झूलना)

दृष्टि डाली तो वहांपर नहीं लाड़ला,
जिससे धड़क कलेजा हमारा पड़ा ॥
क्या गगन गया या धरणमें धंसा,
हमे इस भवन में नजर न पडा ।
कोई आता या जाता न दीखा हमें,
देखो रानी यह चहुं ओर पहरा खड़ा ॥

दो.— हृदय विदारक जब सुने, महारानीने बैन ।
पुत्र विरहनी मात फिर, लगी इस तरह कहन ॥

गाना नं. २ (बहर तवील)

(विदेहा का विलाप)
हाय अपना यह दुःख मैं कहूं किस तरह,
मेरे दिल को तसल्ली है आती नहीं ।
मेरा छौना कन्हैया किधर को गया,
मेरी वज्र की फटती यह छाती नहीं ॥१॥
कोई लाकर के देवो मुझे जैसे हो,
उस की सूरत मुझे नजर आती नहीं ।
अभी जाऊं मैं जमी में तुरत ही समा,
पर यह पापिन भी मुझ को छिपाती नहीं ॥२॥

दो.— खबर लगी जब भूप को, आये भवन मंझार ।
दुःखित हृदय से इस तरह, बोले गिरा* उचार ॥

छंद (जनक)- क्या था और क्या होगया, क्या माजरा नायाब है ।
रात है या दिन कहीं या, आरहा कोई ख्वाब† है ॥

---

* वाणी, † स्वप्न

हैरत में हैरत हो रही, आश्चर्य यह आया मुझे।
पुत्र कहां गायब हुवा, यहां पर नहीं पाया मुझे॥
हे प्रभु ? मालुम नहीं, सुत को बला क्या ले गई।
उल्टी है किस्मत आज यह, सुत की जुदाई हो गई॥
राज सम्पत रत्न क्या, सब खाक तेरे विन कुमर।
पुत्र कहां छौना कहां कुछ भी नहीं लगती खबर॥

दो.— नृप रानी प्रजा सभी, रोते जारों जार।
उधर कुवर को खोजते, पैदल फिरें सवार॥
जनक कहे रानी सुनो, अपने दिल को थाम।
खोज हो रही पुत्र की, गिरि* गुहर अरु ग्राम॥

दो.— छान वीन कर सब तरह, देख लिये सब धाम।
अन्त निराश हो भूपने, आ समझाई† वाम॥

चौ.— बोले अए रानी आज देव, कारण ही नजर आता है।
पूर्वरिपु लेगया असुर कोई, पता नहीं पाता है॥
समझ नहीं जन्मा पुत्र, वस यही दैवऽ चाहता है।
कर्मों के अनुसार प्रिया सब, सुख दुःख मिल जाता है॥

दौड़ — मोह को दूर भगाओ, ध्यान श्री जिन चित लाओ।
कर्म गति के हैं चले, देख देख मुख पुत्रीका वस
रानी मन वहला ले॥

दो.— पुत्री का मुख देखता, शीतल तन मन जान।
मात पिता ने रख दिया, सीता जिसका नाम॥
चन्द्रकला सम वढ़ रही, चौंसठ कला निधान।
रूप कला और गुण सभी, शील रत्न की खान॥

---

* गुफा, † स्त्री, ऽ भाग्य,

चौक— टालूं सकल क्लेश, दुधारा ले झुक पडूं जिधर को।
निर्भय होकर देवो आज्ञा, प्यारे शेर बवर को ॥
पुत्र लायक हो जिन्हों के, फिर पिता क्यों जाय समर को।
शक्ति हीन अविनीत होतो, जीना किस अर्थ कुमर को॥

दौड— अभी रण क्षेत्र जाऊं, पकड अतरंग को लाऊं।
शीस पर हाथ चढाओ, निश्चिन्त होकर पिता अयोध्या
में आनंद उडाओ ॥

दो— आज्ञा दी भूपाल ने, मन में खुशी अपार।
सेना ले कुछ संग में, चले राम बलधार ॥

चौ.— शत्रु संग जा संग्राम किया, म्लेच्छ समर में खाक हुए
अतरंग म्लेच्छ का तेज, व गौरव, राम के आगे राख हुए।
जब धनुष्य बाण टंकार किया, तो मानो बिजली आन पड़ी
भगी फौज सब अतरंग की, कुछ करके आर्तध्यान खड़ी।

दो.— विजय हुई श्री राम की, टल गया जनक कलेश
प्रसन्न चित्त हो राम की, सेवा करी विशेष ॥

चौ.— श्री राम का पराक्रम देख जनक, निज रानी को समझाने लगा
सुन आज विदेहा पुण्य तेरा, मन चाहा मानों आन जगा।
श्री रामचन्द्र की समता का, संसार में कोई शूर नहीं
सब गुण धारक अति सुख दायक, फिर पुरी अयोध्या दूर नहीं

दो.— करी सगाई पुत्रि की, रामचन्द्र के साथ।
मिथिला वासी हर्ष से, सभी झुकाते माथ ॥

चौ.— सब जोडी देख प्रसन्न हुए, घर घर में खुशी मनाई है
श्री रामचन्द्र को भूमभाम, जनता सब देखन आई है।

नर नारी मुख से, कहते थे, यह सीता पुण्य निशानी है।
नल कुवेर सम मिले राम, वर जोडी बडी लसानी है ॥
श्री रामचन्द्र के शुभ तन में, इक महा आकर्षण शक्ति थी।
क्योंकि पूर्वभव में इन्हों नें, की तप संयम भक्ति थी ॥
मुग्ध थे मिथिलाके नरनारी श्री राम की सुन्दरताईपर।
शुभ लक्षण छवी निराली को, लख न्योछावर थे सुखदाई पर ॥
सब नार परस्पर कहती हैं, है रामकुमर कैसा ज्ञानी।
चन्द्र वदन तन कोमल है, स्वरूप बना क्या लासानी ॥
खलकत अड़गई बाजारोंमें, महलों पर देख रही रानी।
नजर घूमगई पनिहारिन की, भरना भूल गई पानी ॥
रूमाल अंगूठी और नारीयल, राम को दई निशानी है।
सीता का रिस्ता किया तुम्हें, नृप ने यह कहा जबानी है ॥
कह देना नृप दशरथ से, सब आपकी मिहरबानी हैं।
सब कष्ट मिटा मम रैयत का, नहीं आपसा को सुख दानी हैं ॥

— राम विदा होकर चले, निज जन्मभूमि की ओर।
मात प्रतीक्षा कर रही, जैसे चन्द्र चकोर ॥

— पुरी अयोध्या में आकर, पितुमात को शिश निमाया है।
आशीस दिया निज पुत्र को, दम्पति का मन हर्षाया है ॥
जनक भूपने दशरथ से, सम्बन्ध का सब व्यवहार किया।
दशरथ नृप ने मित्र का जो, था कथन सभी स्वीकार किया ॥

— मिलकर घर घर नारियों, बांटे मोदक थाल।
मेवा और मिष्टान्न संग, उपर दिये रूमाल ॥

गाना नं. ३

मची रही अवध में धुम, खुशियां घर घर में ॥ टेर

हिल मिल नारी गावें राग हैं, धन्य हमारे आज भाग हैं
धन्य अयोध्या भूप, खुशियां घरघर में ॥१॥
गाना गाने आई अप्सरा, नक्काल और आ गये मस्खरा
तननतान तन धुम, खुशियां घरघर में ॥२॥
राज्य अधिकारी देत इशारा, अब क्या देरी बजे नक्कारा
और वाजिंत्र अनूप, खुशियां घर घर में ॥३॥
बज रही नौबत खुशी के बाजे, खुशी होवें सब मित्र राजे
ऐसा बंधा स्वरूप, खुशियां घर घर में ॥४॥

दो.— अद्भुत है सबने सुना, जनक सुता का रूप।
देखन आते चाव से, कइ तन पुण्य अनूप ॥
पुरी अयोध्या में सुनी, नारद महिमा रूप।
किन्तु मन में जचा नहीं, मुनि के सत्य स्वरूप ॥

चौ. (नारद स्वगत विचार)

नारद ने सोचा राम से बढकर, सीता रूप नहीं पा सकत
मेरा विचार तो ऐसा है, वह राम के मन नहीं भा सकत
ऐसा न हो कि बिना खबर, कहीं विवाह अचानक आन
और देख कुरूप राम को फिर, करना न आर्त्तध्यान प

दो. (नारद)-मिथिला नगरी जाय कर, देखूं सीता अंग।
यदि तुल्य जोडी हुई, तभी विवाह का ढंग ॥

चौ.— तभी विवाह का ढंग बने, नहीं विघ्न डाल कोई
यदि कोई ना समझा तो मैं बुरा स्वयं बन लूंगा।
लिये रामके राजकुमारी, और कोई देखूंगा।
चलूं अभी मिथिला नगरी, छिन मात्र में पहुंचूंगा।

दौड़— मुझे है काम राम से, खयाल नहीं किसी काम से ।
पसंद मैं खुद कर लूंगा, तभी विवाह होने दूंगा नहीं
उल्टा सब कर दूंगा ॥

दो.— मुनि रंगीले चल दिये, पहुंचे मिथिला जाय ।
वही बात वही ध्वनि, धंसे महल के मांय ॥

छन्द— उस पुण्य तन को देखकर, नारद ने मुख अंगुली लई ।
क्या नूर है या हूर है, या मेरी अक्ल ही मारी गई ॥
देखा भारत सब घूम कर, कहीं रूप इस सदृश नहीं ।
क्या जन्मी आकर देव कुमरी, यह रूप मनुष्य का नहीं ॥
इन्द्राणी भी शर्मावती, यह रूप राशी देखकर ।
शोभेगी अति विमान में, यह जायगी जब बैठकर ॥
दूर से ही देख आश्चर्य चकित है मनमेरा ।
दूं आशीस जाकर पास, पुत्री की अक्ल देखूं जरा ॥

दो. (नारद-रूप) पीली आंखे और भवें, अजब रंग सब जान ।
पीले ही शिर केश हैं, दाढी अद्भुत ज्ञान ॥

चौक— पडी नजर जब सीता की, डर करके भीतर भाग गई ।
हा: खाई मारी दौडो पकडो, ऐसा रोती राग गई ॥
बोले नये सेवक पकडो, यह भूत भाग न जाय कहीं ।
काला मुंह इसका करके, दो चार ठोक दो लात यहीं ॥

छंद— कोलाहल भृत्यों का बढा सब महल गुंजारव हुआ ।
शीघ्र ही अंतःपुर चमुपति, जांच को प्रस्तुत हुआ ॥
आया है घटना स्थानपर, देखें तो क्या नारद मुनि ।
भयमान सब पीछे हटे, नीची करी सब ने ध्वनि ॥

कहने लगे सोचे बिना, आफत यह छेडी है तुम्हें
ऐसा न हो महा कष्ट कहीं, जा करके दिखला दे हमें।
बाल ब्रह्मचारी महा गुणी, नारद मुनि शुभ नाम है
तोडा फोडी कर तमाशा, देखना यह काम है ॥
रण वास आदि सब जगह, नहीं रोक इनको है कहीं
भाई भले के सर्वदा, बद से बदी छोडें नहीं ॥

दो.— नारद मन में सोचता, किया मेरा अपमान ।
इसका फल दूंगा इन्हें, सोचा लाकर ध्यान ॥

चौ.— चित्र खींच कर सीता का, अब जल्द वहां से धाये है
वैताड गिरी रथनुपुर जा, नारद ने जाल बिछाया है
जब नजर पड़ी भामंडल पर, नारद को आश्चर्य आया है
सीता की मानिन्द इस पर भी, क्या रूप रंग अति छाया है
भामंडलने देख मुनिनारदको शीश नमाया है ।
आशीर्वाद पा—राज कुमरने, अयसे वचन सुनाया है
कहो मुनिमहाराज किधर से, आकर दर्श दिखाये हैं
सब तरह कहो शान्ति तो है, और कहां घूम कर आये हैं

दो. (नारद)-मिथिला नगरी से अभी, आया हूं राजकुमार
काम हमारा घूमना, सर्व जगत मंझार ॥

चौ.-(नारद)-आश्चर्य जगत इक चीज आपकी खातिर आज मैं लाया
है तेरा ही अनुराग मुझे, इसीलिये यहांपर आया है
चलो अभी तुम महलों में, हम भूप से मिलकर आते हैं
देर नहीं कुछ पास तुम्हारे, अभी आन दिखलाया है

दो.— कुमर गया निज महलमें, मुनि खास दरबार ।
देख मुनि को भूपति मन में खुशी अपार ॥

गाना (नारद का भामंडल से कहना)

तर्ज — कवाली

जवां से कह नहीं सकलता कि यह, जैसी दुलारी है
मिले जोड़ी तेरे संग तो, खुले किस्मत तुम्हारी है ॥
रूपपुरनूर है रौशन, शर्म खाती है इन्द्राणी ।
हूवहू क्या कहूं सूरत, चान्द की सी उजारी है ॥
समझ भानु की मूर्त है, ढली मानों है सांचे में ।
मुल्क सब छान कर देखा, नहीं सदृश निहारी है ।
है चालि हंस की मनिन्द, कला चौंसठ समीपूर्ण ।
हैं मानिन्द मोर की गर्दन के नयनों की कटारी है

दो.— लगा पलीता मुनिजी, हुवे नींद में लीन ।
भामंडल यूं तड़पता, जैसे जल वीन मीन ॥

चौक— राज कुमार का देख हाल, राजा रानी घबराये हैं ।
वैद्य ज्योतीपी और सयाने, राजाने बुलवाये हैं ॥
देख सभी ने वतलाया, नहीं इस को कोई बिमारी है
किंतु है ख्याल कहीं जमा हुआ, यह आया समझ हमारी है

छन्द — तड़प भामंड़ल रहा, मोह लीन बीमारी हुई ।
देखकर माता पिता को, वेदना भारी हुई ॥
पुत्र के मित्रों से भी पूछा, हाल सब महाराज ने ।
बोले दिखाया चित्र था, कलह प्रिय मुनिराज ने ॥

सुनते ही गुण उस कामिनी के, हो गया बेताब है
समझाया बहु तेरा मगर, आइ नहीं वह आब है ।

दो.— खुली आँख जब जनक की, विस्मित हुआ अपार ।
देख देख चारों तरफ, करने लगा विचार ॥

दो.-(जनक स्वागत विचार)
आश्चर्य में लीन हो, मन में खिन्न महान ।
सोया था निज महल में, यहां सब और सामान ॥

छन्द (जनक)-सोया था मैं निज महल में, कौन ले आया मुझे।
सोऊं या जागूं हूं मैं क्या, या स्वप्न कोई आया मुझे॥
नारी कहां पुत्री कहां, सेवक कहां वह दास है।
अपना नहीं आता नजर, बैठा अपर कोई पास है॥

छंद (चंद्रगति)-चन्द्रगति कहने लगा, श्री जनक से कर जोडकर।
कर दो क्षमा अपराध मम, कहता हूं मद को छोडकर।
पुत्री सुनी है आपके, सीता कुमारी नाम है।
भामंडल से परणाओं उसे, केवल यही बस काम है।

दो. (जनत)-पुत्री निश्चय है मेरे, सुनो भूप कर गौर ।
दशरथ सुत को दे चुका, छुटी हाथ से डोर ॥

चौ. (जनक)-स्वयं करो विचार मणि अब, शेष नाग के सिरपर है
वह दे सकता नहीं और किसे, सिर जब तक उसके धडपर है।
अब हाथ सिह की मूछों पर, सोचो तो भूप कौन डाले
ऐसा कहो कौन दुनियां में, कहे काल को आ खाले।

दो — सुनी बात यह जनक की, हुवे क्रोध में लाल ।
चन्द्रगति कहने लगे, आंखे लाल निकाल ॥

चौक (चन्द्रगति)-उस गीदड की धमकी से, मैं जरा न भय खाऊंगा
रखता हूं व्यवहार नहीं, तब सुता उठा लाऊंगा।

देखूंगा बल दशरथ का, जब सुत व्याहने आऊंगा ।
मानिंद गरुड के भूचर नृप, सर्पों पर छा जाऊंगा ॥

दौड— दिखा शक्ति दशरथ की, देख मेरे भुजबल की ।
सोच कर ले निज दिल, से, सीता का जो विवाह होगा
तो होगा भामंडल से ॥

दो. (जनक)-बुद्धिमानी आपकी, देख लई भूपाल ।
खाली बादल की तरह, वजा रहे हो गाल ॥

चौ. (जनक)-क्या योद्धापन दर्शाया है, चौरी से उठाकर लायेगें।
कभी बतलाते हैं दशरथ को, अपनी शक्ति दिखलायेगें ॥
वार वार क्या दुनियां सव, चौरों का धोखा खाती है ।
कोई शक्ति और बुद्धिमानी की, बात नजर नहीं आती है ॥

दो.— तेजी आई भूप को, किन्तु जरी तमाम ।
सोचा ढंग वही करें, बने जिस तरह काम ॥

चौक (चन्द्रगति स्वगत)
विगड जायेगा वातों में, क्योंकि चत्रीय कह लाता है ।
कर चुका सगाई लडकी की, नरमाइ से समझाता है ॥
कार्य से है मतलब मेरा, कोई खेलूं इस से चाला है ।
देवाधिष्टित धनुब है दो, यही उपाय एक आला है ॥

दो.— अनुचित है तुमने कहा, सुनो जनक भूपाल ।
क्या हाथ कंकन को, आरसी दिखलावें तत्काल ॥
वज्रावर्त, अरूणवर्त, धनुष है अतिशयवन्त ।
यक्षों से सेवित हुवे सुनो भूप मतिवन्त ॥

चौ.-(चन्द्रगति) जा रचो स्वयम्वर लडकीका, सब उचितभूप बुला लेओ
यह धरो स्वयम्वर वीच धनुब फिर ऐसे शब्द सुना देओ ।

सम आयुष्य वाला राजकुमार जो, क्षत्रिय धनुष चढ़ायेगा
पड़े उसी गल वर माला, मम, पुत्री वही विवाहेगा
है पक्ष रहित यह बात किसी को करना चाहिये उजर न
नहीं तो झगड़ा बढ़ जायेगा, इस ढंग बिन होगा गुजर नहीं
एक बिना हमारे रामचन्द्र या, कोई भूप चढ़ावेगा।
इन्कार नहीं हमको, कोई सीता को वही ले जावेगा
यदि ऐसा न हुआ किसी से, तो पुत्र मेरा ही विवाहेगा
और न होगी बात को, चाहे भूमंडल चढ़आवेगा ॥
चलो अभी कुछ देर नहीं, तुमको पहिले पहुंचाते हैं
जा करो तय्यारी जल्दी से मिथिला नगरी हम आते हैं

दो.— जनक भूप मन सोचता, मुश्किल वनी लाचार।
समय क्षेत्र को देखकर, किया यही स्वीकार ॥
निश्चित बात करके सभी, जनक दिया पहुंचाय।
चन्द्रगति ने भी लिये, निज विमान सजाय ॥

चौ.— चन्द्रगती ने नियत स्थानपर, डेरा आन लगाया है
थे बडे २ योद्धा संग में, विद्याधर अति गर्माया है
यहां भवन में बैठे जनक भूप, मन में कुछ आर्तिभारी
यह हाल देखकर भूपति का, रानी ने गिरा उचारी है

दो. (रानी)-पहले प्रसन्न थे आप तो, अब हो गये उदास।
किस कारण पति ले रहे, लंवे लंवे सांस ॥

छंद (जनक)-क्या कहुं मैं रानी तुझे, बस कुछ कहा जाता नहीं
अशुभ कर्म प्रकट हुए, यह दुःख सहा जाता नहीं
खेचर उठाकर रात, रथनुपुर मुझे था ले गया।
तब चंद्रगति भूपाल ने, आकर के मुझ से यह कहा

सीता को भामंडल से परणो, सब कहा समझाय कर ।
नहीं तो तरह तेरी सिया को, भी मैं लाऊं उठाय कर ॥
अन्तिम स्वयम्बर फैसला, कर धनुष दो लाकर धरे ।
मिथिलापुरी के बाहिर, आकर भूपने डेरे करे ॥

दो.— सुनी अरुचिकर सभी, जनक भूप से बात ।
रानी के हृदय पर हुआ, जैसे वज्राघात ॥

दो. (विदेहारानी)-हा ! कर्म सब तुझको नहीं, लेकर पुत्र प्रधान ।
लेनी चाहे पुत्रिका, बचें किस तरह प्राण ॥
स्वेच्छा से व्याहते सुता, होता हर्ष अपार ।
विन इच्छा के लेवे कोई, दारुण दुःख हरबार ॥

चौ. (रानी)-रामचंद्र से धनुष यदि, कहीं नहीं चढाया जावेगा ।
तो विद्याधर वताड़ गिरीपर, सीया को व्याह ले जावेगा ॥
हा ! राजकुमारी सीता के, फिर दर्शन कैसे पाऊंगी ।
और इसी विरह में घुलकर, वस अपने प्राण गमाऊंगी ॥

ो (जनक)-रानी मन निश्चय धरो, धनुष चढावें राम ।
पुण्य प्रवल वलवीर का, देखा मैं संग्राम ॥

ा.— रानी को संतोष दे, लिये भूप वुलाय ।
मंडप की रचना करी, दिये धनुष रखवाय ॥

द— स्वयंवर मंडप में विराजे, आन कर सब भूपति ।
वरमाला डालूं रामगल में, ये ही सीता सोचती ॥
चिल्ला चढाया धनुष का, यदि राम से न जायगा ।
तो जीव मेरा भी कहीं, ढूंढा न तन में पायगा ॥

.— दिव्याभूषण पहिन कर, साथ सखी परिवार ।
धनुष पास जाकर लगी, पढन मंत्र नमोकार ॥

दो.— (सीता) चढ़े धनुष श्री राम से, इस भवके वही नाथ।
संबंध नहीं त्रियोग से, किसी और के साथ ॥

चौक— सीता के अनिन्द्य सुन्दर तन पर, जब दृष्टि सबने डाली है।
क्या नखशिखढला जिस्म, सांचे में अद्भुत झलक निराली है।
कैसा भोलापन चेहरेपर, अद्भुत ही रूप दमकता है
पुण्य उसी का जो व्याहेगा असली रत्न चमकता है।
चन्द्रगति मन सोच रहा, कि बस भामंडल ही व्याहेगा
दूर किनार है धनुष उठाना, पास न कोई भी आयेगा।
जनक भूप उठ कर बोले, जो क्षत्रिय धनुष उठायेगा।
शूरवीर रणधीर आज, वो ही वरमाला पायेगा ॥

दो.— सुनकर वाणी जनक की, उठे भूप बलवान।
कंपाते हुवे धरण को, मन में भर अभिमान ॥

चौ.— बोले ये धनुष तो चीज हैं क्या हम वज्र इन्द्र का तोड़ धरें
और मार गदा हम मेरू गिरी के, शिखर सभी हैं गर्द करें
तीर मार कर भूमि में, असुरों के भवन सब चूर करें
मारें ऐसा अग्नि बाण हम, रवि विमाग को भस्म करें
शतखण्ड करें एक हाथ से, इनके जैसे कि तोडें पताशा हैं
फिर उसे चढाना चिल्ले पर, साधारण खेल तमाशा है
हम क्षत्रिय बहादुर, किस गिनती में इनको लाते हैं
अभी चढ़ाकर प्रत्यंचा पर, जनक सुत को व्याहते हैं

दो.— बैठे हुवे सब इस तरह, बजा रहे थे गाल।
तडक फडक करके उठे, अभिमानी भूपाल ॥

छं.— तय्यार थे क्षत्रिय सभी, शक्ति दिखाने के लिये।
पास आये धनुष के, चिल्ला चढाने के लिये ॥

ज्वलनसिंह कहने लगा, चिल्ला चढ़ाऊं भाजते ।
सीता को पटरानी करूं, बाकी रहे सब झांकते ॥
पास में आया है जब, कोदंड लख घबरा गया ।
प्राण रक्षा के निमित्त सब, शक्ति को बिसरा गया ॥
थरथराता धरणि पर वह, धम्म से आकर पडा ।
कायर अधम कहते कई, उपहास्य करते हैं बडा ॥

दो.— देख हाल यह नृप सभी, मना रहे निज इष्ट ।
शक्ति के धर्त्ता कई, योधा वडे प्रतिष्ट ॥

चौक— चिल्लेपर धनुष चढाने को, सब शक्ति निज दिखलाते हैं ।
जब बढ़े धनुष की तरफ देख, हालत मन में घबराते हैं ॥
शोभन स्थल पर धनुष्य, बनावट जिसकी असाधारण थी ।
यक्षों से थे सेवित अस्त्र सजावट, उनकी असाधारण थी ॥
प्रखर विद्युत समज्वाला जिनसें, अपनी दमक दिखाती है ।
चहुं ओर लिपट रहे फणीयार,
विषधर नजर मौत ही आती है ॥
डर गये पड़े मुंह भार कई, और गये भाग घबराय कई ।
मान स्यान खोकर नीची, दृष्टि कर बैठे जाय कई ॥
कई कहें जनक नृपने देखो, कैसा ए जाल बिछाया है ।
यह धनुष नहीं उपहास्य किया, जो सबका मान घटाया

दो.— चन्द्रगति मनमें मगन, देखे सब नृप राय ।
क्या मजाल है राम की, धनुष सामने जाय ॥
देख हाल यह धनुष का, करता जनक विचार
न चढ़ा धनुष यदि रामसे, मुश्किल फेर अपा

चौ (जनक)–अब रहे रामचन्द्र बाक़ी, यदि नहीं चढ़ाया जायेगा ।
तो सियाको व्याहकर विद्याधर, बैताड गिरी ले जायेगा ॥
है शूरवीर दशरथ नन्दन, ताना कोई आज लगाऊं में ।
जिस तरह चढ़ावे धनुष, उसी से मनवांछित फल पाऊं मैं ॥

दो. (जनक)-शूर वीर क्या नहीं रहा, कोई दुनियां बीच ।
धनुष चढा नहीं किसी से, हुवे सभी क्या नीच ॥

चौ. (जनक)-लगा ताव मूछों पर बैठे, आन स्वयम्बर घर में ।
अच्छा है कहीं मरो डूब जा, पानी चुल्लु भर में ॥
क्षत्रिय कुल की लाज रक्खे, कोई आता नहीं नजर में ।
आन चढ़ावो धनुष यदि, रखते कुछ जोश जिगर में ॥

दौड़— वनो सब अभी जनाने, भेष छोडो मरदाने ।
माता का दूध लजाया, रल मिल के क्षत्रिय कुल को
क्यों वट्टा आज लगाया ॥

दो.— जनक भूप की बात सुन, कोपा दशरथ नन्द ।
कहे लक्ष्मण श्री राम से, बांका वीर बुलन्द ॥

दो. (लक्ष्मण)-अय । भाई नृप जनक ने, कही यह अनुचित बात ।
सूर्य के होते हुवे, दिन को समझी रात ॥

चौ (लक्ष्मण)-देवो आज्ञा धनुष चढाऊं, जरा देर नहीं करता ।
बोली की गोली सही समझ लो, सिर्फ आप से डरता ॥
वरना एक पलक का भी, अरसा न जनाव गुजरता ।
एक धनुष क्या और कहो, सब चढा किनारे धरता ॥

गाना नं. ४ (लक्ष्मण का कथन)

तर्ज–बहरे तवील—
बोली की गोली से घायल किया,
क्षत्री आया कोई इस को नजर ही नहीं ।

सूर्य वंशी हैं बैठे प्रबल सामने,
इसको इतनी भी देखो खबर ही नहीं ॥
कोई क्षत्रिय नहीं अब कहा सो कहा,
आगे लाना जबां ये जिकर ही नहीं ।
बिना चिल्ला चढाये जो मैं पीछे हटूं,
तो मैं दशरथ का समझो कुमर ही नहीं ॥

दो.— अतुल तेज लख अनुज का, सोच रहे सुखधाम ।
दीर्घ दृष्टी गंभीर नर, यों बोले श्री राम ॥

दो. (राम)-ठीक कथन लक्ष्मण तेरा, है तुझको शाबास ।
ऐसी क्या ताकत धनुष में, चलकर देखें पास ॥

चौ— क्षत्रिय हैं हैरान सभी, जा धनुष पास घबराते हैं ।
सब ग्रीवा नीची कर अपनी, शर्माकर वापिस आते हैं ॥
विद्याधर का धनुष समझ, लक्ष्मण नहीं कोई मामूली है ।
यदि हुवे यहां से वापिस हम तो, लोक हंसाई शूली है ॥

दो. (राम)-सिद्ध सभी कार्य बनें, पढो मंत्र नमोकार ।
धनुष मात्र यह चीज क्या, बने वज्र भी तार ॥

चौ.— धीर विक्रम गज ललित गति से, चले राम सुखदानी है ।
पीछे चले सुमित्रानन्दन, जोडी थे लासानी है ॥
उद्धतपना नहीं कुछ तनमें, धीर गति से चलते हैं ।
और देख देख नृप चन्द्रगति, आदि हृदय में हंसते हैं ॥
नहीं चढ़ा सके ज्या* विद्याधर, ये लड़के क्या कर लेवेंगे ।
चाप देख भयभीत भाग कर, हस्तपाद तुड़वा लेंगे ॥

* धनुपकी डोरी

कर रहे हंसी मनमानी सभी, न लक्ष्य राम कुछ करते हैं।
परवाह न ज्यों गजराज करें, जब श्वान भोंकते रहते हैं॥
देख अनूप शरासन मनमें, राम अति हर्षाते हैं।
और सारमंत्र उच्चार धनुष के, सम्मुख हाथ बढ़ाते हैं॥
वृद्धिगत पुण्य प्रताप से, अग्नि ज्वाला सब काफूर हुई।
और नाग रूप धारी यक्षोंकी, क्रोधानल सब दूर हुई॥
खिलोने को दारक† ज्यों लेवें, त्यों रामने धनुष उठाया है।
टहनी सम नमा शरासन, ऊपर प्रत्यंचा को चढ़ाया है॥
आकर्ण चापको खींच रामने, खाली टंकारव शब्द किया।
ज्यों नभ में अति कड़के चपला,S त्यों महा भयंकर शब्द किया॥
वज्रावर्तज धनुष दूसरा, लक्ष्मणजी ने उठा लिया।
और खींच राम की तरह, एकदम टंकारव घनघोर किया॥
हृदयस्थल कांपे नृप जनके, मूर्छित हो धरणी जाय परे।
नेत्र स्फारित§ कर देख रहे, आश्चर्य चकित कई होय रहे॥
चढे धनुष दोनों चिल्ले, जयकार बोल रहे नरनारी।
करें त्रिदश‡ वृष्टि कुसुमों की, हर्षोल्लासित जनता सारी॥
उसी समय श्री राम के गल वरमाला सियाने डाल दई।
गद्गद् हुवे जनक राजा, जब मनो कामना पूर्ण हुई॥

कविता नं. ५.

ताल-त्रिताल—

चढाकर धनुष लोक हर्षित किये
जब चढाया धनुष्य घोर कड़की गगन इन्द्रदेव सब देव हो
गये मगन हां रचाया स्वयंवर जभी इस लिये ॥१॥

† बालक S बिजली § खोलकर ‡ देवता,

लहराया धर्म का झंडा, मिटाया शोक सब जनका।
सीया ने राम को वरणा, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥६॥
रहे जोड़ी सदा कायम, रहे बाशाद ये दोनों।
देश और धर्म के रक्षक, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥७॥

दो.— देख वीरता सकल जन, होते हैं हैरान।
क्या छोटीसी उमर में, इतने है बलवान् ॥

चौ.— अष्टादश लड़की राजोंने, लक्ष्मण को परणाई है।
देख पुण्य शक्ति सबही ने, अपनी प्रीत बढ़ाई है ॥
श्री कनक भ्रात था जनक भूपका, पुत्री अति सुखदाई है।
शुभ 'भद्रावली' नाम जिसका, वह भरत कुमरको व्याही है॥
अति धूमधाम से विवाह किया, यहां कथने में नहीं आया है।
और चन्द्रगति खो धनुष, आप हो कर उदास चल धाया है॥
बाकी सबने प्रस्थान किया, मैदान रामने पाया है।
विदा समय विदेही ने सीता को वचन सुनाया है॥

गाना नं. ७ (विदेही माता का सीता को शिक्षा)

तू बेटी ! आज से हुई पराई, तुझे अवधपुर जाना होगा।
सास ससुर और परिजन सबका, पतिका हुक्म बजाना होगा॥
नित्य नियम का साधन निशदिन, पतिव्रत धर्म निभाना होगा।
पिछे सोना पहिले उठना, नित्य शुभ कर्तव्य कमाना होगा॥
विधि सहित भोजन शुद्ध करना, पानी नित छान वर्तना होगा।
निरर्थक बातों को तजकर, आत्म ज्ञान चरचना होगा॥
कोध और माया ममता, इनको दूर भगाना होगा।
कुल मर्यादा नहीं विसरना, लाज शरम मन धरना होगा॥

ऐश्वर्य का गर्व ना करना, अन्न धन दान दिलवाना होगा।
संयोग मिले तुझको सुखदायी, पुण्य अखुट कमाना होगा ॥
अपने सुख का ध्यान न रखना, दुखियों का दुःख हरना होगा।
शील रतन का अमूल्य गहना, तुझ को अंग सजाना होगा ॥
पांच अणुव्रत पूर्ण पालों, शिक्षा पर ध्यान जमाना होगा।
पति सेवा में तन, मन, धन, क्या सभी निछावर करना होगा ॥
पति कदाचित क्रोधित होवें, विनय सहित खुश करना होगा।
झूठे ढोंग सभी कुछ तजकर, जिनवर का शरणा होगा ॥
विद्या पढ निज पर हित करना, देव गुरु धर्म लखना होगा।
मनुष्य जन्म का यहि सार, बेटी तुझको चखना होगा ॥
समय पडे पर देश धर्म की, खातिर बेटी मरना होगा।
सद्ग्रन्थों को पढो पढाओं, ध्यान "शुक्ल" धरना होगा ॥

दो.— अनादिकाल का है यही, दुनियां का व्यवहार।
समयानुसार बेटी सभी, करते हो लाचार ॥

गाना नं. ८

(राजा जनक का विदा के समय सीता को शिक्षा देना)

तू मेरी एक ही सीता बेटी है, और कोई नहीं दो चार नहीं।
फिर राज की सारी सृष्टी में, तुझ से बढ़ कर कोई प्यार नहीं ॥
है पुण्यवान बेटी सीता, सुख पाया पूर्व ले जंप तप से।
और मंगलीक दर्शन तेरे, मम प्रजा रही नित उत्सव में ॥२॥
तू जैन धर्म की वेत्ता हैं; सर्वस्व शास्त्र की ज्ञाता है।
नरनारी कहते होगें जनक, सूर्य को दीपक दिखाता है ॥३॥
सब नय प्रमाण क्या स्याद्वाद् सप्तभंगी मर्मकी माहीर है।
फिर चौसठ विद्या है प्रवीण, और क्षमाशील जग जाहिर हैं ॥४॥

तव माता पिता के विरह का दुःख, सर्वज्ञ देव ही जानते हैं।
व्यवहारिक लक्षण दृष्टिसे, नरनारी कुछ पहचानते है ॥५॥
अब पुत्री कहना यही मेरा, खुश हो निज पति के गृह जावो।
सुख संपतिवर संतान सर्वदा, शोभन निज पुण्यसे पावो ॥६
बचपन में तूने अय बेटी, सुख जन्म गृह में पाये हैं।
आगे पति के गृह सर्व सुख, तेरे सनमुख आये हैं ॥७॥
पति सेवा का महत्व लाडिली, सद् ग्रन्थों में गाया है।
इस बात को अब चरितार्थ करे, सब सार आज तू पाया है ॥
सब मंत्र तंत्र टूणा जादू इनको, हृदय धरना न कभी।
क्या भूत प्रेत डाकण शाकण, इन से बेटी डरना न कभी ॥६
ये प्राण जाय तो जाय किन्तु, बेटी न धर्म जाने पावे।
छल छीद्र पोपलीला बेटी, तुझको न कोई छलने आवे ॥१०
निज सासससुर पति की सेवा, करना कर्तव्य तुम्हारा है।
सर्वज्ञ कथित करो धर्म 'शुक्ल' अन्तिम उपदेश हमारा है।१
एक आत्म और शरीर यह दो, रोग मुख्य संसार में हैं।
कम खाना गम खाना औषधी, दोनों तेरे अधिकार में है॥१२
वुत प्रस्ती एक बला मिथ्या, वह भ्रम ना हृदय धर लेना।
कभी देश धर्म आत्म समाज, कमजोर ना इसको कर लेना।१३
कृत कर्मों का भोग कष्ट, आपत्ती सहसा आ जावे।
समता दृढता से सब झेलो, रंचक ना दिल गिरने पावे ॥१४
अन्याय के आगे झुकना न कभी, सब सृष्टी चाहे उलट जावे
आत्म धर्म बचाओ अन्त्यम, चाहे सब कुछ लुट जावे ॥१५
क्या सीढ सीतला काली गोरी, भ्रम को दिल से ठुकराना।
किसी देव दानव या गंधर्व का, शरण न स्वप्न मात्र चाहना १

ज्ञान दरस चारित्र से, तूने निज आतम पहचाना ।
तो करो धर्म की नित्य सेवा, जो इस भव परभव सुखपाना ॥
आतम में अनन्ती शक्ति है, सच्चिदानंद बन सक्ती है ।
पूज्य काशीरामजी की शिक्षा, सब दुःख समुह हर सक्ती है॥

गाना नं. ९

राग ताल त्रिताल (विदा-समय सीता को कनक की शिक्षा)
वेटी सुन सीता ज्ञान मेरा तुम इसे भुल मति जाना॥स्थायी॥
प्रीतम आवतारी राम तेरा तू फूल कली यह भंवर तेरा ।
है रुत्तवा आला जवर तेरा, रघुवर के चरणों में ध्यान लाना॥१॥
मंत्र तंत्र धागा तावीज ये झुठी हैं तीनों चीजें ।
इनको वरते वे तमीज तू इनपर ध्यान मति लाना ॥२॥
नमोकार नित पढना सीता, तू समझ प्रेम इसको गीता ।
तीन लोक उसने जीता, नमोकार ज्ञान जिसने माना ॥३॥
यह नष्ट करें दुःखदायनको, ला प्रेम पढ़ो इस गायन को ।
इसभव परभव सुखदाई, तुम्हें शुभध्यान 'शुकल'भगवनध्यान ४

दो.— रथ शकट हस्ती पीनस, अश्व दिये शृंगार ।
मणि मुक्ता माणिक दिये, जिनका नहीं शुम्मार ॥

चौ.— जिनका नहीं शुम्मार, जनकने वहुत दिया भूषण गहणा ।
विदा बाद सब कहे सहेली, अब नहीं चित लगता बहना ॥
विन सीता लगे मिथिला सूनी, मुश्किल हो गया अब रहना ।
आज विछुड़ गई हमसे सीता, कोकिल वैनी मृग नैना ॥

दौड़— छोड गई जन्म भूमि को, जा रही श्वसुर भूमि को,
अब सीता विन चित लगे ना, देख देख कर वास भवन
को भर भर आवें नैना ॥

दो.— अवधपुरी में खुसी से, पहुंची जब बारात ।
स्वागत करने आ गये, नर नारी मिलकर साथ ॥

चौ.— मंगल गायन सहित सखियोंने, सीता महल पहुंचाई है।
धन्य कौशल्या भाग्य तेरे, सब ने दयी आन वधाई है॥
दिल खोल दान तकसीम करो, नृप ने दिया हुक्म बजीरों को।
फिर प्रीति भोजन दिया भूपने, मुफलिस और अमीरों को।

गाना नं. १०

मिल कामन झगड़ा डाल रही, खोलो कंगना बोली मार रही। टे.
सोचो मति तुम कंगना खोलो, समझ तुम्हें अवतार रही।
धनुष की चाप नहीं कंगना है, रघुवर से हंस नार रही ॥१॥
चातुरनार कही सखियों से, वृथा कर तकरार रही।
कंगन खोल दिया रघुवर ने, यूंही बहस घडी चार रही ॥२॥

दो.— दशरथ नृप ने एक दिन, उत्सव दिया रचाय ।
मंगलीक शुभ कारणे, कलशे जल भरवाय ॥

चौ.— भेज दिये रनवास कलश, पहला सेवक के हाथ दिया।
शेष कलश सब एक एक कर, दासी जनको बांट दिये ॥
निजनिज चेटी* ने निज निज रानी सिर कलश दुलाया है।
यह देख हाल पटरानी कौशल्याकों आमर्ष† आया है ॥

दो.-(कौशल्या)मुझे कलश भेजा नहीं भेजा औरों पास ।
अपमान एक मेरा हुवा, बाकी रही हुलास ॥

चौ.— कहने को तो पटरानी हूं क्या, इज्जत मेरी खाक रही।
भेज दिया सब ही को जल, पहिला हक नृप को याद नहीं ॥

---

* दासी, † क्रोध,

प्रेम नहीं अब रहा, उन्हें, मैं गणना में शुम्मार नहीं ।
इस बेइज्जति से मरना अच्छा, जीना मुझ को दरकार नहीं ॥
दो.— तुच्छ हृदय हो नारी का, भर लाई जल नैन ।
गद् गद् स्वर रानी कहे, उलट पुलट मुख बैन ॥
चौ.— इतने में आगया भूप, सब हाल देख घबराया है ।
बोले कहो कारण क्या रानी, मरना पसंद क्यों आया है ॥
गद् गद् स्वर से क्या बोल रही, नयनों में जल भर लाई हो ।
क्या हुआ तेरा अपमान, या किसी दुःख से आज सताई हो ॥

गाना नं. ११

राजा दशरथ का रानी कौशिल्या से पूछना-

महलों में शोक छाया, तेरे क्यों आज रानी ।
गुस्सेका कौन कारण, अए मेरी राजरानी ॥१॥
जागो या सो रही हो, व्याकुल क्यों हो रही हो ।
मुख जैसे की रो रही हो, किस गम में हो दिवानी ॥२॥
मंगल है तेरे घर में, तू लीन किस फिक्र में ।
इसका सुनु जिकर मैं, कैसी है गम कहानी ॥३॥
आर्त यह ध्यान छोडो, भ्रमता से मुख मोडो ।
उत्सव में मन को जोडो, वृथा क्या मन समानी ॥४॥
दो. (कौशल्या)-जान बूझ कर दुःख दिया, फिर बनते अन जान ।
भेज कलश सब को दिये, किया मेरा अपमान ॥
चौ.— "यह लो जल महारानीजी", इतने में आकर बूढा बोला ।
झट लिया हाथ दशरथ नृपने, और रानी के सिरपर ढोला ॥
क्रोध हुआ उपशान्त अति, प्रसन्न चित महारानी का ।
बोली महाराजा ने मुझ पर, खुद डाला कलशापानी का ॥

दो— हाल देर का भृत्य से, पूछा नृप ने फेर ।
पहिले जल तुझ को दिया, कहां लगाई देर ॥

दो. (बूढाभृत्य)-मैं चाकर महाराज का, करूं हुक्म तामील ।
जीर्ण मम काया बनी, लगी इस तरह ढील ॥

चौ.- - धरता पैर उठा आगे, पीछे को पडता जाता है ।
जब उठे निरंतर खांसी, बलगम गले बीच अड जाता है ॥
क्या करूं है नारी कलिहारी, अविनीत पुत्र दुःखदाई है ।
पुण्य उदय पिछली आयु में, शरण आपकी पाई है ॥

दो.— स्वयं अपना हाल कह, शर्माऊं महाराज ।
अपनी नारी के कहुं, कर्तव्य क्या सिरताज ॥

गाना नं. १२ (बूढे भृत्यका)

फूहड़नार बहुत किलसावे, (टेर)
बांकी टेढ़ी रोटी करती नीःरस साग बनावे ।
भाग्यहीन अब रोटी खाले, ऐसे तो वचन मुझे प्यारसे बुलावे
पहिले कहे बालन ला मुझसे, फिर पानी मंगवावे ।
क्षुधा के वस मांगु रोटी, सिरपर खांसडे चार टिकावे ॥२
दुःख दर्द में कभी आनकर, पानी तक न प्यावे ।
बोली की मारे भर गोली, जख्मी जिगर पर तीर चलावे ॥
क्षमा करो सब दोष मेरा, जो बना और बन आवे ।
मानिन्द बकरी शेर नारसे 'शुक्ल' मेरा यह मन घबरावे ।

दो.— झुर्रियां पड गई जिस्मपर, दान्त हुए सब दूर ।
यौवन सारा खो दिया, रहा बुढापा पूर ॥
चौ.— लगा कांपने शीस श्वास पर, श्वास निरंतर आते हैं ।
हो गये हाथ मुर्दे समान, दो चरण मेरे थक जाते हैं ॥

पाप किया पिछले भव में, अब भी न धर्म कमाया है ।
अमोल समय भ्रम जाल में, फंस कर मैंने वृथा गंवाया है ॥

दो.— व्यथा सुन कर वृद्ध की, दशरथ किया विचार ।
धिक् ऐसे संसार के, सिर पर डारो छार ॥

चौ.— विरक्त हुआ मन दशरथ नृप का, बूढे पर उपकार किया ।
आयु पर्यन्त भोगे सुख पूर्ण, ऐसा नृप ने दान दिया ॥
सोचा कि यह अवस्था मुझ पर, भी एक दिन आ जावेगी ।
मनुष्य जन्म अनमोल समय, यह बात हाथ नहीं आवेगी ॥

दो.— पुण्यवान् को झट मिले, जैसा होवे विचार ।
समवसरे आ बाग में, सत्यभूति अनगार ॥

चौपाई- पूर्व पाठी आगम विहारी । चार ज्ञान तप संयम धारी ॥
पांच सुमति और पर उपकारी । प्राणी मात्र के हितकारी ॥

दो.— जनता ने जब यह सुना, आये मुनिमहान् ।
हर्ष सहित पहुंचे सभी, सुनते धर्म व्याख्यान ॥

शेर- परिवार सहित गये, दशरथ नृप, मुनि जन को शीस नमाया है।
जब सुना धर्म व्याख्यान अति, आनन्द ज्ञान में आया है ॥
चन्द्रगति भ्रमण कारण, परिवार सहित था सैर गया ।
श्री मुनिदर्शन अर्थ अवधमें, वापिस आते ठहर गया ॥
थी ज्ञान की वर्षा यहां लगी हुई, मुनि भेद खोल दर्शाते हैं ।
कुकर्म संग हो मूढ फिरें यह जीव बहुत दुःख पाते हैं ॥
हो काम में अन्धे फिरें भटकते, राग मोह चित्त लाते हैं ।
देख मनोगम झुक लाभ, न होने पर पछताते है ॥
यह चिन्तामणि मनुष्य तन पाया, फेर हाथ नहीं आयेगा ।
अचक्षु कर्ण रस घ्राण, अनंते चक्रमें रुल जायेगा ॥

दोहा— पुद्गल प्रावर्तक जब सुना, गये भव्य घबराय ।
कुमति छोड़ सुमति ग्रही, सम्यक्त्व दिल ठहराय ॥
उपदेश बाद भूपाल ने, प्रश्न किया तत्काल ।
पूर्व भव का हे प्रभु ! कृपा निधि कहो हाल ॥
दो. (मुनि)-कर्मों की विचित्रता, सुनो भूप धर ध्यान ।
भामंडल सीता जन्म, युगल पने पहिचान ॥
छंद (मुनि)-बहन भाई आन जन्मे, यह विदेहा नार के ।
भाई को सुर हर ले गया था, द्वेष दिल में धार के ॥
रख इसे वैताड पर फिर, सुर गया निज धाम को ।
तूने उठाकर सुत वही, निज हाथ से दिया वाम को ॥
पूर्व जन्म का सुत तेरा, सरसा यह इसकी नार थी ।
तुम बने निर्ग्रन्थ मुनि, पुष्पावती भी लार थी ॥
अन्त तुम सुर पुर गये, सुख वैक्रिय भोगे अति ।
छोड सुर पद रथनुपुर, आकर बना चन्द्रगति ॥
संयोग वश आकर बनी, पुष्पावती पट नार है ।
भामंडल बना यह सुत तेरा, वास्तव में जनक कुमार है ॥
दो.— भामंडल ने कथन सब, सुना लगा कर कान ।
अध्यवसाय* निर्मल हुवा, जाति स्मरण ज्ञान ॥
पूर्व. जन्म का हाल सुन, गिरा मूर्च्छा खाय ।
हो सचेत कहने लगा, मस्तक जरा हिलाय ॥
चौक-(भामंडल) हूं महापापी चांडाल अधर्मी दुष्ट आत्मा मेरी है ।
जो वांछा मैं संयोग अनुचित, दैव ने बुद्धि फेरी है ॥
ततकाल गिरा चरणों में सीया, के बोला अविनय माफ करो ।
मैं हूं अपराधी बहिन तेरा, मुझ दुष्ट पे कोई दंड धरो ॥

---

* मन के भाव-विचार-अंतःकरण का शुद्ध होना।

दो०(कवि) भ्रात मिलन का आनन्द अति, सीता का हुआ दूर ।
न खुशी समाति अंग में, मिला वह सुख भरपूर ॥

चौ०— मिला बन्धु चाहे सीता को, खुशी का न कोई पार रहा ।
श्री रामचन्द्र ने भामंडल को, दिया अतिशय प्यार रहा ॥
निज हृदय लगा बहन सीता ने, भामंडल को आशीष दिया ।
निर्जीव रही अब तक माई, अब तक जैसे स्वांस लिया ॥
कि मिथिला नगरी रामचन्द्र ने, खबर यह पहुंचाई है ।
यह सुनते ही हुलसे जनक, और साथ विदेहा माई है ॥
देख पुत्र का मुख चन्द्र को, हृदय कमल प्रकाश हुआ ।
भ्रम बन्धन अवसर में, जैसे तम जंगल में नाश हुआ ॥
भामंडल ने माता पिता के, चरणन में, शीश झुकाया है ।
निज सुत को देख दम्पति के, हृदय में आनंद आया है ॥
उस खुशी को कैसे बतलावें, न भाव कथन में आता है ।
न शक्ति यहां लेखिनी की, सर्वज्ञ देव ही ज्ञाता है ॥
नृप चन्द्रगति ने भामंडल को, रथनुपुर का राज दिया ।
आप लिया संयम नृप ने, तप जप से आत्म काज किया ॥
अष्ट कर्म संहारण को, शुभ भाव सदा ही वर्तावे ।
अहो भाग्य 'शुक्ल' उस प्राणी का, जो संयम मार्ग को चाहे ॥

दो.— आनन्द मंगल हो गया, पहुंचे निज निज धाम ।
जनक भूप का सिद्ध हुआ, मन वांछित सब काम ॥
सत्यभूति ज्ञानी मुनि, शुभ चारित्र विशाल ।
शासन के श्रृंगार हैं, षट् काया प्रतिपाल ॥
विधि सहित करे वन्दना, बोले दशरथ भूप ।
पूर्व जन्म का हे प्रभु, फरमाना मेरो स्वरूप ॥

प्रश्न सुन कर नर नाथ का, तब बोले मुनिराय ।
पूर्व भव की कथा तुम, सुनो श्रवण चित्तलाय ॥

❀ राजा दशरथ का पूर्व भव वर्णन ❀

दो. (मुनि)-सेवापुरवरनगर में, भावन सेठ सुजान ।
पत्नी उसकी दीपिका, सुनो लगा कर कान ॥

छंद— उपास्ति नामक तिनके सुता, साधु की जिस निन्दा करी
जीव नृप वह ही तुम्हारा, अब सुनो आगे चरी ॥
चंद्र गिरी भूपाल के, धन्य श्री शुभ नार थी ।
वरुण नाम का सुत हुवा, संगति मिली सुखकार थी ॥
सेवा करे साधुजनों की, ध्यान दो शुभ नित्य रहे ।
दी छोड़ खोटी संगति, सब आत्मा को जो दहे ॥
उत्तर कुरुक्षेत्र में, वहां मर कर हुआ फिर युगलिया ।
फिर तीन पल्य की भोग आयु अन्तमें सुरपद लिया ।

दो.-(मुनि) पुष्कलावती नामक पुरी, पुष्कलावती विजयमंझार ।
नन्दी घोष राजा भला, पृथ्वी नामा नार ॥

चौक- नन्दी वर्धन इक हुआ पुत्र, सुरगति से चव कर आया है
दे राज पुत्रको नंदी घोषने, तप संयम चित लाया है ।
श्री यशोधर नामक मुनि पास, संयम व्रत ले अनगार हुआ
नन्दी वर्धन भी पीछे से, श्रावक बारह व्रत धार हुआ

दो.— गृहस्थ धर्म लेकर गयो, पंचम स्वर्ग मंझार ।
आयुष्य क्षय कर देवकी, फिर लिया मनुष्य अवतार ॥
पूर्व महा विदेह क्षेत्र में, वैताड्य गिरी सुविशेष ।
उत्तर श्रेणी में भला, शशीपुर नामक देश ॥

चौक(मुनि) था भूप रत्नमाली विद्याधर, विद्युत् लता नारी तिसके ।
एक सूर्यंयश पुत्र जन्मा, अति शूर वीर योधा जिसके ॥
सिंह पुरी के वज्रनयन, नृप से राजा का जंग हुआ ।
वहां विजय रत्नमाली पाई, और वज्रनयन नृप तंग हुआ ॥

दो मुनि सिंह पुरी को घेरकर, अग्नि लगा लगान ।
पूर्व मित्र इक देव आ, लगा देन यों ज्ञान ॥
भूरिनन्दन तूं हुआ, पूर्व जन्म में भूप ।
पड़ विलासितों में तजा, तूने धर्म अनुप ॥

चौक— मुनिसे मांस का त्याग किया, किन्तु कुसंग ने घेरलिया ।
भंग किया तूने व्रत अपना फिर ढंग उसी तर गेर लिया ॥
मैं राज पुरोहित था तेरा, अब आगे हाल सुनाता हूं ।
स्कंद राय के हाथ से फिर, मैं मरण वहां पर पाता हूं ॥
हस्ति यूथ में जन्म लिया, पर कर्म कहीं न तजते हैं ।
भूरिनन्दन के भृत्यों द्वारा, वहां पर भी फंद में फंसते हैं ॥
मैं नायक किया हस्ति चमु में फिर होनी ऐसी बनती है ।
अन्य एक नृप सें, भूरिनन्दन की लढाई ठनती है ॥
दोहा— उस घोर युद्धमें मैं तजे,, हस्ति योनि के प्राण ।
पुण्योदय से फिर हुआ, इस का करूं बयान ॥
उसी भूरिनन्दन के थी, गांधारी नामकी पटरानी ।
मैं उसी के जाके पुत्र हुआ, जो कहलाती थी महारानी ॥
अरि सूदन नाम धरा मेरा, फिर जाति स्मरण ज्ञान हुआ ।
लख करके पूर्वभव अपना, संसार से मुझे वैराग्य हुआ ॥
दो.-- मुनि वृत्ति धारण करी, जनक की आज्ञा लेय ।
ज्ञान प्रथम धारण किया, फिर तप जप में चित देय ॥

पांच सुमति और तीन गुप्ति, का दिलमें ध्यान टिकाया है।
और महाघोर तप अग्निमें, बहु कर्म समुहको खपाया है ॥
अब अष्टम स्वर्गमें हुआ, देव उपमन्यु नाम धराता हूं ।
अब सुनो हाल राजन् अपना, तेरा भी हाल सुनाता हूं ॥

चौ.— तैंने मरकर अजगर योनि लई, फिर दावानलमें भस्म हुआ।
जा नरक दूसरी में पहुंचे, वहां कुंभिपाक में जन्म हुआ ॥
तू निकल नरक से भूपहुआ, रत्नमाली शुभ नाम कहाता है।
फेर नरक में जाने का यह, क्यों सामान बनाता है ॥
पाया देव से बोध नृप ने, पाप कर्म सब छोड़ दिया।
फिर सूर्य यश पुत्र सहित, दुनियां से दिलको मोड़ लिया॥
निज 'कुल-नंदन' को दिया राज्य, दोनोंने संयम धार लिया।
और स्वर्ग सातवें महा शुक्रमें, जिस्म वैक्रिय सार लिया॥

दो.— स्वर्ग सातवें भोग कर, सुत सुख अति विस्तार ।
सूर्ययश आ कर हुआ, तू दशरथ भूप उदार ॥
रत्न माली आकर हुआ, जनक भूपति यह ।
कनक जनक भाई भला उपन्या सहज स्नेह ॥

चौ.— मुनि नन्दी घोष ने ग्रैवेगमें, भोगे सुर सुख अति भारी।
सो सत्य भूति निर्ग्रन्थ हुआ मैं, चार ज्ञान महाव्रत धारी॥
सुना हाल जन्मान्तर का, ैराग्य भूप दिल छाया है।
फिर पुरी अयोध्या में आकर, नृप ने दरबार लगाया है॥

दो.— सुत मित्र पूछे सभी, और वडे मंत्रीश ।
भरी सभा के बीच में, भाषण लगे महीश ॥

चौ. (दशरथ)-अस्थिर तन धन संसार में,
है फिर इससे कहो संबंध ही क्या।

जिन फूलों ने कुमलाना है,
फिर उनकी मस्त सुगंध ही क्या ॥
प्रकृति का तन बना सभी यह,
अवश्य मेव खिर जावेगा ।
अनमोल समय यह मिला,
'शुक्ल' फिर शीघ्र हाथ नहींआवेगी ॥

सब राज्यमहल द्रव्य दुनियां का, कुछ जाना मेरे साथ नहीं ।
है यही समय जो निकल गया, दुर्लभ फिर आना हाथ नहीं ॥
यह तृष्णा है आकाश तुल्य, न भरी न भरने पायेगी ।
अग्नि में जितना घी डालो, उतनी ही लपट दिखायेगी ॥
जो वस्तु अनित्य संसारमें है, उससे अनुराग बढ़ाना क्या ।
मिल रहा संखीया जहर समझ, फिर उस भोजन का खाना क्या ॥
हो गया विरक्त अब मनमेरा संयम व्रत लेना चाहता हूं ।
सुत रामचन्द्र को राज ताज, निज कर से देना चाहता हूं ॥

दो(भरत) भरत कहे पिताजी सुनो, मैं व्रत लूं तुम लार ।
हित न जाने आपना, सो जन मूढ़ गंवार ॥
पहिला दुःख दारुण बड़ा, विरह आपका होय ।
और संसार बढावना, कौन सहे दुःख दोय ॥

चौ.— यह बात शीघ्र ही फैल गई, जैसे चिकनाई पानी पर ।
दासीने जो कुछ सुना हाल जा कहा कैकेयी रानीपर ॥
रामचन्द्र को राजतिलक, महारानी होने वाला है ।
और पुत्र तुम्हारा भरत भूपसंग, संयम लेने वाला है ॥

दो.— एक बात है सत्य तेरी, दूजी, बिलकुल झूठ ।
क्या कुभाव तेरे हृदय, डालन के हैं फूट ॥

चौक- पती देव संयम लेगें, यह बात तो सभी जानते हैं ।
उत्राधिकारी राम बनेगें, यह भी सभी मानते हैं ॥
पर संयम लेगे भरत कुमर, यह किसने तुजे सुनाया है ।
जिस वात का कोई संवन्ध नहीं, कहकर मम हृदय जलाया है ॥

दो.— दासी तेरी बात का मुझे नहीं इतवार ।
सिरपैर नहीं कुछ बात का, बांदी मूढ़ गंवार ॥१॥

चौ.— तू बांदी मूढगंवार सभी, वकवाद करे अपने मन की ।
यदि फेर मस्खरी की मुझ से, तो खाल उडा दूंगी तन की ॥
क्या तुझको कोई स्वप्न आया, या नशेवीच गल्तान हुई ।
यह भेद समझ में नहीं आता, सुन वात तेरी हैरान हुई ॥

दो. (**दासी**)-सत्य सभी मैंने कहा, कर तेरा अनुराग ।
बार वार तुझ से कहूं, इस गफलत को त्याग ॥

चौ.— इस समय यदि प्रमाद किया तो, फिर पीछे पछतावेगी ।
भरत पुत्र के विरह में फिर, रो रो कर समय वितावेगी ॥
तू स्वामिनि है मैं दासी हूं, इस कारण कहना पडता है ।
और भरत कुमर का मोह राणी, मुझको भी आन जकड़ता है ॥

गाना नं. १३ (दासी का)

रागनी-तीन-ताल—

रनी तुझ को नहीं मन: ज्ञान खवर । स्थायी—
अभी शहर में पिटा, ढिढोंरा, राज तिलक का समय दुपहरा ॥
खुशियां में सव अवध नगर ।
रामचन्द्र को राज्य मिलेगा, तख्त नशीनी ताज मिलेगा ॥
धूम मची कर देख नजर ।

क़हे दशरथ मैं संयम धारूं, भरत क़हे मैं संग सिधारूं ॥
फिर रानी तेरी नहीं कोई कदर ।
सोच यत्न कुछ करले रानी, आलस्य में क्यों पडी दिवानी ॥
तू भरत से करले आज सबर ।

दो.— सुन कर दासी के वचन, भुल गई रंग चाव ।
विरह पुत्र का न बनें, सोचन लगी उपाव ॥

चौ.— लगी अकल भ्रमण करने, कोई ढंग नजर नहीं आता है ।
विरक्त हुवे नृप नहीं रह सकते, सोचा सुत भी संग जाता है ॥
जो वर था मिला स्वयम्बर में नृप के भंड़ार रखाया है ।
अद्भुत यह ढंग निराला अब, लेने का मौका आया है ॥

दो.— पास बुलाई रानिये, बोले नृप समझाय ।
राज काज दे राम को, मैं संयम लूं जाय ॥

चौ.— जो जो मन के भाव आप, वह प्रकट सभी कर सकती हो ।
यह जन्म मरण संसार अनित्य, तज संयम भी धर सकती हो ॥
श्रेष्ठ मुहूर्त सभी ज्योतिषी, देख हाल बतलाते हैं
कल रामचन्द्र को राज ताज दे, हम संयम चित्त लाते हैं ॥

दो.— सुनते ही नृप के वचन, रानी सब हैरान ।
क्योंकि पति वियोग का समय दृष्टि लगा आन ॥

चौ.— देख विरह नृप को सब रानी, यथा योग समझाती हैं ।
निजराग प्रेम दिखलाने को, नयनों से नीर वहाती हैं ॥
जब समझ लिया राजा आगे न पेश हमारी जाती है ।
तब शेष मौन हो गई, कैकेयी ऐसे वचन सुनाती है ॥

दो(कैकेयी) नम्र निवेदन है पिया, संयम लेना बाद ।
वर भंडारे है मेरा, स्वयं करो प्रभु याद ॥

चौ.— स्वयं करो प्रभु याद गये थे, आप स्वयंवर घर में।
पंक्ति से थे बाहिर मैं लाई, वर माला जव कर में।
मचा घोर संग्राम अड़े, जव शूरे सभी समर में।
करी सहाय मैं उठा होल था, जव आपके आन जिगर में।

गाना नं. १४ (कैकेयी का दशरथ से कहना) वहर कव्वाली

अक्ल उस दिन मेरे स्वामी, गई थी कर किनारा है
अरिने सारथिके बाण जव सीने में मारा है ॥१॥
शत्रुओं ने तुम्हें आकर, युद्ध में जव दवाया था।
वनी में सारथिन आकर, दिया तुमको सहारा है ॥२॥
पडी मैं दल में विजली सी, चलाई तेग फिर तुमने।
हुए काफूर सव शत्रु रवि से, जैसे सितारा है ॥३॥
हो खुशी फिर अपने मुझ से, कहा मांगोगी सो दूंगा।
न तोड़ूं वाक्य क्षत्रिय हूं, वचन तुमने उचारा है ॥४॥
धरो भंडार में मैंने कहा, प्रीतम वचन लेकर।
उऋण होवें मुझे देकर, आप सिर वोझ भारा है ॥५॥

दौड— सुनो स्वामी चित लाके, वचन दो मेरा चुका के।
वचन क्षत्रिय नहीं हारे, जो हारे सो समझ पति,
नहीं पहुंचे मोक्ष द्वारे ॥

दो. (दशरथ)-हां मैंने था वर दिया, कर तेरा अनुराग।
विना एक चारित्र के, जो मर्जी सो मांग ॥

चौ. (,,)-सव ठीक दिलाया याद, मुझे अये रानी तूने आ करके।
मैं क्षत्रिय हूं नहीं तोड़ूं वाक्य, सव कहुं तुम्हें समझा करके॥
जो कुछ इच्छा तुझ को रानी, सव देने को तैयार हूं मैं।
निष्फल दुनियां में एक घडी, भी रहने से लाचार हूं मैं ॥

चौपाई- क्षत्रिय कुल रीत यही सुन रानी। वचन हेत तजते जिंदगानी ॥
मेरु समुद्र चले यही मान। शूर वचन जाने सम प्राण ॥

दो(कैकेयी)-आप तुल्य कोई है नहीं, दानी जन महाराज।
वर मुझ को भी दीजिये, जो कुछ मांगु आज ॥

चौ. (,,)-भरत पुत्र को राज तिलक दो, यही मांगना चाहती हूं।
बस और नहीं इच्छा मुझ को, सन्तोष इसी में लाती हूं ॥
अब कृपया आप शीघ्रता से, मुख से यह वचन सुना दिजे।
तुम होकर उऋण सब तरह से, जिन भाषित तप संयम कीजे ॥

दो.— सुने वचन जब नारके, गया कलेजा कांप।
राजा को इस बात का, हुआ घोर सन्ताप ॥

चौ.— उड गये अकल के सब तोते, नृप दिल में अति उदास हुआ।
बस फंसा वाम के जाल भूप वन, आर्तध्यानी निराश हुआ ॥
फिर दीर्घ श्वास लेकर बोला, 'अच्छा' उपाय यह करदेंगे।
अब जावो तुम निज महलों में, हम ताज भरत सिरधर देंगे ॥

दो— दशरथ मन में सोचता मुश्किल बनी अपार।
इधर कूआ खाई उधर, पडे किस तरह पार ॥

गाना नं. १५ (दशरथ का विचार)

आज मुझ को किस तरह, धोका दिया इस वामने।
कैसे कहुं अधिकार तज दे, राम सुत के सामने ॥१॥
सर्प के मुख में छछूंदर, खाय या छोडे उसे।
हाल वह ही कर दिखाया, आज मेरा वामने ॥२॥
छीन हक मैं राम का, कैसे भरत सुत को देऊं।
कर दिया हैरान इस बेमेल, अनुचित कामने ॥३॥

वचन को टारूं नहीं जो, आत्मा का धर्म है।
कर दिया बे हाल मुझको, इस करज के दाम ने ॥४॥
तोड़ दूं व्यवहार सारा, न्याय कैसे छोड़ दूं।
प्रसिद्ध हम सब को किया, दुनियां में जिस सुतरामने ॥५॥
तीर बीन छलनी किया, मेरा कलेजा नार ने।
अब 'शुक्ल' मैं क्या करूं, युक्ति न आती सामने ॥६॥

दो.— सोच फिकर में इस तरह, हुआ भूप लाचार।
इतने में आकर झुके, चरण न पद्म कुमार॥

चौ.— आ नमस्कार की चरणों में. फिर मुख पर नजर टिकाई है
बैठे कुछ आज उदास भूप, सब चमक दमक मुर्झाई है।
यह देख पिता का हाल राम का हृदय कमल मुर्झाया है।
दो हाथ जोड नम्रता से, यों शीतल वचन सुनाया है।

दो. (रामचन्द्र)-कारण आर्तध्यान का, बतलाओ महाराज।
विकट समस्या आ गई, कौन सामने आज॥

चौ (,,)-कौन सामने आज आपके, मन में बडा फिकर है
आज्ञा कर दई भंग किसी ने, या भय और जबर है।
शूर वीर रणधीर आपकी, जाहिर तेग समर है।
कौन फिकर है पिता आपको, जब तक राम कुमर है।

दौड— भेद दिल का बतलावो, जो आज्ञा हो फरमावो।
जन्म तुम घर लीना है, पिता रहे जो दुःखी फे
धिक्कार मेरा जीना है॥

दो. (दशरथ)-बेटा तेरे वचन सुन, मिला मुझे आराम।
जैसा तेरा नाम है, वैसा ही शुभ काम॥

चौ.— अय! बेटा मैं बड़े बड़े, संग्रामों में न घबराया था ।
इन भुजबलों से शूरवीर, योद्धों का मान घटाया था ॥
अब उल्ट फेर एक आन पड़ा, कोई रास्ता मुझे न पाया है ।
और उसी दुःखने अय पुत्र, मेरा यह हाल बनाया है ॥

दो.— खान पान भाता नहीं, उड गये मेरे होश ।
सोच रहा तजवीज मैं, बैठा यहां खामोश ॥

छं— कैकेयी रानी का, जब था, स्वयम्बर मंडप रचा ।
पहिनाई वरमाला मुझे, तब घोर युद्ध वहां पर मचा ॥
तीर खा मम सारथी, धरणी गिरा मुर्झाय के ।
रानी बनी तब सारथिन उस घोर युद्ध में आय के ॥
शत्रु भगे मैदान से सब, रण विजय मैं कर लिया ।
देख पराक्रम हो प्रसन्न रानी को था तब वर दिया ॥
वचन कर रक्खा था, मेरे, पास वर मांगा अभी ।
जिव्हा नहीं आगे को चलती, कैसे बतलाऊं सभी ॥
राज देवो भरत को मांगा है, वर यह दुःख मुझे ।
ऋण मेरा उतरे नहीं, पुत्र मैं बतलाऊं तुझे ॥

दो.— मन में बडी उमंग थी, लेऊं संयम धार ।
इस झगड़े ने आन कर, किया मुझे लाचार ॥

चौ.— क्षत्रिय अपना वचन सदा, सब पुरी तरह निभाता है ।
महाशूर वीर नहीं हटे कभी, चाहे अपने प्राण लगाता है ॥
कैसे करूं वचन पूरा अब, यही मैं ध्यान लगाता हूं ।
यहां बैठा दुःख में लीन हुआ, इस जीने से घबराता हूं ॥

दो. (राम)-राज्य न कारी चीज पर, इतने हैं हैरान ।
वर देने को हे पिता, मांगो हाजिर प्राण ॥

गाना नं. १६ (रामचन्द्र)

पिता माता का कर्जा, सिर से तारनाजी ॥ स्थाई
तुम गल जिस पर माला पाई, फिर दल में आ जीत कराई
इस से वढ कर और कोई उपकार नाजी ॥१॥
विपत् समय में करी सहाई, वडी मात की शूरमताई
जो मांगे दो जरा करो, तकरार नाजी ॥२॥
खिला आज यहा चमन हमारा, कृपा माता की करो विचारा
धन्य कैकेयी मात सर्व, दुःख टारनाजी ॥३॥
क्षत्रिय का निज कर्म यही है, वचन न तोडे धर्म यही है
हक बेहक का करो, आप इस रार नाजी ॥४॥
पिता आपने वचन दिया है, राज्य मात ने मांग लिया है।
लिये भरत के मुझे, खुशी का पार नाजी ॥५॥
भरत राम दो नहीं पिताजी, क्या नाचीज है ताज पिताजी।
जैसे मस्तक चक्षु, इन्हें विचार नाजी ॥६॥
पहिले भरत को राज तिलक दो, फिर जिन दीक्षा में निज दिल दे
शुक्ल ध्यान निर्विघ्न, मोक्ष पद धार नाजी ॥७॥

दो. (दश.)-शाबास मेरे सुत के हरी, विनय वान रणधीर।
तृषातुर को अय कुमर, प्याया शीतल नीर ॥

चौ. (,,)-ग्रीष्म अन्त श्रावण जैसे, या जैसे द्वीप समुद्र में।
शशि चकोर को सुख दायी, या औषधी रोग भगंदर में ॥
जैसे श्री जिन धर्म जीव को, सुख अनन्त दिखलाता है।
सच ऐसे मुझ को सुखदायी, तू पुत्र राम कहलाता है ॥

दो.— उसी समय भूपाल ने, किया एक दरबार।
मंत्रीश्वर बुलवाय कर, करने लगे विचार ॥

चौ. (दश)-घडी पहर निष्फल मुझको, वर्षों की तरह दिखाते है ।
अब राज तिलक दे भरत पुत्र के, सिर पर ताज टिकाते है ॥
तुम यथा योग्य सब तैयारी, करने में अब न देर करो ।
व्यवहार सभी यह ठीक बना, स्वतंत्र हमें भी फेर कर ॥
यह नियत सभी कुछ हुआ, आज बस रानी का वरा देते हैं ।
सुत भरत अयोध्या पति बना, अब हम जिन दीक्षा लेते हैं ॥
है यही सम्मति रामचन्द्र की, भरत भूप होना चाहिये ।
और ऐसे पुत्र सुपुत्र के लिये, धन्यवाद देना चाहिये ॥

दो.— राज कुमर प्रस्ताव सुन, बोले भरत कुमार ।
उदक विलोने से कभी, निकला है क्या सार ॥

दो.-(भरत) माता को मैं क्या कहुं, मुझे न चाहिये राज ।
चारित्र आपके संग लूं सारूं आत्म काज ॥

चौ.(,,) अनुचित शब्द कोई माताको, कहना महा असभ्यता है ।
और आश्चर्य में चकित हुआ; दिल मेरा बडा धडकता ॥
क्या यही एक वरथा दुनिमां में, जो माता ने मांगा है ।
जो परम धर्म का मर्म शर्म, हक दोनों को ही त्यागा है ॥

दो. (भरत) सरल स्वभावी पिताजी, तुम भोले भन्डार ।
असुरों को भी न मिला, त्रिया चरित्र पार ॥

चौ (,,) मोह कर्म के वशी भूत हो अपना आप भुलाती है ।
और पुत्र के हित के कारण, अपना सर्वस्व लगाती है ॥
रोना जो इन्हें नहीं आवे तो, नेत्रों को लब लगाती है ।
और फाड गलारो बुरा ढंक, कर सम वेदना दिखाती है ॥
वन में न सिंह से भयखाती, घर मुषक से दूर जाती हैं ।
जा चढ विकट पवत ऊपर, घर देहली से दहलाती है ॥

निज पति पुत्र को आप मार औरों के दोष लगाती है
फिर करें अग्नि प्रवेश और, आंखों से नीर वहाती है

दो. (भरत)-करना चाहिये था आपको, दीर्घ दृष्टि से विचार
व्यवहार न जिसका शुद्ध रहे, विगड जाये संसार ॥

चौक (भरत)-कुछ तो सोच विचार करो, यह सूर्यवंश कहाता है
वस अनुचित कोई काम यहां पर रंचक नहीं समाता है
क्यों मर्यादा सवतोड कीर्ती, पानी बीच वहाते हो।
श्री रामचन्द्र का ताज मुझे दे, जग में हंसी कराते हो
यदि करे नार से नरमाई उतना ही सिर पर चड़ती हैं
नागिन को जितना दूध मिले, विष उतना अधिक उगलती
हाथ कंकन को आरसी क्या, प्रत्यक्ष सभी दिखलाता हूं
इस राज के वदले मुझे क्षमा दो, चरणन शीश नमाता

दो.— दशरथ मन में सोचता मुश्किल हुई अपार।
राज्य लेने से भरत ने, साफ किया इन्कार ॥

गाना नं. १७ दशरथ का भरत पुत्र से कहना

सव तरह से समझ रक्खा, भरत तुझ को मैं सयाना था
इस तरह साफ इन्कारी, वनेगा यह न जाना था ॥१
वचन पहिला ही जव हमने, सभा अन्दर उचारा थ
सोचकर सार उसका, अय कुमर हृदय जमाना था ॥ ॥२
ठीक तूंने कहा सो भी, किन्तु नहीं समय को सोचा
गया जो छूट कर से तीर, उसको क्या जिताना था ॥३

दो (दशरथ)-वेटा अव तुम मत करो, मुझ प्रतिज्ञा भंग।
रानी को था वर दिया, जव जीता था जंग ॥

पिता का धर्म बचाओ, सिर पे ताज टिकाओ ।
जल्दी कर के दिखावो, होवे दुःख सब दूर ॥२॥
तुमने हुक्म यह टाला, फिर कहां संयम पाला ।
यह क्या मुख से निकाला, होवो गुस्से में चूर ॥३॥
तू रण धीर शूरा, मेरा हम दर्दी पूरा ।
बेशक राज यह कूडा, धारो हो मजबूर ॥४॥

दौड— चलो अब देर न लावो, तख्त पर टिकावो ।
खुशी सब का मन होवे, राजतिलक मेरे करसे
तेरे मस्तक पर होवे ॥

दो (**भरत**)-क्यों करते हो हर घडी, भ्रात मुझे मजबूर ।
राज ताज शोभे तुम्हें, मैं चरणों की धूर ॥

चौक (**भरत**) आपके होते हुवे करूं मैं, राज्य बडा नालयाक हूं
निश्चय हूं गुण हीन पिता माता, सब को दुःख दायक हूं ।
लाख कहो चाहे क्रोड हर समय, मैं तो यही पुकारूंगा
श्री राम के होते हुवे कदापि, राज ताज नहीं धारूंगा ।

दो.— दशरथ का सिर डोलता, युक्ति सोची राम ।
चक्र में आया भरत बना समझ अब काम ॥

चौ. (**राम**) इस के मुख निकल चुका, नहीं राम सामने राज्य ।
तो पुरी अयोध्या छोड चलूं, बस सैर अभी सामान करूं ।
पीछे सब राज कार्य भरत, स्वयं आप कर लेवेगा ।
येही एक ढंग निराला है, बस पिता वचन वर देवेगा ।

दो.— मन में खूब विचार कर, बोले राम कुमार ।
पिता आपका भरत सुत है, विनयी आज्ञाकार ॥

चौ.(राम) मेरे होते राज्य भरत ने, करना नहीं पसंद किया ।
फिर सोच समझ कर और एक, हमने ऐसा प्रबन्ध किया ॥
अपने वचनों का पास भरत को जो निकले कभी न तोडेगा ।
मेरे जाने के बाद करेगा राज, हुक्म नहीं मोडेगा ॥
हे पिता ! आपका ऋण उतरा, यह खुशी मेरे मन भारी है ।
अब जाता हूं बन सैर आज, लेवो प्रणाम हमारी है ॥
इस चरण रज निर्गुणी राम के, हाथ शीस पर धर दीजे ।
मैं सेवा न कर सका, आपकी क्षमा दोष सब कर दीजे ॥

दो.— रामचन्द्र के जब सुने, दशरथ नृप ने बैन ।
मूर्च्छित हो धरणी गिरा, नीर बहाता नैन ॥

चौ.— झट गिरा भरत आ चरणों में, नेत्रों से नीर बहाता है ।
हा खेद निकल गया क्या मुख से, गद्गद् स्वर अति पछताता है ॥
अब हो सचेत दशरथ राजा, दुःख सागर बीच समाया है ।
श्री राम ने जाकर माता के, चरणों में शीश झुकाया है ॥

दो (राम) माता मेरी लीजिये, चलत समय प्रणाम ।
साधन चौदह बर्ष में, होगा बन का धाम ॥

छं— जब मात के चरणों झुका, पांचों ही अंग निमाय कर ।
मानिंद चंपक बेल झट रानी गिरी मुर्झाय कर ॥
कुछ चेत जब मन को हुआ, सुत राम से कहने लगी ।
और अश्रुधार उस दम नेत्रों से बहने लगी ॥

दो. (कौसल्या) दुःख दाई तूने कहा, शब्द विरह का आन ।
बिना मौत मारा मुझे, लगा कलेजे बाण ॥

चौ (,,) लगा कलेजे बाण रही, शक्ति मेरे बदन में ।
अन्धकार हो जाय बिना तेरे, सब राज भवन में ॥

देख तुझे सुखकन्दचन्द, खुश रहूं हमेशा मन में।
हरगिज नहीं जाने दूंगी, पुत्र मैं तुझ को वन में॥

दौड़— मेरा तू एक कुमर है, छोड़ कर चला किधर है।
मरे रो रो कर मइया, बिना विचारे किया कामतैंने
क्या कुमर कन्हैया॥

दो (राम) जान बूझ कर मात तूं, क्यों बनती अनजान।
यहां रहने से न रहे, कुल का गौरव महान्॥

छं (राम) राज्य मेरे सामने भाई भरत करता नहीं।
ऋण उतारे बिन पिता का, भी हमें सरता नहीं॥
तात प्रतिज्ञा होवे पूरी, सभी मम जाने से।
जैसे कलह उपशम बने, माता जरा गम खाने से॥
तन की खातिर धन तजो, दोनों के तज रख प्राणने।
धर्म की खातिर तजो, तीनों कहा जिन राजने॥
आबरू तन राज दौलत, सब हमारे पास हैं।
बस यह अलौकिक धर्म कारण ही बनों का वास हैं॥
प्रसन्न होकर मातजी, आज्ञा मुझे दे दीजिये।
सैर करने सुतगया यह, ध्यान मन धर लीजिये॥

दो (कौसल्या) अनजान पुत्र मैं हूं नहीं, रहा जो यों बहकाय।
छइया मइया से तेरा, विरह सहा नहीं जाय॥

छं (,,) परभव मुझे पहिले पहुंचा, कर फेर वन में जाइये।
उपकार कर मुझ पर कुमर, भारी यह दुःख मिटाइये॥
खेद अति माता का तू ने, ख्याल कुछ भी न किया।
दुःख सहा जिसने अतुल, और दूध है जिसका पिया॥

वेशक पिता का फिकर भी, तुमको मिटाना चाहिये ।
किन्तु मात का भी अय कुमर, दिल न दुखाना चाहिये ॥
या तो कर मेरा भी कहना, या किसी का भी न कर ।
क्या कहुं कैकेयी को जो, आज यह मांगा है वर ॥

दो.-(राम) शूरवीर की तू सुता, मत कायर वन मात ।
तूं ही वतलादे मुझे, वने किस तरह वात ॥

चौ-(,,) तू ही वतला हमें आज, ऋण कैसे पिता उतारेगें ।
इस झूठी दुनियां को तज कर, कैसे शुभ संयम धारेगें ॥
एक यही उपाय है वस माता, जिससे सव कार्य सिद्ध वनें ।
वर हो कैकेयी माता का, और पिता भी जिससे उऋण वनें ॥

दो. (कौशल्या)-कहना तेरा ठीक है, क्या वतलाऊं लाल ।
हाल वही वतलायेगी, जिस फैलाया जाल ॥

चौ(कौशल्या)-यह वर नहीं मांगा पिछले भवकी, कैकेयी मेरी दुश्मन है ।
क्यों कि मुझको दुःख देनेमें, ही मानों उसको खुशमन है ॥
यह अच्छा था उसको वर में, मेरी ही जान मांग लेती ।
पर राज खोस कर विरह, पुत्र का यह मुझको न दुःख देती ॥
हा! कैसा जाल विछाया जिसका, सुलझाना ही मुश्किल है ।
अफसोस जात औरत की होकर ऐसा जिसका संगदिल है ॥
देना किसने लेना किसने, फिर क्यों दखल हमारा है ।
तूं दुःख भोगे वन में जाकर, सुत मुझको नहीं गवारा है ॥

दो (राम) मात वड़ों को चाहिये, होना अति गंभीर ।
जैसे गहन समुद्र में, नहीं उछलता नीर ॥

चौं (राम) निज पर का यह ख्यालमात, औदार चित्त नहीं लाते हैं ।
यदि धर्म हेतु कोई पडे काम तो, खेल जान पर जाते हैं ॥

तू राम को भरत, भरत को राम, समझ अपने दिल में मात
यह राजपाट सब रहे यहां, एक धर्म आत्मा संगजाता
जब मात कैकेयी ने रण में, पराक्रम अपना दिखलाया था
मांगो जो मरजी खुश होकर, राजाने वचन सुनाया था
फिर मात कौनसा दोष कहो तो, पिता कैकेयी माई का
जो राज ताज न धरा शीस, पर खाम ख्याल एक माई का

दो (राम) दूर पिता का गम करें, कर्तव्य अपना मात।
अखिल शुभ फल सोच कर, धरो शीस पर हाथ॥

❀ रामचन्द्र और कौशल्या का प्रश्नोत्तर रूप गाना ❀

तर्ज—लावणी —

राम— माता मुझको जाना है अमर जरूरी।
क्या कहूं हाल यह बनी आन मजबूरी॥
मेरी मात सोच कुछ बहुत विचारा है।
कर्त्तव्य पालन के लिये, मात वनवास हमारा है॥टेर
अयि माता धरो मन, धीर नहीं घबराना।
बिन धर्म श्री जिन, नाशवान जग माना॥
दुःख भोग रहा मोह के, वश सभी जमाना।
धर ध्यान मुनि सुव्रत, स्वामी चित लाना॥
मेरी मात जन्म तेरे उर धारा है।
कर्तव्य पालन के लिये मात वनवास हमारा है॥१॥

कौशल्या- अय पुत्र ! फेर तैंने वही शब्द सुनाया।
गया निकल कलेजा जी जामा थर्राया॥
आंखों के तारे बेटा गुण सुख धाम।
लगे कलेजे बाण पुत्र मत ले जानेका नाम॥टेर॥

हे पुत्र ! बता कैसे दिल मेरा डरेगा ।
कर याद बाद तेरे मम, हृदय फटेगा ॥
वर्षों के समान एक क्षण, पल मेरा कटेगा ।
कैसे चौदह बर्षों का, काल घटेगा ॥
अय पुत्र बता कैसे, बचेंगे प्राण ।
लगे कलेजे बाण, पुत्र मत ले जानेका नाम ॥२॥

राम— अय माता ! वास नहीं चाहता मन बस्ती का ।
गया निकाल बाहर नहीं, छिपे दांत हस्ती का ॥
यही वक्त है इकमाता अब, धैर्य धारण का ।
आराम नहीं चाहता हूं, अत्र मैं तन का ॥
है माता ख्याल एकासिर्फ पिता के ऋण का ।
मुझ को नहीं बिल्कुल, साधन में भय बन का ॥
है लिये धर्म के तुच्छ, मेरी जिन्द तिनका ।
फिर ध्यान कहां है, राजपाट और धनका ॥
मेरी माता ख्याल कहां गया तुम्हारा है ।
कर्त्तव्य पालन के लिये मात बनवास हमारा है ॥३॥

कौसल्या- हर बार कुमर दिल मेरा, मति दुखावे ।
पति धारें संयम, और तूं बन को सिधावे ॥
मेरे पुत्र मैं दिल कैसे, थामूं कर ध्यान ।
तेरा कहना सहज, कलेजे मेरे लगता बाण ॥
क्यों सहे अतुल दुःख, बेटा, बाले पन में ।
तेरे बिन घोर अंधेरा, हो महलन में ॥
गया उछल कलेजा, रही न सत्या तन में ।
न रुके वह रहा जल, झरना नयनन में ॥

तोते चश्म की मानिन्द, तूने मोह तजा तमाम ।
लगे कलेजे वाण, पुत्र मत ले जाने का नाम ॥३॥

दो. (राम)-माता छोटा देख कर, मन अपने मत भूल ।
छोटा बच्चा सिंह का, मारे गज स्थूल ॥

चौ. (राम)-छोटासा वज्र बड़े बड़े, पर्वत भी तोड़ गिराता है ।
अंकुश क्या देखो छोटासा, हस्ती को वश कर लाता है ॥
अंधकार का नाश करे दीपक, या रवि जरासा है ।
मैं क्षत्राणीका शेर बबर, माता दिल धरो दिलासा है ॥

दो.— छुटे वाण ज्यों धनुषसे, त्यों शूरवीर की बात ।
वापिस फिर लेते नहीं, जैसे दिन गत रात ॥

दो. (राम)- रवि शशि सागर टेर, व्योम न दे अवकाश ।
प्रण से माता मैं न डरूं, जाय करूं वनवास ॥

चौ. (राम)-शूरवीर का पुत्र नहीं, दुनियां से दहलाता हूं ।
जन्म लिया तेरे माता, मैं क्षत्रिय कहलाता हूं ॥
मरने का नहीं भय मुझको, प्रण का जितना खाता हूं ।
रघुवंशिन को आज नहीं, वट्टा लाना चाहता हूं ॥

गाना नं. १९ (राम का कौशल्या से कहना)

मुझे माता वनवास, जाना पड़ेगा ।
वचन यह पिता का, निभाना पड़ेगा ॥१॥
नही आती युक्ति, नजर कोई दूजी ।
अय माता तुझे मन टिकाना पड़ेगा ॥२॥
वनों का यह क्या दुःख चाहे जान जावे ।
जो प्रण है पिता का, निभाना पड़ेगा ॥३॥

पिता ऋण न उतरे, धर्म कैसे हारूं ।
यह भव भव में दुःख फिर उठाना पडेगा ॥४॥
क्षमा दोष करके, धरो हाथ सिर पर ।
कहो 'पुत्र जा बन' सुनाना पडेगा ॥५॥

गाना नं. २० रामचन्द्र और कौशल्या का प्रश्नोतर रूप

तर्ज-लावणी—

यह जवां नहीं बेटा मेरे इस मुख में ।
किस तरह कहूं छोना, जाओ वन दुःख में ॥
मेरे लाल अक्ल के तोते उडे तमाम ।
लगे कलेजे बाण कुंमर मत ले जाने का नाम ॥टेर॥
आंखों का तारा, जान जिगर से प्यारा ।
कभी आज तलक में किया न तुझको न्यारा ॥
गुलवदन चांद का टुकड़ा राज दुलारा ।
पुत्र ! माता को दुःख सागर में डारा ॥
मेरे लाल शुक्र क्यों छोड़ चले वनधाम ।
लगे कलेजे बाण, पुत्र मत ले जानेका नाम ॥१॥

राम— लीजो माता प्रणाम झुकाऊं सिर को ।
तजता हूं चौदह वर्ष तलक इस घर को ॥
मेरी मात करूं वनवास गुजारा है ।
कर्तव्य पालन के लिये मात वनवास हमारा है ॥२॥
है विनयवान मम भ्रात भरत सुत तेरा ।
उठ गया समझ यहां से अन्न पानी मेरा ॥
मानिन्द पंछी दुनियां का रैन वसेरा ।
वही शुक्ल मनुष जिसने नहीं गौरव गेरा ॥

मेरी मात धर्म ही–एक सहारा है —
कर्तव्य पालन के लिये मात वनवास हमारा है ॥३॥

दो. (राम)-माता पुत्र की लीजिये, हृदय से प्रणाम ।
नीरस मोह को त्याग कर, कीजे आत्म काम ॥

छं— पीठ फेरी राम ने, इतने में सीता आगई ।
पकड लगा हृदय सासुने, गोद में बैठा लई ॥
नेत्र जल वर्षा से अति, सीता को मानों तर किया
चहुं ओर से आपत्तियों ने, जैसे आकर घर किया ।
रोक मन को थाम दिल की, वात तब कहने लगी
अव्यक्त और गद् गद् शब्द, स्वर धार जल वहने लगी

दो. (कौशल्या)-क्यों वधु शृंगार सब, तनसे दिये उतार ।
नमस्कार आकर करी, हुई किधर तैयार ॥

चौ (कौशल्या)-हार गले से लालों का, किस कारण तैंने उतार दि
क्यों सच्चे मोती हेम जडित, साडी को आज विसार दिय
नजर नहीं आता दामन जो, जवाहरात से जडा हुअ
वह कहां दो तर्फी मस्तक खींचे, था चन्द्रमा चढा हुआ
कहां पायजब नेपुर झुमके, हीरे जिनमें थे जड़े हुवे
मन मोहन माला पचरंगी, दाने जिनमें थे अडे हुवे
निर्मल व्योम शशि जैसे तारागणमें दिखलाता था ।
ऐसे ही गुलवदन तेरा मुख, गहनों से मुस्काता था

दो. (सीता)-क्या वताऊं लाऊं मैं तुम्हे, माता मुखसे भाप ।
जला हुआ जो दूध का, फूंक लगाता छास ॥

छं (सीता)-वालपन में भ्रातकी, मैंने जुदाई है सही ।
फेर विद्याधर पिता को, लेगया गिरीपर कहीं ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible] तू भी वन जाय, फेर मैं कैसे करूं गुजारा ।
दुख सागर में लीन, नैनों से बहे [illegible] ॥
[illegible] मैं कहुं बात, कितने [illegible] ।
[illegible] भी न कोई देता, नर जाऊं मार कटार ॥

गाना नं. २१ कौशल्या विलाप

कर्म हैं खोटे मेरे, आंसु बहाना हो गया ।
पुत्र वधू दोनों चले, सूना जमाना हो गया ॥१॥
क्या कहूं तकदीर आगे, पेश कुछ चलती नहीं ।
रात दिन पुत्र जुदाई, जी जलाना हो गया ॥२॥
तू वधू मत जा वनों में, मान ले मेरा कथन ।
राजधानी महल सब, गम का खजाना हो गया ॥३॥
घोर दुःख वन का, सिया तुझ से सहा नहीं जायगा ।
मानती नहीं क्या अशुभ, कर्मों का आना हो गया ॥४॥

(सीता)-पति देव वन वन फिरें, मैं रहूं बैठ आवास ।
आज्ञा मुझ को दीजिये, नम्र निवेदन खास ॥

गाना २२ (सीता का कौशल्या से कहना)

पति का साथ छोड़ूं, यह मेरे से हो नहीं सकता।
कोई कर्तव्य से चुके तो सुकृत बो नहीं सकता ॥१॥
पति के तन की छाया हूं, कहे अर्धांगिनी दुनियां।
कोई छोडे धर्म अपना तो, वह सुख सो नहीं सकता ॥२॥
है जब तक दम में दम मेरा, करूं सेवा पति की मैं।
लिये परमार्थ जो मरता कभी वह रो नहीं सकता ॥३॥
न इच्छा राज महलों की, तमन्ना है न कुछ धन की।
योग्य सेवा विना परमार्थ, कोई टोह नहीं सकता ॥४॥
झुकाती हूं मैं सर अपना, आपके सास चरणों में।
अपूर्व लाभ अपना ऐसा, कोई खो नहीं सकता ॥५॥

दो कौसल्या- बेशक पतिव्रता सती, पति से प्रेम अपार।
नादान पता तुझ को नहीं, वन में दुःख अपार ॥

चौ (,,) यह कोमल वदन वधू तेरा, मक्खन समान ढल जायेगा।
ज्येष्ठ भाद्रपद की धूपोंसे, दिल घबरायेगा ॥
घोर वडे तूफान नदी. नालों के दुःख का पार नहीं।
हिंसक जन्तु शेर बघेरे चीते हस्ती पार नहीं ॥
तू फेर वहां पछतावेगी, जंगल में सोना धरती का।
जहां नित्य प्रति आर्तध्यान सहेगी, कैसे दुःख वन सर्दी का ॥
मक्खी मच्छर बिच्छु आदि, क्या दारुण भय वहां सर्पों का।
विकट पहाड बनाऊं दुःख मैं, कैसे खूनी वर्षो का ॥
मैं बार बार समझाती हूं, अंजाम सोच इन हर्फों का।
जहां थोडे दिन का काम नहीं, दुःख भारी चौदह वर्षों का ॥
फेर पति का पग बंधन, परदेशों में यह नारी है।
कोमल गुल वदन वधू तेरा, वह कष्ट झेलना भारी है ॥

शोभनीय फल देख तुरत, खग वृक्षों पर छा जाते हैं।
कोई कष्ट न तुम पर आ जावे, यों हम नहीं भेजना चाहते हैं ॥
तेरा जो है पति वधू तो, मेरा वह राज दुलारा है।
एक बिना तेरे सूना लगता, रणवास क्या महल चौबारा है ॥
अतुल विरह का दुःख मुझ को, सुत इन हाथों से पाला है।
फिर और मुझे दुःख देने को, तूने भी झगडा आ डाला है ॥
विना यान न चरण कभी, तैंने भूमिपर रक्खे हैं।
फिर अभी दूध के दांत तेरे, वन दुःख स्वाद नहीं चक्खे हैं ॥
सारी उमर पति की सेवा, जो कोई नार बजाती है।
बस उतना फल एकबार, ससुकी सेवा से भर पाती है ॥
दो. सीता-जैसे बिजली मेघ मैं, मस्तक मणि भुजंग।
तन छाया ऐसे ससु, सियाराम के संग ॥
चौक (सीता)-गृहस्थ धर्म का प्रथम कर्तव्य, जो पतिव्रत धर्म निभाऊंगी
जो कोई आपत्ति पड़ी आन तो, अपनी जान लगाऊंगी ॥
किंचिन्मात्र भय नहीं मुझको, वनचर या और तूफानोंका।
अमर आत्म मरे नहीं, मरना तो जिस्म मकानों का ॥
जलमें डूब नहीं सकती, अग्नि न इसको जला सके।
जो निज गुण ज्ञान आतमाका, शस्त्र न इसको हटा सके ॥
है मिट्टी का यह तन पुतला, मिट्टीमें ही मिल जायेगा।
जो कर्म शुभाशुभ किये, आतमा उसे संग ले जायेगा ॥

गाना नं. २३ (सीता का कौशल्या से कहना)

मुझे घर बार तज वनवास, जाना ही मुनासिब है।
पति सेवा में तन मन को, लगाना ही मुनासिब है ॥१॥
लाज रखनी स्वयम्वर की, मुझे जाने से मत रोको।
सती का धर्म जो कुछ है, निभानाही मुनासिब है ॥२॥

सभी यह महल सुखशय्या, मुझे शूलों की मानिन्द है।
फिरूं वन वन पिया संग तन, सुकाना ही मुनासिब है ॥३॥
पति बन जावे दुःख भोगें मैं, कैसे महल सुख भोगूं।
पति संग जो मिले सुख, दुःख उठाना ही मुनासिब है ॥४॥

दो.— भय उनको कैसे लगे, शील व्रत जिन के पास।
जिस की शक्ति से आ वनें, देवपति भी दास ॥
नमस्कार करके हुई, सीता झट तय्यार।
महारानी पर मानों गिरा, आपत्ति की भार ॥

छं.— आशा निराशा होय रानी, शोक सागर में पडी।
नेत्रों से आंसु वरसते, जसे कि श्रावण की झडी ॥
देखकर यह दृश्य सखीयां, भी सभी रोने लगी।
प्रचारिकायें आंसुओं से, अपना मुंह धोने लगी ॥
बोली सभी कि प्रेम भी, ऐसा ही होना चाहिये।
आगे को ऐसा ही सब को, पुण्य वीज बोना चाहिये ॥
जैसा हर्ष था विवाह में, वैसा हर्ष बनवास है।
है सती पूरी नहीं, छोडा पति का साथ है ॥
सुख अवध के सब तज दिये, एकदम से ठोकर मार के।
सेवा करन को साथ ही, वन में चली भर्तार के ॥

दो.— सीता का है पति से, निश्चय प्रेम अपार।
दुनियां में ऐसी सती, विरली हैं दो चार ॥
धन्य जन्म इसका हुआ, धन्य मात और तात।
धन्य जिसे व्याही उसे, धन्य विदेहा मात ॥
कष्ट बडा वनवास का, भय नहीं लगार।
दोनों कुल उज्वल किये, सीता उत्तम नार ॥

दो.— सीता को समझावने, आया सब रण वास ।
संग अवध की नारियां, आकर बोलीं पास ॥

गाना नं. २४ (सब रणवास और नगर की प्रधान स्त्रियों का सीता को समझाना)

तर्ज-छोडो न धर्म अपना जब प्राण तन से निकले !

सीता न वन में जावो, रहना यहीं भवन में ।
क्यों दुःख सहे तू वन के, बैठी रहे अमन में ॥१॥
मत जा जनक दुलारी, सीता ऐ प्राण प्यारी ।
क्यों व्यर्थ कष्ट सहती, दुःखदायी है वन में ॥२॥
कंकर उपल बडे हैं, कहीं कांटे ही पडे हैं ।
दरियायें जल चढे हैं, गरजे हैं शेर वन में ॥३॥
पैदल का रस्ता भारी, न कोई भी सवारी ।
भूलेगी सुध तुम्हारी, उस धूप की अग्न में ॥४॥
अन्न तक नहीं मिलेगा, भूखी का दिल हिलेगा ।
फल फूल ही मिलेगा, किसी खास ही चमन में ॥५॥

दो.— सुन कर सब ही के वचन, प्रफुल्ल चित सिया नार ।
मृदु मधुर प्रेमालाप से, यों बोली गिरा उचार ॥

गाना नं. २५ (सीता का उत्तर सब अन्तःपुर वासी स्त्रियों और अन्य प्रमुख स्त्रियों से कहना)

तर्ज-छोडों न धर्म अपना जब प्राण तनसे निकले ।

रोंके न आप मुझको, जाऊं मैं संग वन में ।
जहां चरण हो पतिके, वहां ही रहूं अमन में ॥१॥
वहां दुःख नहीं है कुछ भी, जहां होवे प्राण प्यारे ।
उनकी करूंगी सेवा, जाकर के साथ वनमें ॥२॥

कांटे भी फूल बनते, सत्यपथ को धारणे से।
कोमल कली बनेगें, कंकर सुतीक्ष्ण वनमें ॥३॥
कर्तव्य धारणेपर, दुःखों की क्या है परवाह।
दुःख का ही सुख बनेगा, पतिप्रेम हो जो मनमें ॥४॥
करिके हरी द्वीपि भालु, विच्छु व नाग अजगर।
पतिसेवा से भगेंगे, ज्यों अंधकार दिन में ॥५॥
चिन्ता नहीं जिस्म की, पतिव्रत पे होवे अर्पण।
उत्सर्ग देही करके, प्रसन्न हूंगी मनमें ॥६॥

दो.— लक्ष्मण यह वृत्तान्त सुन, रह न सके चुपचाप।
कुछ तेजी में आनकर, ऐसे बोले आप ॥

चौ. (लक्ष्मण) अच्छा वर मांगा माताने, महा भंग रंगमें डाला है।
जो राज ताज दे भरत वीर को, बाहर राम निकाला है॥
पहिले वर भंडारे में रक्खा, अब यह मिसल निकाली।
वर नहीं मांगा माता की, यह भी कोई चाल निराली है॥

दो.— सरल स्वभावी हैं पिता, कपट कारिणी मात।
भरत वीर भी था भला, फंसा वचन बसतात ॥

चौ.— फंसा वचन बसतात, किन्तु मैं देखूं तेज सभी का।
क्या होता है देख रहा था, बैठा हाल कभी का ॥
अफसोस हुआ वर्ताव, देखकर ऐसा आज सभी का।
राज्य राम को देऊं भरत, बालक है, कौन अभी का॥

दौड— जहां तक मेरा दम है, राम को फिर क्या गम है।
नहीं जाने दूं वन में, राम करेगें राज रहूंगा,
मैं सेवक चरणन में ॥

दो.— दहकती अग्नि की तरह, देख अनुज का रोष ।
शीतल बचनों से लगे, तब देन राम संतोष ॥

चौ.(राम)-अय लक्ष्मण कुछ सोच समझ, मन में क्यों रोष बढाया है।
अत्यन्त खुशी का समय आज, यह अपने कर में आया है ॥
मात पिता की आज्ञा पालें, मुख्य कर्त्तव्य हमारा है ।
करें सेवा तन मन से जिनकी, अनुचित क्रोध तुम्हारा है ॥
जैसा राम भरत वैसा, लक्ष्मण या वीर शत्रुघ्न है ।
वचन पिता का करें न पूरा, तो हम सभी कृतघ्न हैं ॥
यह राज खुशी से भरत वीर, को मैं लक्ष्मण ? दे जाता हूं ।
कर्त्तव्य अपना पले पिता ऋण टले, यही दिल चाहता हूं ॥

गाना नं. २५ (रामचन्द्र का लक्ष्मन को समझाना)

तर्ज-लगी लौ जान जानां से तो जाना ही मुनासिब है—

राज्य के वास्ते अपना वचन, हरगिज न हारेंगें ।
करेगें सैर वन वनकी, पिता का ऋण उतारेगें ॥१॥
रोष को दूर कर मन से, सुनो लक्ष्मण मेरे भाई ।
मात कैकेयी के चरणों में, यह अपना शीश डारेंगे ॥२॥
प्रतिज्ञा पालने वाले, हुए सब सूर्यवंशी हैं ।
इसी में जन्म धारा तो, वचन हम भी न हारेंगे ॥३॥
भरत के शीस सोभे ताज, मैं शोभूंगा का वन जाकर ।
पिता शोभें मुनि दीक्षा, जन्म अपना सुधारेंगे ॥४॥
राज्य धन मित्र सुत दारा, मिलें कई वार प्राणी को ।
है दुर्लभ धर्म का मिलना, इसी से तन शृंगारेंगे ॥५॥

दो.— सुना कथन जब राम का, ठंडा हो गया जोश ।
गूढ़ रहस्य को सोचकर, रहे लखन खामोश ॥

मन ही मनमें सोचकर, निजको किया उपशांत ।
कुछ समय भाव को जानकर, बोले अनुज इस भांत ॥

चौ (लक्ष्मण)-मुझे फेर क्या राम खुशी से, राज्य छोड़ वन जाता है।
तो फिर अब खाना अवध पुरी का, हम को भी नहीं भाता है ॥
झगड़ा और बढाकर सब का, दिल भी सिर्फ दुःखाना है।
यदि दूल्हा ही निज सिर फेरे तो, फिर किसका व्याह रचाना है॥

दो.— यही सोच के लखन फिर, गये पिता के पास ।
नमस्कार कर चरण में, कहा इस तरह भाष ॥

दो. (लक्ष्मण)-पानी में मछली सुख चकवा चकवी साथ ।
राम चरण लक्ष्मण वहां, ज्यों रवि साथ प्रभात ॥

चौ. (,,)-पिता मुझे आज्ञा दीजे, मैं राम संग बन जाऊंगा ।
सेवा कुछ होगी भाई की, दुःख में निजशीस उठाऊंगा ॥
ताज मुबारिक भरत वीर को, आपका ऋण उतरा सिर से।
तात मात खुश हम भी खुश, जैसे किसान खुश जल चर से॥
छिन पल विरह राम का मुझ से, पिता सहा नहीं जाता है।
अपूर्व प्रेम स्वाभाविक है, जिस कारण लक्ष्मण जाता है॥
क्षमा करो अपराध सभी, अविनीत पुत्र दुःखदानी का।
केवल एक साथ राम के हैं, आधार मेरी दिलगानी का॥

दो. (दशरथ)-विनय वान मेरे कुमर, नहीं कोई हमारी वात ।
किन्तु रो रो मर जायेगा, बडी तुम्हारी मात ॥

छं— रहने को समझाया बहुत, भूपाल ने हरबार है ।
लेकिन न माना एक भी, सुमित्रा का सुकुमार है ॥
मस्तक झुका कर पिता को, फिर वीर लक्ष्मण चलदिया।
माता सुमित्रा पास आ, प्रणाम चरणों में किया ॥

दो.— माता खुश हो पुत्र के, धरोशीस पर हाथ ।
जाता हूं बनवास में, मात भ्रात के सात ॥

चौ (लक्ष्मण)-हे मात ! ज्ञात है ही तुमको, दुष्कर बिन राम मेरा जीना।
बस कल नहीं पडती दर्श बिना, फिर कहां रहा खाना पीना ॥
मैं तन मन से बनमें भाई का, निशदिन हुक्म बजाऊंगा ।
जहां गिरे पसीना भाई का, वहां अपना रक्त बहाऊंगा ॥

दो. (सुमित्रा)-धन्य धन्य मेरे सुत केहरी, शूरवीर रणधीर ।
निर्मल है बुद्धि तेरी, पान किया मम क्षीर ॥

चौ. (,,)-पान किया है क्षीर मेरा, कर्तव्य पालन कर देना ।
तन बेशक लग जाय किन्तु, नहीं दगा भ्रात को देना ॥
पडे कष्ट जो आन कोई, आगे होकर सह लेना ।
मानिन्द पिता के रामचंद्र, माता सीता को कहना ॥

गाना नं. २५ (सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश)

प्रेम हृदय नहीं जिसके, वह है शत्रु न भाई है ।
प्राण चाहे चले जायें, न छोडे संग भाई है ॥१॥
नाश दुनियां सभी जानों, शेष इस में न कोई है ।
रहने की वही संग में, जिस्म की भी सफाई है ॥२॥
सहारा कष्ट में देना, यह है कर्तव्य भाई का ।
यदि आंखे चुराये तो, लगेगी मुंह पे काई है ॥३॥
करो तन मन से बन जाकर, मेरे सुत राम की सेवा ।
मेरी शिक्षा कुमर तू ने, यहि हृदय जमाई है ॥४॥
रहा अब तक तो तू भाई, चाकर होकर के अब रहना ।
हुक्म सियाराम का लेना, कुमर मस्तक उठाई है ॥५॥

दौड— मिलो जल्दी से जाकर, करो सेवा मन लाकर।
प्रसन्न तन मन है मेरा, बडे भाई की करे सेव
निर्मल हृदय है तेरा, ॥

दो (लक्ष्मण) माता तन मन खुश हुआ, सुने तुम्हारे वैन।
करू मैं सेवा राम की, जैसे मस्तक नैन ॥

चौ (,,) जैसे माली पोदे को, जल देकर के खुश रखता है।
या किसान के लिये समय पर, बादल आन बरसता है॥
ऐसे खुश रक्खुं भाई को, जैसे कि माता फूल खिला।
वह चीज नहीं कोई दुनियां में, जैसा कि मुझ को वीर मिला॥
जब तक जीता हूं भाई को, मैं कष्ट नहीं पहुंचन दूंगा।
पहिले होगी आज्ञा पालन, कुछ मन में नहीं सोचन दूं॥
सब देव खुशी होते हैं, जैसे देख सुमेरु नन्दन वन।
बस ऐसे हम सब को होगा, बन में माता आनंद अमन॥

दो. (लक्ष्मण)-सूर्य वंशी मात मैं, क्षत्राणी का शेर।
अब इस मुख से क्या, कहूं बतलाऊंगा फेर ॥

चौ. (,,)-बतलाऊंगा फेर अयोध्या, जब वापिस आऊंगा।
कष्ट जो होगा सिया राम का, अपने सिर उठाऊंगा॥
तैल बिन्दु सम नाम राम का, जग में फैलाऊंगा।
तब ही मात सुमित्रा का मैं, नंदन कहलाऊंगा ॥

दौड— शीस जब तक धड पर है, राम को कौन फिकर है।
चरण जहां जहा धरेगें, बडे बडे भूपति मात चरणों
में आन गिरेगें ॥

छ— पीठ ठोकी मात ने, सर पर धरा शुभ हाथ है।
फिर जा के चरणन में गिरा, जहां थी कौशल्या मात है॥

सर झुका कर अनुज ने, जो बात थी सारी कही ।
सुन दुःखी रानी हुई, कुछ होश न तन की रही ॥
चेत जब मन को हुआ, लक्ष्मण से यों कहने लगी ।
आंसुओं की धार भी, आंखों से तब बहने लगी ॥

दो॰(कौशल्या)-गोला टूटा गजब का, मेरे ऊपर आन ।
राम संग तू भी चला, जाते नहीं यह प्राण ॥

बहरतवील गाना नं. २७ कौशल्या लक्ष्मण से प्रश्नोत्तर

कौशल्या-बेटा तू भी चला सीयाराम गये,
हो उदय कौन से आये मेरे कर्म ।
मुझे छोड़ अकेली इधर तुम चले,
पीछे पति देव धारेंगे संयम धर्म ॥
पीछे किसका सहारा मुझे है बता,
कैसे थामूं जिगर है मुझे यह भर्म ।
रामचंद्र के संग क्यों तू बन में चला,
नहीं होता है कहने से तू भी नर्म ॥

लक्ष्मण-माता क्षत्राणी होकर तू कायर बने,
यह समझ तेरी मुझको भी भाई नहीं ।
भरत शत्रुघ्न दोनों तेरी सेवा में,
राजधानी व प्रजा पराई नहीं ॥
यह मालूम तुझे बस बिना राम के,
मेरे जिने की कोई दवाई नहीं ।
कैसे तात प्रतिज्ञा हो पूरी बता,
तेने गौरव पे दृष्टि जमाई नहीं ॥

दो (लक्ष्मण)-क्षमा दोष सब कीजिये, चरण नमाऊं माथ।
जाऊंगा मानूं नहीं, मात भ्रात के साथ॥

चौ (,,) छोड़ कहो चाहे लाख मेरा दिल, वनवास के अन्दर है
श्री राम कलंदर समझ मात, लक्ष्मण तो पालतू बन्दर।
दिल डोरी है पास राम के, मरजी जिधर घुमावेगें
एक बिना राम के प्राण मात, मेरे तन में नहीं पावेगें।

दो.— सुन बातें सब अनुज की, रानी मन हैरान।
रहना इसने है नहीं, समझा दिल दरम्यान॥

चौ.— मौन आकृति देख माता की, लक्ष्मण ने प्रणाम किया
श्री रामचन्द्र के पास गये फिर, चरण कमल में ध्यान दिया।
प्रेम भाव से रामचन्द्रजी, सीता को समझाते हैं।
बनवास के दुःख भयानक हैं, सब भेद खोल दर्शाते हैं।

दो. (राम)-अयि सीते मेरी तरफ, जरा कीजिये गौर।
महलों में बैठी रहो, बन खंड में दुःख घोर॥

चौ. (राम)-वन खंड में दुःख घोर, देख भय जान निकल जावेगी
जनकपुरी में मात तुम्हारी, सुन के घबरायेगी॥
कहा मान अय जनक सुता, जाकर के पछतावेगी।
चौदह वर्ष का लम्बा, काल वहां दारुण दुःख पावेगी॥

गाना नं. २८ (रामचन्द्र का सीता को समझाना)

बैठी राजमहल सुख भोगो, वन खंड में दुःख पावोगी।
जहां गर्जत हैं सिंह बघेरे, दारुण दुःख तुफान घनेरे।
शयन क्षमीं का रात अंधेरे, कैसे प्राण बचाओगी॥१॥
ज्येष्ठ भाद्रपद धूप करारी, वर्षा नदी गहन अति भारी।
गिरी गुफा दुर्गम दुःखकारी, देख देख दहलावोगी॥२॥

दो.— सीता का प्रस्ताव सुन, हुए राम लाचार ।
खडे खडे चुप चाप ही, ऐसा किया विचार ॥

चौ. (राम)-सीता से चौदह बर्षों का, विरह सहा नहीं जायेगा।
अब यदि और कुछ अधिक, कहा तो इसका तन मुर्झायेगा॥
पृथक नहीं घन से विजली, या जैसे तन की छाया है ।
भरे स्वयंबर में मुझ को, इसने निज पति बनाया है ॥
है पतिव्रता सती प्रेम, मेरे संग है इसका भारी ।
यावज्जीवन पर्यन्त पति के, शरणागत होती नारी ॥
क्षत्रिय का यह धर्म नहीं, शरणागत को दुःख में डारे।
जिसका लिया साथ उसको, देना सुख दुःख निज सिर धारे॥
फिर बोले अच्छा वैदेही, मन में न सोच विचार करो ।
यदि चलो बनों में खुशी आपकी, या घर में आराम करो॥
सन्तोष जनक सुन वचन सिया ने, अपना शीस नमाया है।
फिर रामचंद्र ने अनुज भ्रात को, ऐसा वचन सुनाया है॥

दो. (राम)-कारण वश मैं तो चला, भाई वन मंझार ।
किस कारण तुम भी खडे, पहले ही तैयार ॥

चौ (राम) संतोष दिलाना मात को, और सावधान होकर रहना ।
तुम अवधपुरी में करो सैर, किस कारण वन का दुःख सहना॥
चौदह बर्ष समय लम्बा, वन का दुःख लक्ष्मण भारी है।
यहां पुरी अयोध्या में झुर झुर, दुःख पायेगी महतारी है॥
और जिनके संग प्राणि ग्रहण किया, वह सब उदास हो जायेगी।
अयभाई लक्ष्मण बिन तेरे, वह कैसे समय वितायेगी ॥
सब राज कार्य साथ भरत के, भाई तूने करना चाहिये।
और तेरे बिन माताओं ने भी, सबरन दिल में धरना है ॥

गाना नं. ३० (राम का लक्ष्मण से कहना)

मत जावो मेरे संग भाई लखन ।।टेर।।
चौदह वर्ष हमें वन में रहना, मान हमारा वीरन कहना।
वह है जंगल वेयावान कठिन ।।१।।
भेस सादगी तनपर धारूं, प्रण किया सो कभी न हारूं।
जर वख्तर में सब, उतारे बसन ।।२।।

दो.— लक्ष्मण ने ऐसे सुने, रामचन्द्र के बैन।
शीस झुका कर जोडकर, लगा इस तरह कहन ।।

चौ (लक्ष्मण)-आज्ञा आपकी न मानूं, मेरा यह दुष्ट विचार नहीं।
किन्तु विरह आपका सहने को, भाई मैं भी तय्यार नहीं ।।
जिस तरह राम वहां लक्ष्मण है, विन राम मेरा नहीं जीना है।
इस पुरी अयोध्या का मुझ को, नहीं भाता खाना पीना है ।।
किसी शून्य चितको समझाने में, निष्फल समय विताना है।
कृपण से कोई करे याचना, तो वहां से क्या पाना है ।।
कर्ण वधिर को सुरताल सहित, निष्फल गायन सुनाना है।
वृथा क्यों अंधे के आगे, नयनों से नीर बहाना है ।।
वस ऐसे ही लक्ष्मणको समझाने में, वृथा समय विताना है।
अब लाख कहो या क्रोड, आप विन मेरा नहीं ठिकाणा है ॥
चलो देर मत करो संग, चलने को मैं हूं खड़ा हुआ।
यह धनुपवाण कर सह शस्त्रों के, वख्तर तन पर पड़ा हुआ ।।

दो. (लक्ष्मण)-आप वनों में भ्रातजी, यदि अकेले जाय।
सेवा में कुछ न करूं, तो मम तात लजाय ।।

दो (राम)-बोले राम अय भाई, जैसी तेरी भी इच्छा है।
क्या समझावे और तुझे, खुद बन बैठा जब बच्चा है।

दो.— सीता लक्ष्मण की हुई, अर्ज सभी स्वीकार ।
अनुज भ्रात तव राम से, बोले वचन उचार ॥

दो. (लक्ष्मण)-क्यों भाई अब मौन हो, करते क्या विचार ।
सब कुछ निश्चय हो गया, खडे सभी तयार ॥

दो.— मातृ भगत श्रीरामजी, भर लाये जल नैन ।
आहिस्ता से लखन को, ऐसे बोले नैन ॥
अब भाई लक्ष्मण सुनो, खास मर्म की वात ।
बिन माता के जगत में, ठोर नहीं दिखलात ॥

छंद— पिता से ज्यादह मात की, औलाद होती है ऋणी
सिद्धांत क्या प्रत्यक्ष अनुभव, पुरुषों से वातें सुर्णी
माता का हृदय शांत बिन है, आत्मा मेरी दुःखी
दुःख दे के माता को कभी मैं, हो नहीं सकता सुखी
माता के उपकारों का बदला, त्रिकाल दे सकता नहीं
निराशकर माता के दुःख का, भार ले सकता नहीं
हो सकेगा जिस तरह, माता की आज्ञा पाऊंगा ।
शांत हृदय कर मात का, फिर आगे पांव उठाऊंगा

दो.— इतना कह श्रीरामजी, गये जहां थी मात ।
हाथ जोडकर चरण में, रख दिया अपना माथ ॥
मातृ भक्त के देख हृदय, माता का हृदय पिगल गया
कौशल्या के हृदय से मानों, मोह एक दम से निकल गया
श्रीराम के सिर पर हाथ फेर, वोली बेटा क्या चाहता है
तु पुण्यवान् सब हृदयों की, मुरझाई कली खिलाता है

दो.— हाथ जोड श्रीरामजी, वोले वचन उचार ।
बडे मात करते सदा, छोटो पर उपकार ॥

क्या नहीं जानती मात, राम एक नाहरनी का बच्चा है।
चाहे यह पृथ्वी उलट जाय, किन्तु हृदय नहीं कच्चा है॥
माता चाहे वज्रका सब, अपना हृदय बना लेवें।
पर बच्चे के रोने से वही, वज्र का हृदय पिंगल जावे॥
माता बिन बच्चों को, इस दुनियां में कोई शरण नहीं।
आपकी कृपा बिन माता, पूरा होगा ये प्रन नहीं॥
बच्चा हूं तेरा अभी फरसपर, रूसके लेट लगाऊंगा।
अभी देखना फिर माता मैं, तुझसे आज्ञा पाऊंगा॥
तुम मेरी हितकी कहते हो, इस बातको खुब जानता हूं।
उपकार तेरा नहीं दे सकता, इस बालको माता मानता हूं॥
ऊंच नीच सब सोचकर, बोली वचन उचार।
माता विदुषी के वचन, थे शुभ समय अनुसार॥

तुम तीनों की करलई, परीक्षा मैं बहु विध।
सर्वज्ञ देव की कृपा से, होगा कार्य सिद्ध॥
आपस में मिल जुल के रहना, एक दूजे का हित चाह करके।
सीता को कभी अकेली ना तजना, गफलत में आ करके॥
विश्वास नहीं किसीका करना, चाहे सौ सौ बात बनावे कोई।
ना गुस्सा लक्ष्मण पर करना, चाहे नुक्सान हो जाय कोई॥
सीता को हरदम खुस रखना, इसको न उदासी आवे कभी।
विश्राम वहां पर कर देना, सीता की इच्छा होवे जभी॥
निद्रा समय एक का पहरा, नियमबद्ध होना चाहिये।
दोनों को क्रम से आपस में, जागना और सोना चाहिये॥
आवश्यक प्रतिक्रमण का, कभी समय चुकाना ना चाहिये।
सामायिक संध्या नित्य कर्म, का समय भूलाना ना चाहिये॥

कम खाना और गम खाना, इनको हृदय धरना चाहिये ।
और सभी कार्यों से पहिले, परमेष्ठि का शरना चाहिये ॥
तीनों तुम यहां से जाते हो, तीनों खुस हो वापिस आना।
यदि इस में त्रुटी होगी तो, मुझको न कोई मुख दिखलाना॥
कोई कष्ट आन कर पडे तो, बन गंभीर वीरता से सहना।
गौरव हीनता की बातें, मुख से कभी भुल नहीं कहना॥
मैदान क्षत्रियों का घर है, जंग विग्रह से नहीं डरना है ।
चाहे संसार उलट जावे, पर पीछे कदम न धरना है॥
बेटा मेरी कुक्षी और, धारों को नहीं लजा देना ।
न्याय नीति दया धर्म देश, कुछ सब का भाग जगा देना॥
सब गुण सागर जगत उजागर, बहित्तर कला के माहिर हो।
क्या शिक्षा देऊं बेटा तुम, खुद शुर वीर जग जाहिर हो॥
नर्क कुंड पर नारी और, पर पुरुष दुखों का सागर है ।
शुक्ल अन्त्य शिक्षा मेरी, शुभ सदाचार सुख आगर है॥
मूल बिनें शुद्ध प्रेम ऐक्यता, सब सुख इस में समा रहे ।
स्वाधीन सभी सृष्टी उसके, यह त्रक जिस हृदय जमा रहे॥
मै पुत्रवती हूं समझ लिया, मैंने सब आज परीक्षा से ।
पुण्य प्रबल तुह्मारा होगा, बेटा मेरी शिक्षा से ॥
मेरी सेवामें भरत पुत्र है, आप ना फिकर कोई करना ।
इसभव परभव सुखदाता है, बेटा परमेष्ठिका शरना ॥

दो.— सार भरी शिक्षा सुनी, माता की जिसवार ।
राम लखन सीता हुवे, तीनों खुशी अपार ॥

दो.— रंग ढंग सब सोच के, हुए राम तैय्यार ।
शोकाकुल चहुं ओरसे, आ पहुंचे नरनार ॥

चौ.— वस्त्र शस्त्र पहिन रामने, धनुषबाण निज हाथ लिया ।
इस कष्ट समयमें संग राम के, लक्ष्मणजीने प्रयाण किया ॥
फिर माता कैकेयी के चरणों में, तीनोंने सिर नाया है ।
और अन्त दिलासा दे सबको, श्री रामने कदम बढ़ाया है ॥

दो.— छोड़ राज और ताज को, चले राम वनवास ।
नरनारी सब ले रहे, लंबे लंबे श्वास ॥

चौ.— जब चरण रामने बाहर किया, सहसा सन्नाटा छाया है ।
तब पत्थर दिल नरनारी के भी, जल नेत्रोंमें आया है ॥
व्यापार शीघ्र सब बन्द हुआ, क्या दफ्तर और कचहरी है ।
नयनों की माला खड़ी हुई, चले राम करी न देरी है ॥
मंत्री और राज कर्मचारी सब, पीछे हैं हुज्जूम बडा ।
और आगे का कुछ पार नहीं, सब जन समुह अति अड़ा खड़ा ॥
सब नत मस्तक हो खडे हुवे, तन मन से सेवा चाहते हैं ।
दक्षिण कर से कर स्वीकार राम, आगे को बढ़ते जाते हैं ॥
बाजार दो तर्फी छज्जों पर, अगणित माताएं बहनें खडी ।
नयनों से आंसु बरस रहे, जैसे श्रावण की लगी झडी ॥
यह दृश्य देख कैकेयी रानी का, हृदय कमल उछलता है ।
बस मौन चित्र की तरह खडी, मुख से नहीं बोल निकलता है ।

छं.— आश्चर्य सीता की खूशी को, देखकर नर नार हैं ॥
मन ही मन में कैकयी, को दे रहे धिक्कार हैं ॥
महा जन समुह नर नार का, सिया राम संग चलने लगा ।
तब देख कौशल्या-कुमर, यह हाल यूं कहने लगा ॥

दो. (राम)-नेत्रों से जल बहा रहे, बनते क्यों नादान ।
निष्कारण तुम खुशी में, लाये आर्त्तध्यान ॥

चौ. (,,)-क्यों यह आर्त्तध्यान, सैर मैं तौ बन को जाता हूं।
तुम जावो वापिस अवध, पुरी में सब को समझाता हूं ॥
कर्त्तव्य पालन करो सदा, हृदय से यह चाहता हूं।
है प्रजा पुत्र दशरथ की, मैं भी सुत कहलाता हूं ॥

दौड़.— रक्खो सभी एकता, ध्यान शुभ सत्य विवेकता।
एक दिन वह आवेगा, इसभव परभव लाभ गौरव,
दुनियां में छा जावेगा ॥

दो.— ग्राम धर्म की व्यवस्था, शुद्ध करो सब कोय।
नगर धर्म कहा दूसरा, प्रेम सभी संग होय ॥

चौ.— धर्म तीसरा राष्ट्र लिये, अर्पण सब कुछ करना चाहिये।
यदि कोई विपत्ति आ जावे तो, देशके हित मरना चाहिये ॥
चौथे पाखण्ड को काट छाट, व्रत रक्षा करना अच्छा है।
जो भी इनसे विपरीत चले, वह निर्बुद्धि या बच्चा है ॥
निज कुल के गौरव को देखो, यह धर्म पांचवा सुखदायी।
सब त्यागी और गृहस्थ का, इसीमें समावेश दोनो का ही ॥
समुह धर्म छठ्ठा बतलाया, क्यों कि इसमें शक्ति है।
जिसने इसको कर दिया भंग, समझो उसकी कमबखती है॥
फिर संघ धर्मका पालन करना, सप्तम बुद्धिमानी है।
और किसी अंशमें श्री संघ की, आज्ञा भी आप्तवाणी है ॥
अष्टम है श्री श्रुतधर्म, क्यों कि यह ज्ञान खजाना है।
बस इसके पालन रक्षण से ही, सर्व सुखों का पाना है ॥
सम्यक्त्व चारित्र धर्म नवमां, सब कर्म मेलको धोना है।
विषक्रोध मानमद काट, फैंक कर अमृत फलको बोना है ॥
जो विपरीत चले इन धर्मों से, न उन्हें कभी सुख होना है।
अज्ञान तिमिर में फंसे हुवों को, रहे शेष बस रोना है ॥

दशवां आस्तिक धर्म कहा, निश्चय बिन कुछ नहीं बनता है।
एक सम्यग् ज्ञान दर्श चारित्र ही, उत्तम फल को जनता है॥

दो.-(राम) विघ्न सभी पंद्रह कहे, पडे अगाडी आय।
निराकरण इनका करे, सो शूरा जग मांय॥

चौ.— प्रथम स्वास्थ्य ही ठीक नहीं, वह कहो तो क्या कर सकता है।
फिर खानपान में असंयम, वह कब दुःखसे बच सकता है॥
संदेह तीसरा विघ्न कहा, भ्रम जाल की यह बिमारी है।
चौथे सच्चे गुरु का अभाव, जिनके उनकी मति मारी है॥
और पंचम नियम कायदे पर, जिनको न चलना आता है।
वह लीन दुःखों में रहे सदा, चाहे उनकी तरफ विधाता हो॥
और छठे प्रसिद्धि करने में, सारांश नहीं कुछ रहता है।
महा विघ्न कुतर्क सातवां है, अमृत को तज विष गहता है॥
कोई लक्ष्य बिना जो काम करे, उसका पुरुषार्थ निष्फल है।
बिनमूल के व्याज असंभव है, और संभव होना मुश्किल है॥
मन शिथिल बने जिस प्राणीका, यह नवमां विघ्न कहाता है।
शुभ स्वर्ग मोक्षके सुख यह, आत्म मन शक्ति से पाना है॥
सन्तोष स्वल्प शुभ कार्यमें, दशमा यह विघ्न महाभारी।
धर्म ज्ञान और मोक्ष सभी का, संतोषी नहीं अधिकारी॥
एकादश में अशुभ कामना, विघ्न का कारण बनती है।
द्वादश में कुशील परायण आत्म, कुंभिपाक में गलती है॥
जो पडे कुसंगति में प्राणी तो, विघ्न तेरहमा आता है।
सब शुभ धर्मों से वंचित होकर, अन्त समय पछताता है॥
और पर छिद्रान्वेषण में जिनकी, दृष्टि नित्य ही रहती है।
यह विघ्न चौदहमा लाभ कीर्ति, सब ही पानी में बहती है॥

और विघ्न पंद्रहमा महा बुरा, होना पक्षान्ध कहाता है।
फिर बंचित सब लाभों से, होकर नीच गति जा पाता है॥

दो. (राम)-उन्नत होने में सदा, शक्ति ही प्रधान।
शक्ति हीन नर को गिना, बिलकुल पशु समान॥
ग्यारह हैं शक्ति सभी, पुण्यवान में होय।
जिस में न हो एक भी, वृथा जन्म रहा खोय॥

चौ. (राम)-शक्ति हीन का दुनियां में, गौरव एक तुच्छ तमाशा है।
घुल जाय जरा से पानी में, जैसे कि बड़ा पताशा है॥
शक्ति हीन मनुष्य इस जग में, सब की ठोकर खाते हैं।
और न्याय न्याय कहते कहते, बेइज्जत हो मर जाते हैं॥

दो. (राम)-ध्यान लगा करके सुनो, ग्यारह शक्ति महान्।
जो इन को धारण करे, अन्त लहे निर्वाण॥

चौ.-(राम) आदर्श गुणों को ग्रहण करे, वह गुण महातम्या शक्ति है।
गुणीजन की सेवा करना, शक्ति योग्य दूसरी जंचती है॥
स्मरणशक्ति तृतीया है, उपकार कभी न भुलाना है।
कृतघ्न बन कर सर्वस्व हार, आत्म को नहीं रुलाना है॥
छोटेसे छोटा चल होकर, यह दास्या शक्ति चौथी।
नहीं तजा मान जिस प्राणीने, तो उसकी किस्मत सोती है॥
शुभ संख्याशक्ति पंचम है, सबसे कुछ मैत्री भाव करो।
है क्रान्ति तेज प्रभाव छठे, निज निर्बलता का पाप हरो॥
शुभ वात्सल्यता प्रेम भाव, सप्तम सबका सम्मान करो।
है आत्म समर्पण अष्टम शक्ति, शुभ धर्म पे सब कुर्बान करो॥
तल्लीन कही नवमी शक्ति, सब कार्य सिद्ध कर देती है।
बस और तो क्या उस प्राणी को, शिवरमणी तक वर लेती है॥

धर्म समाज ज्ञानहानी का, जिसके दिल में खेद नहीं ।
ऐसे छद्मस्थ प्राणी में, और पशुमें कोई भेद नहीं ॥
सर्वज्ञ अवधिमनःपर्यय ज्ञानी, दृष्टिवाद पूर्वधारी ।
इनके विच्छेद होने पर समदृष्टि, को होता दुःख भारी ॥
उक्त साधनों के वियोग का, जिस प्राणीमें संचार नहीं ।
इन शक्तिहीन मूढातमका, होता कहीं बेडा पार नहीं ॥
एक रूपा शक्ति कही ग्यारहवी, वरते सब व्यवहारों में ।
तन जन क्या कारोबार रूप बिन, आव नहीं घरबारों में ॥

दो.-(राम) आप्त वाणी हृदय धर, लगो सभी निज काम ।
अवध पुरीमें तुम सुखी, हमको सुख वन धाम ॥

चौ.-(राम) निर्भयता से अवध पुरीमें, भरत भूपकी शरण रहो ।
और जैसा राम भरत वैसा, इसमें न रंचक फरक लहो ॥
बस न्याय पथपर डटे रहो, सोचो उपाय नित्यवृद्धिका ।
शुभ उद्यमशील बनों सारे, अमोघ शस्त्र यह सिद्धि का ॥
शिक्षा दी श्री राम ने, किया गमन में ध्यान ।
जन समुह ने भी किया, संग ही संग प्रस्थान ॥

चौ.— मकना तीस खेंच लोहे का, अपने संग मिलाता है ।
ऐसे ही अवध वासियों का दिल, राम संग ले जाता है ॥
हम कैसे हाल कहें सारा, न शक्ति कलम जबां में है ।
शुद्ध क्षीर नीर सम प्रेम राम, प्रजामें सहज स्वभाव में है ॥
मुश्किल से वापिस करके फिर, आगे चरण बढ़ाये हैं ।
यह शोक विरह रूपी सागर में, सब नर नार समाये हैं ॥

दो.— ग्राम ग्राम के अधिपति, विनती करें अपार ।
प्रभु यहां कृपा करों, आप का सब घर बार ॥

चौ.— श्री राम सबको समझा कर, आगें को बढ़ते जाते हैं।
सब ग्राम नगर पुर पाटन तज, रजनी जहां आसन लाते है॥
अब इधर अवध में दशरथ नृपने, भरत पुत्र बुलवाया है।
और राजभार देने को नृप, मंत्रीश्वरने समझाया है॥

भरत का राज्य

दो.— राज्य न लेवें भरत जी, आक्रोशें निजमात।
सियाराम और लखन का, विरह सहा नहीं जात॥

छं— चारित्र लेने के लिये, भूपाल शीघ्रता करें।
हरबार समझाया भरत नहीं, ताज अपने सिर धरे॥
यत्न सब निष्फल हुआ, कुछ काम बन आया नहीं।
सुत भी गया दशरथ कहे, मुनिव्रत मुझे पाया नहीं॥
परिवार सब दुःख में पड़ा, रानी का हाल खराव है।
राम लच्मण के बिना, सुत भरत भी बेताब है॥
अब भूपने सोचा कि वापिस, राम को बुलवाय लूं।
सोचकर युक्ति कोई, चारित्र में चित लाय लूं॥

दो.— आज्ञा पा महाराज की, हो झटपट तैय्यार।
मन्त्रीश्वर वहां से चला, जरा न लाई वार॥

चौ.— जरा न लाई वार तुरत, पश्चिम दिशि को है धाया।
मिले दूर कानन में जा, मंत्री ने शीष नमाया॥
जो था मतलब खास, अवध का सारा हाल सुनाया।
बोले अवधपुरी में नृप ने, तुमको जल्द बुलाया॥

ोड— चलो अब देर न लावो, क्लेश उपशान्त बनाओ।
ख्याल कुछ करो इधर का, होवें सब दुःख दूर चरण
जहां हो गरीब परवर का ॥

ो-(राम) वापिस जा सकता नहीं, हूं मंत्री लाचार।
अब कुछ वर्षों के लिये, है बन का आधार॥

ो.— तुम जाओ अवध में भरत वीर को,
वचन मेरा यह कह देना।
अब तू अपने को राम समझ
और मुझको भरत समझ लेना॥
श्री दशरथ नृप घर हम चारों, सुत एक सरीखे जाये है।
हम सबको यह स्वीकार भूपति, भरत वीर शोभाये है॥
मातपिता को आजतलक का, क्षेम कुशल बतला देना।
सब यथायोग्य प्रमाण तात, माताओंको जतला देना॥
तुम भरत वीर को गद्दी पर, समझा करके बैठा देना।
और धूमधाम से छत्र लगाकर, उपर चमर झुला देना॥

ड.— मानना भाई भरत को, तात के मानिंद सभी।
मेरा भी हृदय सर्द सुनसुन, करके होवेगा तभी॥
वचन यह कह कर चरण, श्री रामने आगे धरा।
सामन्त मंत्री जन सभीके, नेत्रों में अति जल भरा॥
प्रेम हृदय में भरा सब, संग ही संग में चल रहे।
विनती न मानी राम ने, सौ सौ खुशामद कर रहे॥

ो.— चलते चलते आ गई, नदी वह रहा नीर।
फेर राम कहने लगे, बैठ नदी के तीर॥

गाना नं. ३१ (राम का मन्त्रीगण एवं सामन्त गण को समझाना)

बहुत आ गये दूर मन्त्री, लौट अवध जाओ ॥ टेर॥
वापिस रथ ले जाओ मन्त्री, मत न घबराओ ।
तुम समस्त राज परिवार को, जाकर धीरज बंधवाओ ॥ १
सामंत होश कर मत रोवो, न नीर नैन लावो ।
वापिस तुम चले जाओ, अयोध्या हुक्म मेरा पावो ॥२॥

दो.— समझा कर यों रामजी, बढे नाव की ओर ।
निषाद राज अति खुश हुओ, ज्यों चन्द्र देख चकोर ॥

गाना नं० ३२

आन प्रभुने दर्श दिखाये सफल कर्म मेरे, हां सफल कर्म मेरे।
भिरन भिरन आरही बेडी गाय रही है महिमां तेरी
संग सिया लेरे, हों संग सिया लेरे ॥ १ ॥
दादुर मोर पपईया बोला श्रीराम कुमार का सादा चोला
देव पवन देरे हां देव पवन देरे ॥ २ ॥
केवट को अति खुशीयां हो रहीं राम कृपा सब कष्ट खो रही
उदय भाग्य तेरे हां उदय भाग्य तेरे ॥ ३ ॥

दो.— तीनों प्राणी हो गये बेडीमें अस्वार ।
इधर खड़ी जनता सभी, रोवें जारों जार ॥
खुशियों में निषाद सब, गातें जावें गीत ।
पुल का रास्ता छोड़कर, हम से पाली प्रीत ॥

गाना नं. ३३ (दादर) (सब मल्लाहों का)

दीनानाथ दयाल आज दर्श हमने पायें ।
देख देख नैन सब के, प्रफुल्लित थाये ॥टेर॥
सहज सहज चालत नाव, आपके ही गीत गाव ।
मन में नाविकों के चाव, प्रभु घर आयें ॥१॥

राम नाम से आराम, लखन करे सिद्ध सब काम ।
जपत रहे आठों याम, सीता सुखदाये ॥२॥
तजा सत्य खातिर राज, वन को आप चले महाराज ।
हमारे भी संवारन काज, प्रभु इधर आये ॥३॥
नित्य धर्म शुक्ल ध्यान, उदय होवे भाग्य आन ।
रंक घर आये महान, दर्शन दिखलायें ॥४॥

दो.— नदीपार जब हो गये, रामचन्द्र भगवान् ।
जनक सुता श्री राम से, बोली मधुर जबान ॥
मुद्रा मेरी निषाद को, दे दीजे महाराज ।
केवट को कर दो खुशी, प्राण पति सिरताज ॥
श्रीराम का था यही विचार, उनका दरिद्र हर लेने का ।
सरकारी जो कुछ था महसूल, वो सभी माफ कर देने का ॥
उस जनक सुता का भी कहना, श्रीराम को था मंजूर सभी ।
दो नैन उठाकर केवटों को, औदार चित्तने कहा तभी ॥
दो (राम)–निषाद राज आवो इधर, यह लो आप इनाम ।
सुन केवट कहने लगा, अर्ज सुनो श्रीराम ॥
चौ.(निषाद)-रघुकुल दिनेश काटो कलेश, तुम केवट जग अवतारी हो ।
मैं क्या इनाम तुमसे मांगू, भव तारण आप खरारी हो ॥
मैं पार किया जलसे तुमको, तुम पार करो दुःखोंसे हमको ।
जब केवट से केवट मिलगये, अब भेट दिया मेरे गमको ॥
दो.— केवट को करके खुशी, चले अगाड़ी राम ।
पार खड़े जन कह रहे, वह जाते सुखधाम ॥
चौ— जब राम दूर हुवे दृष्टिसे तो, जनता सभी निराश हुई ।
मुख मंडल सबके मुर्झाये, जैसे ग्रीष्म की घास नई ॥

जब वियोग की अग्निभभक उठी, तब नेत्र वर्षा करने लगे।
और लंबे लंबे श्वास छोड़, सन्तोष हृदय में भरने लगे॥

दो.— परम विरहा शुभ शक्तिवान्, थे सुयोग्य नरनार।
प्रजा और श्रीराम में, प्रेम था गूढ अपार॥

चौ.— सब हुए उदास अवधमें, वापिस आते हैं और रोते हैं।
हृदय में प्रेम उबल उठे तो, अश्रुओं से मुंह धोते हैं॥
मुश्किल से चरण धरे आगे, है प्रेम राम में अड़ा हुआ।
वह आ तो रहे हैं अवधपुरी, पर मन भ्रमता में पडा हुआ॥

छं.— प्रणाम करके बाद नृप को, वार्ता सारी कही।
हाल सुन राजा की जो थी, सब अक्ल मारी गई॥
भरत को अति प्रेम से, नृप फेर समझाने लगा।
विघ्न मत डालो कुमर, सब भाव बतलाने लगा॥
मान ले बेटा कथन, हित शिक्षा समझाऊँ तुझे।
कर उऋण मुझको धरो, सिरताज बतलाऊँ तुझे॥

गाना नं. ३४ (राजा दशरथ का भरत को समझाना)

लाल मेरे बेटा, धारो सिर पे यह ताज। टेर॥
मानों वचन हमारा, कर्तव्य पहिला तुम्हारा।
देवो मुझको सहारा, धारूं संयम आज॥ १॥
राम वनको सिधारा संगमें लक्ष्मण प्यारा।
सबने यही उचारा देवो, भरत को राज॥ २॥
यह सूर्यवंश कहाया, सबने वचन निभाया।
तुझे ख्याल न आया, सारा बिगडे यह काज॥ ३॥
मस्तक तिलक सजाओ, आर्ति दूर नसाओ।
शुक्ल ध्यान ध्यावो, भाषा श्री जिनराज॥ ४॥

दो. (भरत)-लाख कहो चाहे पिता, नहीं धारूँ सिरताज ।
मैं चाकर वन के रहूं, राम करेंगे राज ॥

चौ. (भरत)-राम करेंगे राज्य अभी, वापिस बन से लाऊंगा ।
चलना जिस ने चलो, नहीं मैं अभी चला जाऊंगा ॥
रामचन्द्र के दर्श किये बिन, अन्न जल नहीं पाऊंगा ।
रामचन्द्र को लाकर, सिंहासन पर बैठाऊंगा ॥

दौड़— मुझे हर वार सताते, जले को और जलाते ।
भ्रात वन वन दुःख पावे, मुझे फेर बतलावो,
कैसे राज काज सुख भावे ॥

छं.— यह देख हालत कैकेयी, यों दिल ही दिल कहने लगी ।
और आंसुओं की धार नेत्रों से, अधिक वहने लगी ॥
राज्य यह बिन राम के, चलता नजर आता नहीं ।
सोचा था जिस के वास्ते, सो भरत कुछ चाहता नहीं ॥
अवध क्या संसार में, निन्द हमारी हो गई ।
जो कीर्ति अनमोल थी, वह आज सारी खो गई ॥
अपयश हुआ सब जगत में, फिर कार्य न कोई सरा ।
भंग डाला रंग में उसका, यह फल भरना पडा ॥

दो.— कर विचार यह कैकेयी, आई दशरथ पास ।
हाथ जोड कहने लगी, जो मतलब था खास ॥

दो. (कैकेयी)-आज्ञा मुझ को दीजिये, प्राण पति जग नाथ ।
लाऊं राम बुलाय के, चलूं भरत के साथ ॥

चौ. कैकयी-अब जैसे भी हो सका रामको,
पुरी अयोध्या लाती हूँ ।
और बने काम जिस तरह नाथ,
वैसा ही करना चाहती हूँ ॥

यह राज ताज दे रामचन्द्र को, आप मुनिव्रत ले लीजे।
श्री राम लखन सीताको लाऊं, आज मुझको दे दीजे॥

दो — कैकेयी के सुन वचन, बोले दशरथ भूप।
अक्ल ठिकाने आई तेरी, सोची मुक्ति अनूप॥

दो. (दशरथ)–बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय।
व्यवहार यहाँ बिगड़े सभी, अशुभ कर्म बंध जाय॥

गाना नं. ३५ (राजा दशरथ का कैकेयी को उपालंभ देना)

गज़ब तूने किया किसका, यह किसको हक़ दिलाया है।
मैं जिसके दर्श से जीऊं, उसी का दिल दुःखाया है॥१॥
समझ कर मांगती वरदान, तू क्यों हो गई नादान।
अन्त पछतायगी क्यों आज, गौरवको गिराया है॥२॥
नियत यह हो चुका सबकुछ, तिलक श्रीराम को होगा
अवध की शुद्ध भूमी में, यह क्यों उल्लु बुलाया है॥३॥
भरत को राज देने से नियम सब भंग होते है।
तू मंगल में अमंगल करके, क्यों हृदय जलाया है॥४॥
तेरा अपयश मरण मेरा, न इसमें है कोई संशय।
आज व्यवहार को तजकर, 'शुक्ल' को क्यों लजाया है।

दो.— आज्ञा ले निज नाथ की, चली राम के पास।
भरत मन्त्री और कैकेयी, हो रहे अति उदास॥

चौ.— चपल गति रथ बैठ सभी, अति तेजगति से धाये हैं।
थे तीनों तरु की छाया में, और नजर दूरसे आये हैं
उधर राम सीता लक्ष्मण ने, दिलमें यही विचार किया
वह मात कैकेयी आती है, झट आगे आ सत्कार किया
फिर उतर यान से मिले परस्पर, खुशी का न कोई पार रहा
लघु भरत राम के चरणों में, रो रो के आंसु डाल रहा
और बोले अय भाई मन से, तुमने क्यों मुझे विसार है

अब चलो अवधमें राज करो, चरणों का हमें सहारा है ॥
श्री रामचन्द्र ने माता के चरणों में, शीश झुकाया है ।
फिर बोले माता किस कारण, इतना यह कष्ट उठाया है ॥
सीता आन झुकी चरणों में, विनय भाव दर्शाती है ।
फिर लक्ष्मण ने प्रणाम किया, कैकेयी जल नैन बहाती है ॥

छं.— हाथ सब के सिरपे धर धर, प्रेम माता कर रही ।
आंसुओं की धार भी, नेत्रों से नीचे झर रही ॥
बोली नहीं है दोष अन्यका, मेरा ही खोटा भाग्य है ।
जिन्दगी पर्यन्त मुझको, लग चुका यह दाग है ॥
अवध में चलकर कुमर, आर्त्त सभी हर लीजिये ।
तप्त हृदय मात का शीतल, कुमर कर दीजिये ॥
मुझ सी पापिन और, न दुनियां में कोइ नार है ।
रात दिन झुरती कौशल्या, अवध-दुःख संझार है ॥

दो. (कैकेयी)-मेरी गलती पर नहीं, करना चाहिये ध्यान ।
सागरवत् गम्भीर तुम, मेरे सुत पुण्यवान् ॥
उल्टी मति हो नार की, तुम सागर गंभीर ।
मात पिता की अय कुमर, चलो बंधाओ धीर ॥

चौ.— अब कहना मानों भरत वीर का, चलो अवध का राज्य करो ।
मैं हैं निपट नादान मेरा अपराध, क्षमा सब आज करो ॥
सुत भरत न लेवे राज्य अवध का, सभी तरह समझाया है ।
इस कारण बेटा आकर के, तुम को वृत्तान्त सुनाया है ॥

दो. (राम)-अय माता सब कर फैसला, फिर आया वनवास ।
किस कारण फिर हो गया, भाइ भरत उदास ॥

चौ. (राम)-भरत राम में फरक समझ. मेरी में कुछ नहीं आता है ।
दे दिया पिता ने ताज भरत को, नहीं क्यों हुक्म बजाता है ॥

पितु प्रतिज्ञा पूर्ण करने को, यह ढंग बनाया था।
सब राज्य भरत को देकर के, मैं सैर बनों की आया था।
अवधपुरी में अब जाने को, माता मैं तैयार नहीं।
शुद्ध क्षत्रिय कुल को दाग लगे,
तुमने कुछ किया विचार नहीं॥
कर्तव्य हमारा वचन पिता का,
जो भी कुछ हो सिर धरना है॥

दो. (भरत)-भरत भरत क्या कह रहे, कहा न मानू एक।
अय भाई मुझको कहां, हुआ राज्य अभिषेक॥

चौ. (,,)-मुझे कहां अभिषेक राजका, हुआ जरा वतलाओ।
फंसु न हरगिज झगड़े में, चाहे लाखों चाल चलाओ।
मंत्री लक्ष्मण ताज आप सिर, चाकर मुझे बनाओ।
अब चलो अवध में अय याई! सबआर्त्त ध्यान हटाओ।

दौड— ध्यान मेरा चरण न में, नहीं जाने दूं बन में।
चलो अब देर न लावो, सिंहासन पर बैठ मुझे भी
ड्योढीवान बनाओ॥

दो.— उसी समय श्रीराम ने, करी इशारन वात।
सीता ने कलशा नीर का, दिया राम के हाथ॥

चौ.— भरत वीर के शीस रामने, कलशा तुरत ढुलाया है।
कहा अवधपुरी का नाथ, भरत राजा यह शब्द सुनाया है।
यह मंत्रीश्वर भी साक्षी है, जो राज्याभिषेक किया हमने
जो भ्रम भूत सब दूर हुआ, अब तो स्वीकार किया तुमने
अब अवधपुरी में जाकर मंत्री, उत्सव अधिक रचा देना
और खुश खबरी यह मातपिताको,
जाकर प्रथम सुना देना॥

सब अवध पुरी का मिलजुलकर, नीति से अपना राज्य करो।
कोई कष्ट आन के पडे हमें, दो खवर न चित्त उदास करो॥
अविनय जो कुछ हुआ माता, सो क्षमा सभी अब कर देना।
हम चलने को तैयार अगाड़ी, हाथ शीस पर धर देना॥
प्रणाम हमारी माताओंको, क्षेम कुशल सब कह देना।
तज कर आर्तध्यान शुक्ल, शुभ ध्यान हृदय में धर लेना॥

दो.— प्रेम भाव से देर तक, हुई परस्पर बात।
माता ने लाचार हो, धरा शीसपर हाथ॥

चौ.— अब यथा योग्य प्रणाम किया, फिर आगे को चल धाये हैं।
यह विरह देख श्री रामका, सब नयनोंमें जल भर लाये है॥
हो गये लुप्त जब दृष्टि से, फिर पीछे चरण हटाये हैं।
सब बैठ यान में तेज गतिसे, पुरी अयोध्या आये हैं॥
यहां आदि अन्त पर्यन्त भूपको, सभी बार्ता बतलाई।
हो गया वचन पूरा ऋण उतरा, खुशी बदनमें भर आई॥
फिर उसी समय अति धूमधाम से, भरत पुत्रको राज्य दिया।
और अपना फिर इस दुनियांसे, राजाने चित्त उदास किया॥

छं.— प्रजा को पुत्रों की तरह, अतिप्रेम से नृप पालता।
देव हैं अरिहन्त और निर्ग्रन्थ गुरु निज मानता॥
धर्म श्रद्धा है दयामय, ध्यान लेश्या शुभ सभी।
वीतराग कथित्त शास्त्रों में, न है शंका कभी॥
सूर्य वंशी सुयश पाया, नाम उज्ज्वल कर दिया।
वचन पूरा कर पिताका, कष्ट सारा हर लिया॥
देख शोभा कुमर की, कष्ट राजा का हृदय सर्द है।
पूरी ही कर दिखला दिया, पुत्रों का जो कुछ फर्ज है॥

दो.— संयम लेने के लिये, दशरथ हुआ तयार ।
हाथ जोड़ कहने लगी, आन कौशल्या नार ॥
चौ.-(कौशल्या) सुत राम गये वनवास नाथ, तुम भी संयम ले जाते हो।
क्यों बने एक दम निर्मोही, कुछ ख्याल नहीं दिल लाते हो ॥
महारानी और वजीर सभी, पुत्र आदि समझाते हैं ।
प्रभु उमर आखिरी में लेना, यदि संयम लेना चाहते हो ॥
दो-(दशरथ) रानी उमर संसार की, इसका आदि न अन्त ।
आरम्भ करूं अवस्था धर्म की, लहुं मोक्ष आनन्द ॥
चौ. (दशरथ) लहुं मोक्ष आनन्द तजुं, अब ख्याल सभी इस घरका।
इस संसार का संबंध समझ, जैसे है मणि विषधरका ॥
कारीगर लें काढ़ इस तरह, जैसे कि फूल कमल का ।
तजुं कषाय भजूं समता, जैसे स्वभाव चन्दनका ॥
दौड.— सभी संयोग अनित्य हैं, ज्ञान गुण इसका नित्य है ।
करूं आत्म निर्मल है, पाकर केवल ज्ञान मोक्ष सुख ॥
भोगूं सदा अटल है ॥
चौपाई–सत्यभूति मुनि पाससिधाये । चरण कमल में शी झुकावे ॥
बोले भव दुःख से प्रभु तारो । जन्म मरण का कष्ट निवारो ॥
दो— नृप का जब अणगारने, देखा दृढ़ विश्वास ।
तब ऐसे मुनिराजने, किये वचन प्रकाश ॥
चौपाई (सत्यमूर्ति)-आश्रव रोक संवर को धारो ।
बंध जान निर्जरा विचारो ॥
खम दम सम त्रिक हृदय लाओ ।
तप जपकर अरिकर्म उड़ाओ ॥
दो — (,,) पांच महाव्रत धार लो, पांच ही सुमति मान ।
राजन् ? गुप्ति तीन कर, पहुँचों पद निर्वाण ॥

चौ.— सुना मूल गुण संयम का, वैराग्य मजीठ का रंग चढ़ा।
चरणों में करी प्रणाम फेर, ईशान कोणकी तर्फ बढ़ा॥
आभूषण सभी उतार भूपने, केश लूंच कर डारे हैं।
मुखपत्ति मुंह पर बांध मुनि हो, चार महाव्रत धारे हैं॥
दीक्षा उत्सव के बाद सभी जन, निज निज कारोबार लगे।
तजकर झूठा संसार मुनि, तप संयम के व्यवहार लगे॥
इस तरफ अवध का राज भरत, नीति से खूब चलाते है।
बनवास में फिरते उधर, रामसिया लक्ष्मणका हाल बताते हैं॥

दो.— फिरते हैं नित्य चाव से, मन में अति हुलास।
चित्रकूट में पहुंचकर, किया रामने वास॥

चौ.— शुभ समय विताते हैं अपना, संध्या और आत्म शोधन में।
श्री राम महात्म्य प्रगट हुआ, इस कारण सारे लोकन में॥
फिर वहाँ से भी चल दिये राम, जब सीता का चित उदास हुआ।
अब ऋतु बसन्त भी आ पहुंची, सारे जंगल में घास हुआ॥

वज्रकरण सिंहोदर वर्णन

दो.— आगे फिर इक आ गया, अवन्ती नामक देश।
शुद्ध एक स्थान में, ठहरे राम नरेश॥

चौ.— वट वृक्ष तले आसन लाये, जहां अति गहन शुभ छाया है।
कुछ देख हाल उस जंगल का, मन ही मन ध्यान लगाया है॥
क्या बाग और उद्यान यह दोनों, अद्भुत रंग दिखाते हैं।
फूलो पर यौवन बरस रहा, पर मनुष्य नजर नहीं आते हैं॥

दो. (राम) उज्जड़ अब ही का हुआ, अय लक्ष्मण यह देश।
कोई मिले तो पूछिये, कारण कौन विशेष॥

चौ.— थोड़ी देर के बाद, पथिक एक नजर सामने आया है।
कुछ हाल पूछने लिये अनुजने, अपने पास बुलाया है॥

बोले अहो पथिक यह बतलावो, किस कारण उज्जड़ देश हुआ।
सब आदि अन्त पर्यन्त कहो, तेरा भी क्यों दुर्बल हुआ॥
दो. (पथिक)-दारुण दुःख सुन लीजिये, पथिक कहे तत्काल।
जिस कारण उज्जड़ हुआ, बतलाऊँ सब हाल॥
उज्जयनी एक नगर में, सिंहोदर राजान।
भूपति आचरण न गिरें, आज बड़ा बलवान्॥
दो-(पथिक) वज्रकर्ण एक और है, दशांगपुर का भूप।
सिंहोदर ने आनकर, घेरा नगर अनूप॥
चो (,,) घेरा नगर अनूप हाल, अब कहूं बैठकर सार।
मुझे मिले आराम और, संशय मिटजाय तुह्मारा॥
खेलने लिये शिकार एकदिन, नृप उद्यान सिधारा।
खड़ा देख "मुनि जैन" सामने, मुखसे वचन उचारा॥
दौड़.— खड़े किस कारण बनमें, तजा क्यों घर यौवन में।
नाम क्या कहो तुम्हारा महाकष्ट क्यों भोगरहे,
क्या दिल में ख्याल विचारा॥
दो.— मुनिराज कहने लगे, राजन् सुनकर गौर।
कर्म काटने के लिये, करें तपस्या घोर॥
चौ.— प्रीतिवर्धन नाम मेरा, व्यवहारिक शब्द कहाता है।
सब छोड गंठ निर्ग्रन्थ बने, आनंद ज्ञानमें आता है॥
जो द्विविध धर्म कहा सर्वज्ञने, उसकी तुमको खबर नहीं।
निरपराधी को हनना यह, क्षत्रिय कुल का धर्म नहीं॥
अब सुनो जराकर ध्यान धर्म, द्विविध का तुम्हें बताते हैं।
सम्पूर्ण धर्म कहा मुनियों का, पहिले सो दर्शाते हैं॥
पांच सुमति और तीन गुप्तिको, हरदम हृदय रखना है।
कुछ सरस नीरस जो मिले आहार, सब समप्रणामे खाना है॥

शुद्धाचार महाव्रत धार मूल गुण, चार कषाय निवारत हैं।
सब कष्ट सहे सहर्ष सदा, परकार्य मुनि संवारत हैं॥
उत्तम गुण के धारक त्यागी, आत्म ध्यान लगाते हैं।
शुभ तपजप कर अरि कर्म काटकर, अक्षय मोक्षपद पाते हैं॥
अब आगे सुनो ध्यान लाकर, जो वीतराग का फरमाना।
कुछ गृहस्थ धर्म का भी वृत्तान्त, राजन् है तुमको बतलाना॥
पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत, धारण करते हैं।
और सातों कुव्यसन तजें तनमन, धन से पर कार्य करते हैं॥
देव गुरु शुभ धर्मशास्त्र, चारों की पहिचान करें।
रत्नत्रय को धार, श्री मुनिसुव्रत को प्रणाम करें॥
नव तत्त्व पदार्थ धार हृदय, अरि दुष्ट कर्म सब दूर करें।
अवहिंसा दोष बताते हैं, इस पर भी जरा विचार करें॥
मदिरा मांस के खाने वाले, अधो नरक में जाते हैं।
जो करें शिकार अनाथों का, वह जन्म मरण दुःख पाते हैं॥
दुःख होता है दुःख देने से, यह सर्वज्ञों का कहना है।
कोई जैसा बोवे बीज, उसीका वैसाही फल लेना है॥

गाना नं. ३६ (मुनिराज का राजा वज्रकरण को उपदेश देना)

तर्ज–नाटक की—

तुम सत्य धर्म को पालो, हरदम जान जान जान॥ टेर
जो सत्य धर्म को पाये, वह नरकादिक दुःख टाले।
जहां खड़े हैं तिरछे भाले, सत्य तू मान मान मान॥१॥
यह राजपाट सुत भ्राता, नहीं संग किसीके जाता।
फिर परभव में दुःख पाता, सुन धर कान कान कान॥२॥
जो विमुख धर्म से होता, वह सिर धुन धुन कर रोता।
कुछ मतलब सिद्ध नहीं होता, सुन धर ध्यान ध्यान ध्यान॥३॥

जिन क्रोध मान मद मारा, और अष्ट कर्म को ढारा ।
हुआ शुक्ल ध्यान सुखकारा, मिले निर्वाण बाण बाण ॥४॥

दो.— राजाने ऐसा सुना, आत्म धर्म अनूप ।
सम्यक्त्व शुद्ध धारण करी, बैठा हृदय स्वरूप ॥

चौ.-(राजा) सिवाय देव अरिहन्त देव, दूजा नहीं चित्त लगाऊंगा ।
निर्ग्रन्थ-गुरुके बिना नहीं, किसी अन्य को शीस झुकाऊंगा ॥
यावज्जीव पर्यन्त काम कोई, दुष्ट नहीं दिलमें धारूं ।
शुभ धर्म हेत तन मन धन, इज्जत राज्य न्योछावर कर डारूं ॥
यह लिया नियम शुभ धार, भूपने मुनिको शीस झुकवाया है ।
झट चरणोंमें प्रणाम किया, फिर राज सभामें आया है ॥
फेर विचार किया ऐसे, यदि सिंहोदर सुन पावेगा ।
इस मेरी कठिन प्रतिज्ञा पर, वह भूप अति झुंजलावेगा ॥
यदि शीस झुकाऊं राजा को, तो नियम टूट मम जावेगा ।
अब कौन उपाय करूं इसका, जब मेरे सनमुख आवेगा ॥

छं.— आगार के उपयोग बिन, हुई थी सोच यह भूपाल को ।
बनवा लई इक मुद्रिका, उस दम बुलवाय सुनार को ॥
नाम श्री अरिहन्त अंकित, पहिन अंगुली में लई ।
यह ही बना कर ढंग नृपने, धीर निज मन को दई ॥
जब समागम हो कहीं, अरिहन्त गुण हृदय धरे ।
हस्त मस्तकको लगा, प्रणाम नृप ऐसे करे ॥
एक व्यक्तिने सभी यह, रहस्य एक दिन पा लिया ।
और पास सिंहोदर के जाके, हाल सब बतला दिया ॥

दो— वज्रकर्ण के विरुद्ध सब, दिया चुगलने भाप ।
बोला अब तज दीजिये, वज्रकर्ण की आश ॥

चौ-(पिशुनक) तुम्हें नहीं वह नमस्कार, अरिहन्त देवको करता है ।
पागल तुम्हें बना रखा, निज वक्र भाव दिल धरता है ॥

निश्चय मैंने किया तुम्हें, वोह कब खातिर में लाएगा ।
अंगूठी कर से हटा कभी नहीं, आपको शीस झुकाएगा ॥

ोहा— पिशुन पुरुष के वचन सुन, जल बल हो गया ढेर ।
क्रोधित सिंहोदर हुआ, जैसे भूखा शेर ॥
सिंहोदर कहने लगा, अब आ पहुंची रात ।
प्रातःकाल जाकर करूं, बज्रकर्ण की घात ॥
सिंहोदर जाकर लगा, करने भोजन पान ।
किसी पुरुषने कहा दिया, वज्रकर्ण को आन ॥

चौ -(रामचन्द्र-पथिक से)

बोले राम वह कौन मनुष्य, जो गुप्त भेद सब पाया है ।
वज्रकर्ण के पास पहुंच, जिन सभी हाल बतलाया है ॥
ज्ञात तुम्हें है तो यह भी, कह दो, हम सुनना चाहते हैं ।
बोला पथिक सुनो यह भी, हम सभी खोल दर्शाते हैं ।

दो. (पथिक) कुन्दन पुरमें सेठ के, सुन्दर यमुना नार ।
विद्युत् अंग पुत्र हुआ, शशीवदन सुखकार ॥

चौ. („) -शशिवदन सुखकार सेठ सुत नगर उज्जयनी आया ।
रूप कला नहीं पार द्रव्य, उज्जयनी खूब कमाया ॥
कामलता वेश्या देखी, रगरग में इश्क समाया ।
खोटी संगत में पड करके, सारा माल गंवाया ॥

ोड— पास जिसके न पैसा, मेल फिर उसके कैसा ।
लगी दिखलाने पौलो, वर्ताव देख विद्युत अंग
वैश्या से ऐसे बोला ॥

. (विद्युत अंग)-अय प्यारी तेरे लिये, तजे मात और तात ।
लाखों की दौलत करी, तुझ कारण बरबाद ॥

छं. (,,)-लाल हीरे रत्न प्यारी, सार सब तुझ को दिया ।
विश्वास घातिन व्रन के धक्का आज क्युं मुझ को दिया ॥
अब विना तेरे ठिकाना, और न मुझको कहीं ।
क्षुधा निवारण के लिये, पैसा कोई पल्ले नहीं ॥
वैश्या कहे तु कौन है, वक बक खडा क्यों कर रहा ।
रोती वना सूरत अभागा, नेत्रों में जल भर रहा ॥
बोला अय प्यारी देख मैं, वह ही तो विद्युत् अंग हूं ।
करती थी जिससे प्यार अव, कुछ ख्याल कर मैं तंग हूं ॥
वैश्याने सोचा कि कहूं, रानी के कुंडल चौर ला ।
खुद ही मारा जायगा, सब दूर टल जाय वला ॥

दो (वैश्या)-कुंडल कानों के ले आ, यदि चाहे संयोग ।
नहीं तो दिलमें सोच ले, सारी उमर वियोग ॥

चौ (विद्युतअंग)-फिर बोल विद्युत् बिना, द्रव्यके, कैसे कुंडल आयेगें
यह बातें अद्भूत सुनकर तेरी, प्राण हमारे जायगें ॥
न पास हमारे कौडी है, तुमने यह और सवाल किया
तन धन यौवन सब छीन आज, किस तरह मुझे पामाल किया

गाना (विद्युत् अंग का कामलता वेश्या की बातोंसे निराश होकर अफसोस के साथ कहना और वेश्या की कृतघ्नता प्रगट करना)

जिनको जूतीके तले, पलकें विछाते देखा ।
आज मुंह देखते ही, नाक चढाते देखा ॥ १ ॥
झूठे टुकडों से मेरे, पलता था कुनवा जिनका ।
सरे वाजार उन्हें, धमकी सुनाते देखा ॥ २ ॥
पखर जिनको था मेरे, चरण दवाने में कल ।
क्रोधसे आज उन्हें, आँखे दिखाते देखा ॥ ३ ॥

मेरे दरपे जो कुत्तों की, तरह फिरते थे कल ।
आज विपरीत उन्हे, दांत चवाते देखा ॥ ४ ॥
न प्रेम न धीरज न वो, बुद्धि आकार रहे ।
'शुक्ल' पैसे को सभी, नाच नचाते देखा ॥ ५ ॥

दो.-(वैश्या) आ भूषण बिन द्रव्य ही, तस्कर लावें लूट ।
ऐसे भी न जिसे मिलें, तो किस्मत गई फूट ॥

चौ.-(,,) आज ही रात अंधेरी में, राजा के महल घुसो जाकर।
रानी के कान पडे कुंडल, जल्दी लावो झटका लाकर॥
ऐसा सुनकर जा घुसा, महल में राजारानी जाग रहे ।
सोचा छुपकर बैठूं महलों में, क्योंकि जल सभी चिराग रहें॥
जो एक पलका भी सो जावें, तो मुझे फिकर न एक रहे ।
विद्युत अंतर से छिपे हुवे, रानी के कुंडल देख रहे ॥
नींद न आती राजा को, मनमें रानी यों विचार रही ।
निश्चय करने को महारानी, चंपा यूं वचन उचार रही ॥

दो.(चंपारानी)-इधर उधर तन पलटते, सुनो पति महाराज ।
किस उच्चाट में लग रहे, नींद न आती आज ॥

दो.(सिंहोदर)-क्या रानी तुझको कहूं, वैरन हो रही रात ।
दिन चढते कल जा करूं, वज्रकर्ण की घात ॥

चौ. (,,)-प्रणाम नहीं करता मुझको, फल इसका उसे चखाऊंगा ।
मैं दशांग पुर को कल जाकर, चहुं ओर से घेरा लाऊंगा ॥
इसी विचार में अभी तलक अय रानी मैं हूं लगा हुआ ।
यह मन चिंता ने घेर लिया, इस कारण मैं हूं जगा हुआ ॥

दो.— होनी आगे ही खडी, कारण रही मिलाए ।
वलिहारी कुव्यसन की, बने चौर कहां जाय ॥

चौ.— विद्युत अंगने सोचलिया, हरगिज नहीं कुंडल पाऊं मैं
इससे अच्छा है वज्रकर्ण को जाकर के समझाऊं मैं
सोच समझ के ऐसा मनमें, विद्युत अंग सिधाया है
रात समय आ वज्रकर्ण को, सारा हाल सुनाया है।

दो (पथिक)- सिंहोदर का हाल सुन, घवरा गया नरेश।
सावधान हो किले, में वैठा सजा विशेष ॥

चौ. (,,)—सामान सभी ले दुर्ग वीच, पहरा चहुं ओर लगाया है
अव सिंहोदर ने उधर आन, दलवल से घेरा लाया है
जैसे तरुवर चन्दन पे, भमरे भुजंग छा जाते हैं।
ऐसे जंगी दल पडा देख, सव नर नारी घवराते हैं
सिंहोदर ने भेज दूत नृप को, यह वचन सुनाया है
अवकाश नहीं तुमको वचने का, हमने घेरा लाया है
मुद्रिका हटा गिरो चरणनमें, यदि जान वचाना चाहते हो
किस कारण फंसकर धर्म, भ्रममें जान मालसे जाते हो

दो. नं. (वज्रक)-वज्र करण उत्तर दिया, सुन लीजे दरख्वास्त
राज पाट धन मालकी, मुझे नहीं कुछ ख्वास्त ॥

चौ. नौ.-देव गुरु को छोड नहीं, नमने का सिर मेरा है।
रस्ता दीजे तजूं देश, यदि कोई हर्ज तेरा है ॥
क्यों दुखः देते प्रजा को, ला चहुं ओर घेरा है।
तजूं न हरगिज धर्म, जव तलक दममें दम मेरा है

दौड— नियम अपना नहीं तोडूं, और सव कुछ ही छोडूं।
क्षत्रिय कहलाता हूं, नहीं हारूंगा धर्म नर्म
वचनों से समझाता हूं ॥

दो. (पथिक)-उत्तर सुन सिंहोदर को, चढ़ा रोश विकराल।
मारे विन छोडूं नहीं, कहे वचन भूपाल ॥

छं. (पथिक)-लूट प्रजा को लिया, लाई कहीं पर आग है ।
छोड कर घर बार नर नारी समूह गया भाग है ॥
लूट निर्धन कर दिये; धनी क्या सभी नर नार है ।
मेरा भी सब कुछ खुस गया, बस माल और घरबार है ॥
उज्जड़ हुआ तत्काल का, यह समृद्धि शालि देश है ।
वस्त्र भी मेरे खुस गये, बस रह गया यह खेस है ॥
नार ने मुझ से कहा, जो कुछ मिले घर से ले आ ।
भय पिछाडी नार का, आगे भी डरता है जिया ॥
आपके दर्शन किये, आराम कुछ मुझ को मिला ।
क्या करूं जाऊँ किधर, दोनों तरफ डरता दिला ॥

दो.— पथिक के सुनकर वचन, यों बोले श्रीराम ।
रत्न मयी यह तागडी लेजा कर निज काम ॥

चौ.— लाखों का ले द्रव्य पथिक, चरणों में शीस झुकाता है ।
और हुआ बहुत प्रसन्न धूल, चरणों की मस्तक लाता है ॥
रामचंद्र कहे लक्ष्मण से, अय भ्रात जल्दी पुर में जाओ ।
यह कष्ट पडा एक धर्मी पे, जल्दी से उसे हटा आओ ॥
हाथ जोड कर नमस्कार, ले धनुष लखन उठ धाये हैं ।
कौन सिंह को रोक सके, चल वज्र करण पे आये हैं ॥
सेवा की अति लक्ष्मण की, सब भेद भूप ने पाया है ।
वन में बैठे सियाराम हाल, सब लक्ष्मण ने समझाया है ॥

दो.— उसी समय श्रीराम को, ले गये महल बुलाय ।
भोजन पानी सब तरह, सेव करी चित लाय ॥
भेजा लक्ष्मण रामने, सिहोंदर के पास ।
लक्ष्मण जा कहने लगा, जो मतलब था खास ॥

दो. (लक्ष्मण)–निष्कारण के क्रोधसे, होते हैं अन्याय ।
हर व्यक्ति को हर जगह, न्यायपंथ सुखदाय ॥

चौ. (लक्ष्मण)-समझ लिया हमने सब कुछ, इस लिये तुम्हें समझाते हैं।
मिल चुका दंड कर लो संधि, क्यों आगे राड बढाते हो ॥
इस झगडे का भेद कहीं, यदि भरत भूप सुन पावेगा ।
मिल जायगा धूल में सब शक्ति, और जानमाल से जावेगा ॥

दो.— लक्ष्मण का प्रस्ताव सुन, तडप उठा भूपाल ।
कौन है तू मुझको बता, बोला आंख निकाल ॥

चौ. (सिंहोदर)–हृदय नेत्र दोनों के अंधे किसको धौंस दिखाई है ।
करी मिसाल वही लाडो की, भूआ बनकर आई है ।
भरत भरत कर रहा बता क्या, नाता लेकर आया है ॥
जिसका कोई सम्बन्ध नहीं, उसका प्रसंग चलाया है ।
धुरसे है मात हत हमारे, भरत क्या इसका मामा है ।
यह धौंस वृथा क्यों दिखलाई, यहां क्षत्रिय कुल का जामा है ॥
सब मान भंग करके इसका, चरणों में आज गिराऊंगा ।
क्यों तेरी भी होनी आई, परभव इसको पहुंचाऊंगा ॥

दो. – सुनी काट करती हुई, बात सुमित्रानन्द ।
गर्ज तर्ज कहने लगा, बांका वीर बुलन्द ॥

चौ (लक्ष्मण)-नीच भाव राजन् तेरे, मैं भी तो दूत भरत का हूं ।
नाग पवनियां दिया छेड मैं, नहीं वीर गफलत का हूं ॥
मान सभी मर्दन करके, अन्याय का मजा चखाऊंगा ।
जो वचन कहे मुख से पूरे, बिन किये न यहां से जाऊंगा ॥

छं (लक्ष्मण)-है खेद इस अन्याय पर, क्षत्री का तू जाया नहीं ।
धर्मी को तैने दुःख दिया, कुछ भय भी मन लाया नहीं ॥

हर वार उसने है कहा, सब ही यह कुछ ये लीजिये ।
धर्म को छोड़ूं नहीं, रस्ता मुझे दे दीजिये ॥
कौन कारण से बता फिर, जान का दुश्मन बना ।
समझ ले अब भी नहीं, मैदान में होगा फना ॥

दो.— बातों बातों में बढी, दोनों में तकरार ।
सुभटों को कहने लगा, सिंहोदर ललकार ॥

दो. (सिंहोदर)-पकडो इस अज्ञानी को, बोले शब्द कठोर ।
धंसो एकदम दुर्ग में देखें सब का जोर ॥
कडा— प्यारे जी सुनते ही सब, सूर एकदम रूरे ।
उस तर्फ सुमित्रा नन्द, नाहर सम घूरे ॥

दो.— लक्ष्मण को जब पकडने, गये एकदम शूर ।
उधर सुमित्रानन्द को, चढ़ा जोश भरपूर ॥
चौ.— दलमें कूद पडा ऐसे, जैसे कोई शेर बकरियों में ।
बसन्त अन्त जैसे ग्रीष्म, ऐसे ही अनुज क्षत्रियों में ॥
हो गया साफ मैदान कई, मर गये और दल भाग पडा ।
फिर बोल दिया नृपने हल्ला, और हस्ती ऊपर आप चढा ॥
जैसे नर नाचे बांसोंपर, करता कमाल अपने फनमें ।
ऐसे ही लक्ष्मण वीर बली, करता कमाल गरजा रणमें ॥
देख जौहर नृप दहलाया, लक्ष्मण होदे पर कूद पडा ।
मुश्कें बांध लई राजाकी, दल बाकी सब बेकार खडा ॥
श्री रामचंद्र के पास अनुज, नृपकी मुश्कें कस लाया है ।
और आदि अन्त पर्यन्त सभी, रण का वृतांत सुनाया है ॥
श्री राम सिया और लक्ष्मण हैं, यह भेद सिंहोदर पाया है ।
फिर बारम्बार क्षमा मांगी, चरणोंमें शीश झुकाया है ॥

दो (सिंहोदर)-क्षमा मुझे अब कीजिये, यही मेरी अरदास ।
राजपाट सब आपका, मैं चरणों का दास ॥

चौ. (राम)-बोले राम सुनो अच्छा, अब मेरे सभी बखेडा यह ।
दोनों के राज्य मिला करके, बस अर्धम अर्ध निवेडा यह ॥
सेवक मालिक नहीं कोई, अब दोनों भ्रात बराबर के ।
है यदि तुम्हें मंजूर फैसला, करूं कहूं समझा करके ॥

दो.— सिंहोदर और वज्र करण, गिरे चरण में आन ।
हमें सभी स्वीकार है, जो भाषा भगवान ॥

चौ.— श्रीराम ने कुंडल मंगवा कर, विद्युत् अंग के हाथ दिये ।
और बना दिया अधिकारी नृप ने, सब नगरों के नाथ किये ॥
फिर बोले राम से सिंहोदर, एक बात आप से चाहता हूं ।
हे नाथ ! करें मंजूर मैं निज पुत्री, लक्ष्मन को विवाहता हूं ॥

दो. (राम)-लक्ष्मण से लो सम्मति, यों बोले श्रीराम ।
यदि लखनजी मान लें, बने तुम्हारा काम ॥

दो.— लक्ष्मणजी से फिर कहा, सिंहोदर ने आन ।
सुनते ही फिर अनुज यों, बोले मधुर जबान ॥

छं. (लक्ष्मण)-अब नहीं समय विवाह का, बोले अनुज सुन लीजिये ।
परणेंगे वापिस आन कर, जाने हमें अब दीजिये ॥
हो विदा उज्जैन को, सेना ले सिंहोदर गया ।
धर्म के प्रताप से, नृप का उपद्रव टल गया ॥
राम लक्ष्मण भी विदा हो, ध्यान चलने में किया ।
विश्राम करते उस जगह, जहांपर कि थक जाती सिया ॥

दो.— मलयाचल आगे बढे, जब श्री राम नरेश ।
चलते हुवे आया वहां, निर्जल नामा देश ॥

तृषा सीता को लगी, लिया जरा विश्राम ।
पानी लाने के लिये, लक्ष्मण धाया ताम ॥
एक सरोवर जल भरा, देखा अधिक अनूप ।
जल क्रीडा करने वहां, आया है एक भूप ॥
कुबेर पुर का अधिपति, कल्याण नाम सुकुमाल ।
देख सुमित्रानन्द को, खुशी हुआ तत्काल ॥
उसी समय कर प्रेम भाव, लक्ष्मण से हाथ मिलाया है ।
फिर करता अनुज विचार, लगे औरत दिलमें मुस्काया है ॥
कल्याण भूप ने लक्ष्मणजी का, स्वागत किया अतिभारा है ।
और दिया आमंत्रण चलो महल, मुख से यूं वचन उचारा है ॥
दो. नौ.-इश्क मुश्क गुफिया, खुरक, द्वेष खून मद पान ।
भेद न मूर्ख को लगे, लेते चतुर पहिचान ॥
चौ. नौ.-लेते चतुर पहिचान, भेद लक्ष्मणने सब जाना है ।
तेजी से नहीं पड़े कदम, यह औरत का जामा है ॥
नक्ष पडे सब महिला के, एक बाना मर्दाना है ।
काम बाण से हुई चूर, मेरी इसको चाहना है ॥
दौड़— उमर छोटी बिल्कुल है, हुस्न चेहरा खुशदिल है ।
रहस्य कुछ पाना चाहिये, सियाराम बैठे बन में,
यह भी दर्शाना चाहिये ॥
दो. (लक्ष्मण) सिया राम बैठे वहां, बोले लक्ष्मण लाल ।
बिन आज्ञा कैसे चलूं, महल सुनो भूपाल ॥
उसी समय सेवक जन को, राजाने हुक्म चढ़ाया है ।
सियाराम को बुला संग ले, अपने महल सिधाया है ॥
भोजन पान से की सेवा, और समझा परउपकारी है ।
अवसर देख कुबेर पति ने, मुख से बात उचारी है ॥

दो. (कल्याण राजा) चरण दास की विनती, सुन लीजे महाराज।
परोपकारी तुम प्रभु, सभी जगत् के ताज ॥
वालि खिल्य है पिता मेरा, पृथ्वी नामा महतारी है।
गर्भवती थी पृथ्वी रानी, सुन लीजे व्यथा हमारी है ॥
आया इक गिरोह डाकुओं का, सहसा वालिखिल्य बांध लिया।
नहीं लगा पता कई मासों तक, दुर्गम नग बीच तलाश किया ॥
सुता हुई पीछे रानी के, और नहीं कोई लडका है।
वृद्धावस्था वालीखिल्य की, कुछ यह भी दिल में धडका है ॥
वालिखिल्य हैं किस हालत में, यंह हमको कुछ खबर नहीं।
यदि करें लडाई जाकर के, दस्यु दल से हम जबर नहीं ॥
फिर सोचा कि पुत्री जन्मी, कहीं सिंहोदर सुन पायेगा।
राज पाट सब के ऊपर, अपना अधिकार जमायेगा ॥
इस हानी से वचने के लिये, रल मिल एक वात बनाई है।
'पुत्र जन्मा महारानी के' यह बात, प्रसिद्ध कराई है ॥

दो.— सिंहोदर को यह खवर, पहुंचाई तत्काल।
सहित बधाई उत्तर यों, भेज दिया भूपाल ॥

राज तिलक दो राज कुमर को, सिंहोदर ने फरमाया है।
मंत्रीने अपनी बुद्धि से, यह सारा ढंग रचाया है ॥
पल्लीपति को लालच भी, हम द्रव्य बहुत सा देते हैं।
फिर भी न तजते अपना हठ, इस लिये महा दुःख सहते हैं ॥

दो.— वज्रकर्ण का जिस तरह, दीना कष्ट निवार।
नाथ हमारा भी जरा, कीजे तनिक बिचार ॥

चौ.— यों बोले राम यह भेष पुरुष का, अभी तन से दूर करो।
वालिखिल्य को छुडवा देगें, तुम अपने मन में धीर धरो ॥

देकर के सन्तोष राम फिर, नदी नर्मदा आये हैं।
निर्भयता से विन्ध्य अटवी की, ओर आन चल धाये हैं ॥

दो.— अटवी में एक भीलनी, कर रही मार्ग साफ।
कभी कहती है "हे प्रभो! कटे किस तरह पाप" ॥

चौपाई—शब्द भीलनी के सुन राम। निज मन मांहीं विचारा ताम ॥
भीलनी जपे जिनेश्वर नाम। क्या सत्संग हुआ इस धाम ॥
या जाति स्मरण हुआ ज्ञान। कारण कोई मिला शुभ आन ॥
क्या सुंदर करती गुण गान। सुन जिन नाम टलें सब मान ॥

दो.— देख रामको भीलनी, हर्षित हुई अपार।
चरणों में आकर गिरी, सबको किया जुहार ॥
एक वृक्ष तले बैठा करके, फिर पानी उन्हें पिलाया है।
जो चुनकर रक्खे थे पहिले, बेरोंपर हाथ जमाया है ॥
मीठों की परीक्षा कारण कुछ, निज दांतोसे काटती थी।
फिर छांट छांट अच्छे अच्छे, सीयाराम लखन को बांटती थी ॥

दो.— सादर प्रेम के वह बेर खा, मिला अपूर्व स्वाद।
जनता को वह प्रेम सब, आज तलक है याद ॥

चौ.— वह बेर नहीं एक अमृत था, सब तीन लोकमें बढ़ करके।
शुभ है पांचों रस दुनियां में, पर इनमें था वह चढ़ करके ॥
अब बाप बेटे में नफरत है, तो औरों से फिर प्रेम कहां।
एक दूजे में जहां प्रेम नहीं, वहां वर्तेगा सुख चैन कहां ॥
जो दशा आज भारत की है, किसी बुद्धिमान् से छिपी नहीं।
चोटों पर चोटें सहते हैं, फिर भी हैं आंखों मिची हुई ॥

दो.— पा करके मानुष्य तन, करो जरा कुछ ख्याल।
अन्त सभी तजना पडे, परिजन तन धन माल ॥

गाना नं० ३७ (जनता को उद्बोधन)

तर्ज-खिदमते खल्क में जो कि मर जायगें:—

करके नेकी जो दुनियां में मर जायगें ।
यहां अमर नाम अपना, वह कर जायगें ॥ टेर
उठो भारत वीरो, कमर कस के अपनी ।
तजो नकली माला, तजो नकली जपनी ।
करो पुण्य दुःख सारे, टर जायगे ॥ १ ॥
रहो प्रेम से आप, हिल मिल के सारे ।
करो संप धारण तो, हों वारे न्यारे ।
नहीं द्वेषानल में, ही जर जायेंगे ॥ २ ॥
यह चारों वर्ण का, मनुष्य तन समुह है ।
करो प्रेम सबसे बढे, पुण्य समुह है ।
नहीं सच्चे मोती, विखर जायगें ॥ ३ ॥
पतित हो के अपने, ही घातक वनेगें ।
धर्म अपवर्ग के भी, वाधक वनेगें ।
शत्रु वन कर म्लेच्छों के घर जायेंगे ॥ ४ ॥
इस समय क्या सदा से कहा धर्म ये ही ।
करो मैत्री सब से है सद्धर्म ये ही ।
'शुक्र' काम सारे ही सर जायगे ॥ ५ ॥

दो.— भारतवासी तुम इसे, सोचो हृदयमांय ।
श्रीराम भीलनी को, उधर यों बोले हर्षाय ॥

दो. (राम) कहां तेरा पतिदेव है, और सभी परिवार ।
क्या नाम आपका भीलनी, मिला धर्म कहां सार ॥

दो. (भीलनी) सम्बन्ध नहीं कुछ पति से, सम्बन्धी दिये छोड ।
नाम उद्यमिका है मेरा, मन सबसे लिया मोड ॥

परोपकारी मिला मुनि, जिन को मैं मारन धाई थी।
हानी न उसको पहुंचा सकी निजशक्ति सभी लगाई थी॥
फिर महापुरुष निर्ग्रन्थ मुनिने, मुझे अपूर्व ज्ञान दिया।
जो आत्म का कल्याण करे, सम्यक्त्व रत्न यह दान दिया॥

दो. (भीलनी) अरिहंत सिद्ध आचार्य, उपाध्याय मुनिराज।
गुण इनका हृदय धरो, महामुनि सिरताज॥
शरण भी उत्तम बतलाया, अरिहन्त सिद्ध साधु जनका।
वचन कायको शुद्ध करो, और पाप हरो अपने मनका॥
मत मारो निरपराधी को, प्राणी मात्र पर दया करो।
चोरी जारी जुआ मदिरा, अभक्ष्य मांसको परिहरो॥
नित्य ध्यान करो अपने हक पर, यह धर्म मुख्य है आत्म का।
बाकी स्वप्ने की माया है, नित्य ध्यान धरो परमात्म का॥
मैत्री भाव रखो सबपर, गुणियों का आदर भाव करो।
कृपा करो दुर्बल जीवों पर, विपरीत पे माध्यस्थ भावधरो॥

दो.— आत्म शुद्धि के लिये, जपा करो यह जाप।
सोऽहं सोऽहं जपन से, कटे दुष्ट सब पाप॥

पृथ्वी पानी वायु अग्नि क्या, वनस्पति सोहं सोहं।
तिर्यंच नारकी देवगति, सोहं सोहं सोहं सोहं॥

जलचर थलचर खेचर उरपर, भुजपर जाति सोहं सोहं।
नर जन्म अनन्ति बार मिला, नहीं मिली सुमति सोहं सोहं॥
सच्चिदानंद जो परमात्म, सोहं सोहं सोहं सोहं।
कर्मान्तर फक्त है पडा हुआ, सोहं सोहं सोहं सोहं॥
पुण्य सहायक आत्म का, निर्जरा फेर हो कर्मों की।
सम्यक्त्व शुद्ध जब आ जावे, निवृति होय सब कर्मों की॥

सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र, जव शुद्ध जीव के होते हैं
वारूद क्या दण्ड रत्न वत् वन, कर्मों के वंश को खोते है
वस लीन जाप में हो जावो, यह मंत्र है आनंद पानेका
कर्तव्य न छोड कभी अपना, यह समय फेर नहीं आने का।
अव चलते हैं अय भीलनी हम, किसी और को जा समझायेंगे
या 'शुक्ल' ध्यान में लीन वने, निज आत्मध्यान लगायेंगें।
देकर शुभ ज्ञानामृत मुझको, वह महा तपस्वी चले गये
तव शस्त्र फैक दिये मैंने, जव दुष्ट भाव सव चले गये।

दो.— सदुपदेश देकर मुनि, कर गये उग्र विहार।
उस दिन से मुझको, प्रभु मिला यह शोभन ज्ञान॥
जव मैंने निज संवंधी जन को, यह शोभन उपदेश दिया।
किन्तु कर्मोदय से सवने, उल्टा ही उपदेश लिया॥
मुझ को पगली कह कह कर, सम्वन्ध सभी ने छोड दिया।
और भारी कर्मी समझ उन्हे, मैंने निजमन:को मोड लिया।
किसी आये गये मुसाफिर को, मैं सावधान कर देती हूं।
पुरुषार्थ करके अपना यह मैं, उदर नित्य भर लेती हूं॥
और नहीं कुछ धर्म वने, यह जन्म वृथा ही जाता है।
क्या खवर कर्म कव छूटेगें, ये ही दुःख मुझे सताता है॥

दो.— अपना जो वृतान्त था, संक्षेप से दिया वताय।
औदार चित्त प्रसन्न हो, यों वोलें रघुराय॥

दो. (राम) अव से नाम सुधर्मिका, तेरा गुण संपन्न।
सार धर्म धारण किया, तेरा जन्म सुधन्य॥

दो. (राम) भक्ति ही संसार में, करे भवोदधिपार।
वह नवधा भक्ति तुम्हें वतलाते है सार॥

नवधा भक्ति- (श्री रामचन्द्र का भीलनी को उपदेश देना)

चौपाई- प्रथम साधु शक्ति सुखदानी। विनय सहित भक्ति मुख्यमानी ॥
सुविनय मूल धर्म का माना। यही मोक्ष का पंथ बखाना ॥
द्वितीय पढो सर्वज्ञ की वानी। अथवा शास्त्र कथा सुनो कानी ॥
सम्यग्ज्ञान दर्शचारित्र। इससे करो निज जन्म पवित्र ॥
देवगुरु धर्मशास्त्र में प्रेम। निष्कपट भक्ति तृतीये शुभ नेम ॥
आश्रव रोक संवर को धारो। पुण्य ग्रहण कर पाप निवारो ॥
उत्तम चौथी भक्ति पहिचानों। आत्मतुल्य सभी को जानो ॥
शरणे उत्तम चार बताये। इसमें पंच परमेष्ठी समायें ॥
दृढ विश्वास रक्खो मनमांही। पंचम भक्ति कही सुखदाई ॥
गृहस्थ धर्म बारह बतलाये। नित्य कर्म जिनके मनभाये ॥
अतिथि संविभाग मुनिजन सेवा। अष्टम भक्ति आत्मसुख देवा ॥
आत्म में जग नाटक देखो। सोहं सोहं कर निज लेखो ॥
परमात्म सम इसको मानो। कर्म मैल का अन्तर जानो ॥
सच्चिदानंद रूप अविनाशी। आप्त कथित शास्त्रमें भाषी ॥
सप्तम भक्ति यह कही अनूप, जानो इस विध आत्म स्वरूप ॥
जो आत्म सन्तोष उसीमें, राग न द्वेष न मोह किसीमें ॥
मान अरु माया लोभ से डरना, परहित जीना परहित मरना ॥
देश धर्म हित अर्पण करना, लो अष्टम भक्ति का शरणा ॥
मन वच काय सरल बरताओ, विषम भोगी कभी भूल न लावो ॥
सत्य धर्म लिये शीस चढाओ, निर्मल श्रेणीपर चढ जाओ ॥
करुणा भाव हृदयमें लाओ, परहित कारण प्राण लगाओ ॥
नवमी भक्ति इस विधमानो, शोभन पंथ मुक्ति का जानो ॥

दो.— नवधा भक्ति सुन हुई, सुधर्मिका खुशी अपार।
पुण्य उदय से कर लिये, सभी वचन स्वीकार ॥

श्री रामचन्द्रजी जब हुवे, चलने को तैयार।
कहन लगे यों भीलनी;-सें मृदु वचन उचार ॥

दो. (राम)–वालीखिल्य नृपका पता, यदि तुम्हें कुछ होय।
तो हमको बतलाइये, पुण्य तुम्हें स्वच्छ होय ॥

दो. (भीलनी)-पन्द्रह सोलह सालकी, पूछी आपने बात।
वालीखिल्य नृप कैदमें, रहता है दिनरात ॥
किन्तु मुश्किल है महाराज, वालीखिल्य को छुडवाना भी
नृप वालीखिल्य को वहां पीसना, पडता है कुछ दाना भी।
चोरोंने वालीखिल्य नृप से, यह अपनी रडक निकाली है
एक इसका ही क्या जिकर करें, कइयों पर विपदा डाली है।

दो.— परोपकारी चल दिये, विषमस्थल की ओर।
चलने को तैयार थे, उधर महाभट चोर ॥
राम जिधर को जा रहे, कंटक तरू अति भूर।
रस्ता न कोई मिले, जाते मार्ग चूर ॥
शकुन अपशकुन गिनते नही, गिने न वाट कुवाट।
दुर्बल को यह सोच है, बलिजन को उज्जड बाट ॥
सेना चोरों की प्रबल, शूर वीर बलवान।
देश लूटने को चले, मिले सामने आन ॥
देख सिया का रूप तरुण, सेनापति हुक्म सुनाता है।
देखो हीरे का टुकडा यह आज सामने आता है ॥
अतुल अनुपम रूप हमें, यह जगदम्बा ने भेजा है।
राज खजाने तुच्छ सभी बस, येही जान कलेजा है ॥

दो.— आज्ञा पाते ही कई, बढे अगाडी शूर।
हंसते हंसते जा रहे, दिल में अति गरूर ॥

जा पहुंचे जब पास राम के, झट शस्त्र चमकाये हैं ।
उधर राम लक्ष्मण ने भी, निज धनुषवाण कर उठाये हैं ॥
तब कहे अनुज हे भ्रात रहो, तुम सिया पास हुश्यारी से ।
करता हूं नाश अभी इनको, ज्वाला को जैसे वारि से ॥

दो.— आज्ञा पा श्रीराम की, लक्ष्मण बढे अगार ।
धनुष प्रत्यंचा खैंचकर, किया एक टंकार ॥

चौ.— किया धनुष्य टंकार अनुजने, मानों बिजली कडक पडी ।
हो गये अधीर सभी शत्रु, चोरों की सेना धडक पडी ॥
सैनापति सामंत सहित, यह हाल देख रहे खडे खडे ।
फिर डाल दिये हथियार सभी, कर जोड राम के शरण पडे ॥

दो. (दस्यु सेनापति)-प्राक्रम से अज्ञात था, मुझे कीजिये माफ ।
हाल सभी सुन लीजिये, कहुं जी वीती साफ ॥
कौशाम्बी नगरी भली, वैश्वानर पितु जान ।
सावित्री माता मेरी, आगे सुनो बयान ॥
नाम है मेरा रूद्र देव, करता कर्म करूर ।
खोटी संगत में लगा, वाजे अपयश तूर ॥
चोरी करता पकड मुझे, नृप ने शूली का हुक्म दिया ।
महापापी है यह मरने दो, नहीं जरा किसी ने तरस किया ॥
तब एक पुरुष धर्मी ने आकर, मेरी जान बचाई थी ।
कोई दुष्ट काम फिर न करना, यह भी शिक्षा समझाई थी ॥

दो. (,,) जान बचा कर मैं भगा, मिला न कहीं सुधाम ।
दौड भाग पाया इसी, पल्ली में विश्राम ॥
पल्लीपति अब मैं हुआ, तेज प्रताप प्रचंड ।
कोई न आवे सामने, वरते आन अखंड ॥

मैं इस फन का ज्ञाता पूर्ण, नहीं काबू में आ सकता हूं
एक सिवा आपके नहीं किसी को खातिर में ला सकता हूं।
अब चरणों में आ गिरा प्रभु, शरणागत को माफी दीजे
बन चुका आपका दास कोई, सेवा मुझको काफी दीजे।

दो.-- नम्र निवेदन सेनानी का, सुना जिस समय राम।
औदार चित्त गंभीर नर, यों बोले सुखधाम ॥
छोडो तुम वालीखिल्य नृप को, यह पहला कथन हमारा है
अन्याय कार्य तजो सभी, इसमें ही भला तुम्हारा है।
वालीखिल्य को छुडवाकर, कुबेर नगर भिजवाया है
जहां हुआ विरह दुःख दूर खुशी का मानो बादल छाया है।
उस तर्फ खुशी में सब प्रजा, इस तर्फ राम समझाते हैं
और हटा पाप से चौरों को, फिर आगे कदम बढाते हैं।
बस महापुरुष हैं सदा वही, जो औरों का हित करते हैं
यदि धर्म हेत कहीं पडे काम, तो मरने से नहीं डरते हैं

दो.— विंध्य अरवी अति क्रमी, और तजे कई ग्राम।
तापी नदी का तट जहां, वहां पहुंचे श्रीराम ॥
,, नदी पार आगे मिला, अरुण नाम एक ग्राम।
निर्लज्ज निर्धन और अति, दुःखी लोक वसें उस धाम
,, सुशर्मा सुखदायिनी, विप्राणी गुणखान।
कोकिल वाणी मधुरता, बसुधा करे बखान ॥

दो. नौ.-तृषातुर सीता हुई, पहुंचे उसके स्थान।
आदर दे अति ब्राह्मणी, करवाया जलपान ॥

चौ. नौ.-करवाया जलपान प्रेम से, आसन बिछा रही है।
करो यहां विश्राम क्योंकि, तबीयत घबराय रही है ॥

वियावान चहुं ओर सहज, नहीं पानी मिले कहीं है।
जो कुछ इच्छा करूं सभी, हाजिर यह बात रही है॥
दौड़— उधर से ब्राह्मण आया, देख गुस्सा तन छाया।
पड़ा मस्तक पर वल है, विप्राणी से लगा कहन
विप्र बन भूत शकल है॥
दो. नौ. (ब्राह्मण)–मति हीन तेरी हुई, तज दई आन और शर्म॥
धर्म भ्रष्ट सब कर दिया, अग्नि होत्र सुकर्म॥
चौ. नौ. (ब्राह्मण)–अग्नि होत्र सुकर्म सभी, फल पानी बीच बहाया।
जात पात की खबर नहीं, घर में यह कौन बैठाया॥
सब अपवित्र हो गये बर्तन, क्यों पानी इन्हे पिलाया।
फूटे मेरे भाग्य तेरे संग, जिस दिन व्याह कराया॥
दौड़— निकल जा मेरे घरसे, उड़ादूं सिरको धड़से।
तेरा सिर चकराया है, बलती ले लकड़ी चूल्हें से
मारन को धाया है॥
छं — ब्राह्मणी भयभीत हो, सीता की शरण में आ गई।
आगे सिया हो गई खड़ी, पीछे उसे बैठा लई॥
दुष्ट फिर भी न टला, सीता लगी दिलमें कांपने।
देख हाल अनुज यह, आकर खड़ा हुआ सामने॥
लक्ष्मण ने समझाया बहुत, माना नहीं चांडाल है।
लखन का भी हो गया फिर, गुस्से से चेहरा लाल है॥
पकड़ कर ऊपर उठा, करके किया उपहास्य है।
भयभीत होकर के महा, विप्रने पाई त्रास है॥
दो— रोने के सुनकर शब्द, आ पहुंचे नरनार।
भेद समझ देने लगे, विप्र को धिक्कार॥

(ग्रा.नि)-फिर बोले दोष क्षमा करदो, इस विप्रकी नादानी का।
कहीं नहीं दूसरा मनुष्य कोई, क्रोधी है इसकी शानी का॥
देकर विश्राम पिलाया पानी, कौन दोष विप्राणी का।
है आदत से लाचार करो मत गिला जरा अज्ञानी का॥

दो.— छुड़ा दिया श्री रामने, करुणा दिल में धार।
फिर आगे को चल दिये, पहुचे वन संभार॥
अब दूसरी अटवी में आये, घनघोर भयानक भारी है।
आषाढ महिना लगते ही, जहां लगा बरसने वारी है॥
एक वट का वृक्ष विशाल देख, श्री रामने आसन लाया है।
श्री राम लखन का तेज देख, वटवासी सुर घबराया है॥

दो.— वटवासी वहां देवता, पाया मन में त्रास।
यक्षों के सरदार ये, गया छोड निजवास॥
इम्भकर्ण यक्ष के पास पहुंच कर, सारी व्यथा सुनाता है।
बोला तीन मनुष्य हैं जिनका तेज सहा नहीं जाता है॥
तब इम्भकर्ण ने अवधि ज्ञान से, सभी हाल पहिचाना है।
फिर कह देव को भाग्यहीन, तैने नहीं कुछ भी जाना है॥

दो. (इम्भकर्ण) सूर्यवंश कुल मणि मुकुट, दशरथ के सुकुमार।
पूर्व पुण्य अनुसार यह जन्मे कर्मावतार॥
वासुदेव बलदेव अष्टम यह, रामचन्द्र और लक्ष्मण हैं।
पुण्यवान् यह महा पुरुष और नहीं किसी के दुश्मन हैं॥
सेवा न कुछ करी पाहुने, घर में आये चाह कर के।
अब चलो चलें हम भी सेवा, तुम करो वहां पर जा करके॥

दो.— सामायिक करके राम यहां, करने लगे विश्राम।
देवों ने आ रात को, रचना करी तमाम॥

पुरी अयोध्या के मानिंद, एक नगरी वहां वसाई है ।
लंबी चौडी विस्तार सहित, अति शोभनीय सुखदाई है ॥
कोट महल क्या वाग वडा, वाजार है माल दुकानों में ।
नाचरंग स्वर मधुर गायन के, शब्द पडे आ कानो में ॥
वाग वगीचे चहुं ओर, फल फुलों में यौवन टपक रहा ।
क्या करें कथन उस पतन, का सुरपुर की मानिंद चय कर रहा ॥

दो.— रजनी में रचना करी, देवामनसा काम ।
दरवाजे जहां चार हैं, राम पुरी अभिराम ॥
मंगल शब्द सुहावने, जिस दम सुने नरेश ।
वस्ती अद्भुत देखकर, आश्चर्य सुविशेष ॥

छं.— विचार तव मन में उठा, क्या ? माजरा नायाव है ।
सो रहे या जागते, या आ रहा कोई ख्वाव है ॥
सोये थे हम तो अरण्य में ? आती नजर क्यों अचथ है ।
रूप रंग सव नगर के, पडता सुनाई शब्द है ॥
इतने में सम्मुख आ खडा, वर यक्ष वीणा धारके ।
देख विस्मित राम को, यों वोला सुर उचार के ॥

दो. (इम्भकर्ण)–नाथ यह सव मैंने रचा, महल नगर आवास ।
इम्भकर्ण वर यक्ष हूं, तुम चरणों का दास ॥
पुण्यवान् का पुण्य साथ, जंगलमें मंगल होता है ।
पुण्यहीन को मिले न कुछ, नगरों में फिरता रोता है ॥
यक्ष करें जिनकी सेवा, सव पूर्व पुण्य फल पाया है ।
और इस जंगल में कपिल विप्रभी, समिधा लेने आया है ॥

दो.— सहसा एक तौफान ने, विप्र लिया उडाय ।
देव कृत जो नगर था, डाला वहां पर जाय ॥

यहां नूतन नगरी देख विप्रको, आश्चर्य अति आया है।
यदि मिले कोई पूछे उससे, मनमें यह भाव समाया है॥
एक यक्षणी नारी रूप में, नजर सामने आई है।
फिर पास गया विप्र उसके, मनकी सब कथा सुनाई है॥

दो. (कपिल)-क्या तुमको भी कहीं से, उठा लाया तूफान।
या इस नूतन नगर में, है तेरा स्थान॥

दो.— कहे यक्षाणी विप्रसे, यह बन खंड उद्यान।
इम्भकरण वर यक्षने, नगर बसाया आन॥

दो. (यक्षणी) देव करी रचना सभी, वास वसे श्रीराम।
करे याचना जो कोई, देते वांछित दाम॥
याचक को बादल समान, कंचन श्रीराम बरसते हैं।
तब कहे विप्र हम हैं गरीब, पैसे के लिये तरसते हैं॥
तू बता किस तरह नगरी में जाऊं और दान मिले मुझको।
यदि इच्छा हो पूर्ण मेरी, खुश हो आशीस देऊं तुझको॥

दो. (,,) यक्षों का पहिरा यहां, नगरी क्या उद्यान।
विना सहायता के कोई, धस नहीं सकता आन॥
यक्ष देव रक्षा करते, फिर कौन वहां जा सकता है।
हां परमेष्ठी मंत्र जो जाने, वही फल पा सकता है॥
यदि हो बारह व्रत का धारी, फिर तो कहने की बात ही क्या।
इन्द्र भी नहीं रोक सकता, फिर और की पारवसाती क्या॥

दो.— विप्र गया जहां मुनि थे, प्रथम नमाया माथ।
नमोकार मंत्र धारण किया, गृहस्थ धर्म के साथ॥
संग विप्राणी को दिला देशाव्रत रामपुरी में आया है।
सियाराम लखन को देख विप्र मनही मन अति शर्माया है॥

फिर बोले लक्ष्मण कहो विप्र ! कैसे आदर्श दिखाये हैं ?।
देकर आशीस ब्राह्मण बोला, बस शरण आपकी आये हैं ।।

दो.— मन वांछित श्रीरामने, दिया विप्रको दान ।
खुश हो विप्रने किया, निज मुख से गुणगान ।।
खुशी खुशी निज ग्राम गया, ब्राह्मण समृद्धि पा करके ।
जहां भोगे सुख अनेक धर्म, संध्या में ध्यान जमा करके ।।
फिर सोचा किंचित् किया, धर्म जिसने यह कष्ट निवारा है ।
सम्पूर्ण धर्म यदि ग्रहण करे, तो खुला मोक्ष द्वारा है ।।

दो.— समझ लिया संसार में, है सब वस्तु निस्सार ।
संयम बिन होगा नहीं, आत्म का उद्धार ।।
तजा सभी संसार धार, संयम निज आत्म काज किया ।
उस तरफ राम सिया लक्ष्मणने, वहां ही पूरा चौमासा किया ।।
जब चलने को तैयार हुवे, फिर यक्ष वहां पर आया है ।
एक स्वयं प्रभ नामा हार देवने, राम को भेंट चढाया है ।।
रत्न जडित कुंडल जोडा, श्री लक्ष्मण को शोभाता है ।
और चूडामणि सिया के मस्तक, ऊपर चमक दिखाता है ।।
वर वीणा चौथी दई देवने, इच्छित राग मिले जिससे ।
सब साज सहित अद्भुत, गुणदायक आर्ति दूर हटे जिससे ।।

दो. नौ.-पुण्यवान् जहां पर बसें, मिले समागम आय ।
श्रीराम आगे बढे, नगर गया विर्लाय ।।

चौ. नौ.-नगर गया विरलाय, सफर दर सफर रोज जारी है ।
करें वहां विश्राम जहां, थकती सीता प्यारी है ।।
विजय पुरी के जंगल में, वट वृक्ष एक भारी है ।
करें यहीं विश्राम यहीं, इच्छा दिलमें धारी है ।।

दौड— देख छाया खुश मन हैं, खिला जैसे गुलशन है।
नगर में अनुज पठाया, जो कुछ थी इच्छा सबही
खाना पीना ले आया ॥

दो.— भोजन कर श्री रामजी, वैठे आसन लाय।
शोभा अद्भुत वट वृक्षकी, सोच रहे मन मांय ॥

यह वृक्ष विशाल अनुपम है, वल्ली भूमि पर लटक रही।
है चहुं ओर दाढी जिसके, कुछ गाडी धरण कुछ चिपट रही॥

या गृह के मानिन्द बना हुआ, और वडी दूर तक छाया है।
एक पास सरोवर भरा हुआ, निर्मल जल अति सोभाया है॥
जब सूर्य अस्ताचल पहुंचा, श्रीराम ने संध्या ध्यान किया।
आ गया समय जब निद्राका, निज निज आसन विश्राम किया॥
लक्ष्मण जाग रहा पहरे पर, अतुल वीर बलधारी है।
अब विजय नगर का हाल सुनो, जिसका संबंध आगारी है॥

गाना-नं० ३८ (वनमाला कुमारी का वर्णन) (कव्वाली)

महीधर नाम राजा का, विजयपुर राजधानी थी।
सुता का नाम वनमाला, रूप में जो इन्द्राणी थी ॥ १ ॥
सुनी शोभा थी लक्ष्मण की, बालपन से ही लडकीने।
पति इस जन्म का लक्ष्मण, यही दिल बीच ठानी थी ॥ २ ॥
भेद रानी के द्वारा सब, मिला पुत्री का राजा को।
ठीक है लखन संग शादी, यही सब दिल समानी थी ॥ ३ ॥
राम लक्ष्मण गये वन में, सुना जब हाल राजाने।
लगा व्याहने पुरेन्द्र नृप को, चढ़ती जवानी थी ॥ ४ ॥
लगी सोचन वह बनमाला, करूं न और संग शादी।
वसा लक्ष्मण ही था मनमें, तृण सम जिंदगानी थी ॥ ५ ॥

छं.— इन्द्रपुर पुरेन्द्र भूप से, व्याहने की नृप मंशा करी ।
लक्ष्मण विना व्याहुं नहीं, पुत्रीने यह मनमें धरी ॥
जिसको दिया न्यौता पिताने, एक दिन वह आयगा ।
क्या बनाऊंगी मैं फिर, यह धर्म मेरा जायगा ॥

इससे अच्छा प्राण अपने, खतम पहिले ही करूं ।
जंगल में जा वट वृक्ष ऊपर, ला गले फांसी मरूं ॥

रात को ले हाथ में, सामान महलों से चली ।
पास पहुंची वृक्ष के तो, कौमुदी रजनी खिली ॥
तल्लीन थी निज ध्यान में, कुछ भी नजर आता नहीं ।
थे अतुल सुख सब तुच्छ, लक्ष्मण के विना भाता नहीं ॥

चौपाई- रामसिया निद्रागत सोवें । लक्ष्मण जागे दसों दिस जोवें ॥
देखी लक्ष्मण राजदुलारी । चन्द्र वदन मुख रूप अपारी ॥

दो.— लक्ष्मण मन में सोचता, रूप नारीका खास ।
या वनकी देवी कोई, वटपर जिसका वास ॥

(लक्ष्मण) हैं सच्चे मोती हेम जवाहिर, से पौशाक जडी सारी ।
थी रवि कीरणों के मानिंद, मस्तक पर शोभन उजियारी ॥
यह क्या कोई विजली टूट पडी, जो नहीं समाई अंबर में ।
मानिन्द सिया के आकृति, जैसे थी खास स्वयंवर में ॥

वह शशि एक तो चढा व्योम, दूजा जल में प्रतिविंव पडा ।
दोनों को इसने मात किया, मैं देख रहा हूं खडा खडा ॥

अनमोल गौल विन्दी मस्तक पर, अपनी चमक दिखाती है ।
क्या सांचे में हैं ढला जिस्म, इन्द्राणी भी शरमाती है ॥

दो.— वनमाला वट पर चढी, पीछे लक्ष्मण लाल ।
जो भी कुछ करने लगी, देख रहा सब हाल ॥

बांधा रस्सा वट टहनी को, कर फांसी आकार।
बनमाला कहने लगी, स्वर कुछ मन्द उच्चार ॥
बिना सुमित्रानन्द के, सभी पिता और भ्रात।
अब न तो परभव मिले, करती हूं निजघात ॥

चौ. (,,) मैं सिवा लखण न वरूं और को, अपने प्राण गंवाती हूं
परणावे पिता खास इन्द्र को, उस को भी नहीं चाहती हूं
कौन चीज फिर अन्य मनुष्य, इस कारण फांसी खाती हूं
इच्छा नहीं मुझ को जीने की, इस तन की बली चढाती हूं

दो.— पाश गले में डाल कर मरने को हुई तैयार।
तुरत आन लक्ष्मण ग्रही, बोले वचन उच्चार ॥

चौ. (**लक्ष्मण**)-जिसकी इच्छा तुझे भामिनी, वही खडा सामने तेरे है
कर्तव्य तेरा कायर पन का, बिल्कुल पसंद न मेरे है
देख मनुष्य को चमक पडी, किसने आ फांसी खोली है
कोई नकली बना समझ लक्ष्मण, बनमाला ऐसे बोली है

दो. (**बनमाला**)-कौन यहां तू छिप रहा, आन किया मोहे तंग
इस असली रंग वे तेरा, चढे न नकली रंग ॥

चौ. (,,) चढे न नकली रंग, खडा क्यों बातें बना रहा है।
चले न तेरे दम गज्जे, क्या पट्टी पढा रहा है ॥
बनवास गये हैं राम लखन, किस को बहकाय रहा है
जली हुई को मुझे कौन तू, आकर जला रहा है ॥

दो.— प्रणहित मरना ठाना है, तुच्छ यह प्राण जाना है।
नहीं त्यागूंगी निश्चय अपना, शील धर्म के सिवा नह
मुझ कोई भी शरणा ॥

दो (**बनमाला**)-अलग जरा हट जाइये, मुझे नहीं कुछ होश।
फांसी लेने दीजिये, रहें आप खामोश ॥

गाना नं. ३९ (वनमाला का लक्ष्मण को कहना)

न छेड़ो मुझे मैं. सताई हुई हूं ।
तपे जिगर से दिल, जलाई हुई हूं ॥ १ ॥
तुझे जिसकी चाहना, नहीं वह यहां पर ।
यह मुर्दा जिस्म, मैं उठाई हुई हूं ॥ २ ॥
जावो यहां से न, हम को सतावो ।
रंजो गम अलम् की, दुखाई हुई हूं ॥ ३ ॥
लई जिस पे फांसी, सभी सुख तजे हैं ।
उसी गुलसे लौ मैं, लगाई हुई हूं ॥ ४ ॥
इसी में खुशी हूं, तजूं मैं जिस्म को ।
अदम के इरादे पे, आई हुई हूं ॥ ५ ॥
करो गर कलम सर, तो अहसान मानूं ।
यह लो मैं तो सिर को, झुकाई हुई हूं ॥ ६ ॥

दो.नौ.(लक्ष्मण)-गुण माला तू किस, लिये होती है बेजार ।
मैं लक्ष्मण वह सो रहे, राम और सिया नार ॥

दो.नौ.(लक्ष्मण)-रामचंद्र सिया नार हमी तीनों वन को जाते हैं ।
यदि नहीं विश्वास, देखलो तुम को दिखलाते हैं ॥
नामांकित मुद्रिका पढलो, तुम खुद ही समझाते हैं ।
निश्चय कर लो सूर्य वंशी, क्षत्रिय कहलाते हैं ॥

दौड़— सिया के दर्शन पाओ, उतर अब नीचे आओ ।
सुमित्रा का जाया हूं, सेवा करने मैं भाइ के
संग वन में आया हूं ॥

दो.— लक्ष्मण के ऐसे सुने, वनमालाने वैन ।
परीक्षा कारण देखने, लगी उठाकर नैन ॥

दृष्टि झट झुकगई नीचे को, मानिन्द रवि के तेज वडा।
शुभ थे बतीस सभी लक्षण, और शूर वीर अति तना खडा॥
बनमाला किया विचार नहीं, कोई और इन्हों की शानी की।
और नामांकित मुद्री पढ कर, फिर दर्श किया सिया रानी का॥

दो.— खुली आंख सियाराम की, देखी सनमुख नार।
लक्ष्मण ने फिर कह दिया, सभी बात का सार॥

चौ.— सियाराम को प्रसन्नता से, बनमाला शीश झुकाती है।
और अगला पिछला हाल सभी, निज भेद खोल दर्शाती है॥
सन्तोष दिलाकर श्रीरामने, सीता पास वैठाइ है।
अब उधर महल में बनमाला की माता अति घबराई है॥

दो.— हा! बनमाला कहां गई रानी रही पुकार।
शोर एक दम से मचा, महलों के मंझार॥
सुना हाल जब राजाने, जैसे हृदय में बाण लगा।
सब मारे मारे फिरते हैं, सेवक कोई महलों फिरे भगा॥
और खडे सिपाही जगह जगह, पल्टन चहुं तर्फी फैल गई।
जुम्मेवारीथी जिन जिन की, उन सबकी तबीयत दहल गई॥
सब फिरे गुप्तचर जगह, अब लगी तलाशी होने को।
और दूर दूर कई दिये भेज, जहां मिले रास्ते टोहने को॥
कुछ सेना निज साथ लई, राजा जंगल की और वढा।
वहां पास सरोवर वृक्ष तले, कुछ इष्ट चिन्ह सा नजर पडा॥
थे दो अलबेले शूर एक बैठा, और दूसरा पास खडा।
फिर नजर पडी बनमाला पर जब राजा आगे और वढा॥
बनमाला ही है विश्वास हुआ तो, भूप अति झुंजलाया है।
पकडो इनको आगे वढकर, योद्धों को हुक्म सुनाया है॥

बस चर्म उडा दो मार मार कर, जब तक न सत्य बतावेंगे ।
यह दुष्ट चौर डाकू जन, अपने कर्मों का फल पावेगें ॥
जब सुना भूपका कथन, शूरमा आग बमूका हो रूरे ।
अब समय देखकर अनुज भ्रात भी, नाहर की मानिंद घूरे ॥

दो. नौ.-बोली की गोली लगी, हुई जिगर के पार ।
लक्ष्मण ललकारे उधर, धनुषबाण करधार ॥

चौ. नौ.-धनुषबाण कर धार एकदम, दलमें कूद पडा है ।
घनघोर शब्द टंकार तडित्, सम सुन दल कांप पडा है ॥
लक्ष्मण की शक्ति को राजा, देखे खडा खडा है ।
देखे भागते शूर भूपका, हृदय उछल पडा है ॥

छोड.— भूप मनमें घबराया, अश्व पीछे को हटाया ।
भेद लक्ष्मण ने पाया, देख साफ मैदान अनुजने
ऐसे वचन सुनाया ॥

दो.-- ऊंचे स्वर से कह रहे थे, कुछ करो विचार ।
वृथा जोश में आनकर, बढ़ा लई है रार ॥
मैदान में पीठ दिखा जाना, यह क्षत्रापन का धर्म नहीं ।
क्या वनमाला क्या हम हैं, तुमने जाना कुछ भी मर्म नहीं ॥
अपशब्द जबां से कह डाले, क्या आई तुमको शर्म नहीं ।
अंधे बने क्रोधानल में, और पाया कुछ भी मर्म नहीं ॥
पीठ दिखाकर क्षत्रापन क्यों, पानी बीच बहाते हो ।
वह चीज नहीं कुछ तोप किले, जिनपर तुम जाना चाहते हो ॥
लेने आये थे वनमाला, उसको भी आप विसार चले ।
कुछ बचा हुआ जो गौरव था, वह आज धूर में डार चले ॥
इस वनमाला को ले जाओ, हम आपकी इज्जत चाहते हैं ।
मत घबराओ अब खडे रहो, हम निर्भय तुम्हें बनाते हैं ॥

अपशब्द सहित यह बतलाओ, किसको तलवार दिखाई है।
जो दशरथ नंदन रामचन्द्र का लक्ष्मण छोटा भाई है ॥

दो.— सियाराम और लखन हैं, सुने भूपने बैन ।
फेंक दिये हथियार सब, लगे इस तरह कहन ॥
प्रभु आप हैं मुझको ज्ञात नहीं, सब दोष क्षमा अब करदीजे।
गंभीर आप शक्तिशाली, अपशब्द मेरे सब जर लीजे ॥
में आज महा प्रसन्न हुआ, क्योंकि मन वांछित योग मिला।
यह राज पाट सब आपका है क्या महल खजाना फौज किला ॥

दो.— सीधी दृष्टि जब बने, दुःख सब जाय पलाय।
रणभूमि में परस्पर, हुआ प्रेम सुखदाय ॥

चौ.— बोले लक्ष्मण श्रीरामचन्द्र हैं, दोष क्षमा करने वाले ।
हम तो सेवक उन चरणों के, जो आज्ञा सिर धरने वाले ॥
फिर उसी समय भूपालने जा, श्रीराम को शीश नवाया है।
और विनय सहित अति नम्र होकर, कोमल वचन सुनाया है ॥

दो (राजा)-निस्संदेह मैंने किया, आज महा अपराध ।
किन्तु दर्शन आपने, दिये अहो धन्यवाद ॥
क्षमा सभी अपराध करो, फिर आप पधारो महलों में ।
शुभ उत्तम बुद्धि कहां प्रभु, हम जैसे बनचर बेलों में ॥
सब इच्छा पूर्ण हुई मेरी, और प्रतिज्ञा बनमाला की ।
और बीच में जो कुछ विघ्न पडा, यह हुई समय की चालाकी॥

दो (राम)-आपने निज कर्तव्य किया, हमें नहीं कुछ रोष ।
अनुचित जो इस में हुआ, सब कर्मों का दोष ॥
किन्तु घाव भर जाने पर, पीडा का नाम निशान नहीं।
जब दिल में प्रेम उमड आवे, फिर वहां विरोध का काम नहीं॥

यह सब दुनियां का चक्र एक, व्यवहार मात्र से चलता है ।
व्यवहार का जो अपमान करे, वही अपने कर मलता है ॥
कभी दृष्टि दोष से हितकारी भी, अरि नजर में पडता है ।
उल्टे का सीधा बन जाता, जब पुण्य सितारा चढता है ॥
यह देवी वनमाला बैठी, राजन् अपने संग ले जाओ ।
अब निर्भय हमने किया तुम्हें, कुछ भय न जरा मन में खाओ ॥

दो.-- तन मन प्रसन्न भूपाल का, सुनकर अमृत बैन ।
हाथ जोड कर नम्र हो, लगा इस तरह कहन ॥

कृपा सिन्धु कृपा निधान अब, गृह को चल कर पावन करें ।
इन शुष्क हृदयों के लिये आप, अमृत वर्षाका सावन करें ॥
अष्टांग ज्योतिषी से चलकर, अब साहेको सुधवाना है ।
फिर लक्ष्मणजी संग, वनमाला का जल्दी विवाह रचाना है ॥

दो— विनती करके ले गया, राज महल में साथ ।
उत्सव नगरी में हुआ, सभी नमावें माथ ॥
सेवा करी राम लक्ष्मण सीता, की और सम्मान दिया ।
रघुकुल दिनेश को सिंहासन पर बैठा कर प्रणाम किया ॥
जब सभा ऐन भरपूर हुई, दर्शक जन दर्शन करते हैं ।
उस समय 'महीधर' भूपराम, आगे यों गिरा उचरते हैं ॥

दो. (राजा)-नम्र निवेदन है यही सुनिये कृपा निधान ।
किस दिन होना चाहिये, शादी का सामान ॥
बोले राम सुनो राजन, इस समय विवाह का काम नहीं ।
भ्रमण हमारा वनमें है, और निश्चय कोई धाम नहीं ॥
उसी समय सब कुछ होगा, जब पुरी अयोध्या आवेगें ।
बस विदा करो अब तो हमको, जहां लगा ध्यान वहां जावेगें ॥

दो.— इतने में एक दूत झट, आया सभा मंझार।
ऐसे महीधर सामने, खोला कथन पिटार॥

दो. (दूत) क्षत्रिय कुल मणिमुकुट, संकट भंजन हार।
कृपा सिंधु मेरी करो, नमस्कार स्वीकार॥
गौरवशाली भूपति, शूर वीर सिरताज।
विन्ध्या पुरवर नगर से, आया हूं महाराज॥
अति वीर्य नृपने भेजा, उनका प्रणाम बताता हूं।
मैं आया हूं जिस कारण सारा भेद, खोल समझाता हूं॥
भरत भूप संग रणभूमी में, युद्ध नित्य अति जारी है।
अवधेश भरत की सेना अब तक, हटी न जरा पिछाडी है॥

श्री भरत भूप संग भूप बहुत आये कुछ कहा न जाता है।
जहां युद्ध हो रहा घोर शब्द, सुन फलक जमीं लर जाता है॥
अब दल बल लेकर चलो, भूपने आपको जल्द बुलाया है।
बस आपके वहां पहुंचते ही, होगा निजपक्ष सवाया है॥

चौपाई (दूत) काम पडे पर करे सहाई, सोही मित्र जगत् के मांही।
विपद समय करे टालमटोला, सो तो पोल ढोल समबोला॥

दो.— मन में सोचा भूपने, बने किस तरह काम।
हां, ना, कर सकता नहीं, बैठे लक्ष्मण राम॥
महीधर पड़ा विचार में, बोल उठे श्रीराम।
अहो दूत कहो किस लिये, लगा होन संग्राम॥
कहे दूत महाराज समझ, मेरी में ऐसा आता है।
नृप अतिवर्य बलवान, भरत को आन मनाना चाहता है॥
निर्भय स्वामी बलवान हमारा, भरत भूप कोई चीज नहीं।
है देर इन्हीं के जाने की, शत्रु का मिलना बीज नहीं॥

दो.— बुद्धिमान शत्रु भला, शठ मित्र दुःखदाय ।
जैसे नीम से रोग क्षय, प्राण किंपाक से जाय ॥

(,,) कहे दूत से महीधर, दलबल कर तैयार ।
आते हैं जाकर कहो, रण भूमी मंझार ॥

छं.— दूत भेजा उधर को, फिर राम से कहने लगा ।
समझाके आऊं मित्र को, विश्वास यों देने लगा ॥
शठता करी अतिवीर्य ने जो, भरत से झगडा किया ।
बावने विग्रह का मानों, सिंह को न्योता दिया ॥
मर्म कुछ जाना नहीं, युद्ध भरत से करने लगा ।
जिनका हूं मैं सेवक मदद, मुझ से ही फिर चाहने लगा ॥
जाता हूं संधि परस्पर दोनों, की मैं करवाय दूं ।
यदि माना नहीं अतिवर्य तो, फिर मान सब गिरवाय दूं ॥
सुन राम बोले बात यह, हम को नहीं मंजूर है ।
सब विकल चित्त बनता वहां, जहां पर बजें रणतूर हैं ॥

दो.(राम)-हम जाते हैं उस जगह, पुत्र तेरा ले साथ ।
आप कष्ट न कीजिये, है स्पष्ट यह बात ॥
क्या शक्ति थी नट जाने की, झट वचन भूपने मान लिया ।
कुछ सेना रामने कुमर सहित, ले उसी तर्फ प्रस्थान किया ॥
हम आते हैं अतिवीर्य को, लक्ष्मणने पत्र पठाया है ।
और नगरी नंदावर्त पास जा, तंबू डेरा लाया है ॥

दो.— देवी उस उद्यान की, कहे राम से आन ।
मुझ को भी कर दीजिये, आज्ञा कोई प्रदान ॥

दो.(राम)-तुम लायक कोई काम न बोले राम नरेश ।
तब देवी कहने लगी, कुछ तो देओ आदेश ॥

दो.-(राम) यदि प्रबल इच्छा तेरी तो कर इतना काम।
सेना सब ऐसे लगे, जैसे नार तमाम ॥

दो.— फौज जनानी कर दई, देवीने तत्काल।
आश्चर्य में लीन हो, जो कोई देखें हाल ॥

जब अतिवीर्य ने सुना फौज, आई तो मन हर्षाया है।
और था पूर्ण विश्वास महीधर, मदद हेत खुद आया है ॥
लगा पता फिर थोडी सी कुछ फौज, जनानी भेजी है।
यह देख हाल अतिवार्य भूपको, आई झट अति तेजी है ॥
उपहास्य किया कोई कहे, महीधरने भेजी फौज जनानी है।
विश्वास घात किया कोई कहे, कृतघ्नता दिल में ठानी है ॥
फिर अतिवीर्यने मंत्री जन को, ऐसा हुक्म सुनाया है।
सब वांपिस कर दो सेना, यह क्या दुष्ट ने स्वांग रचाया है ॥
फिर द्वारपालने आकर के, इतने में अर्ज गुजारी है।
सब फौज जनानी तेजी से, घुस रही नगर मंझारी है ॥
घृत सिंचित अग्नि जैसे, एक दम से लपट दिखाती है।
या यों समझो जैसे लकडी, जल भुन कोला बन जाती है ॥

दो.— यों जल भून कर भूपाल ने, आज्ञा दी तत्काल।
अर्धचन्द्र धक्का देवो, सब को बाहर निकाल ॥

जब सुभट गये धक्के देने, तो उधर मोर्चा अड़ा खड़ा।
अब लगी लडाई होने वहां, कहीं शीश और धड कहीं पडा ॥
हो रहा घोर संग्राम जहां, राजा हस्ती पर चढ आया है।
उस नारी फौज का देख तेज, अतिवीर्य दिल घबराया है ॥
फिर अतिवीर्य ने ललकार दई, आगे निज कदम बढाये हैं
अब फैर हौंसला किया शूर में, भूज एकदम आये हैं।
उधर शूरमा ललकारे, टंकार धनुष्य लक्ष्मण लाया ॥
मैदान छोड सब फौज भगी, नृप लक्ष्मण के काबू आया ॥

छं.— केश पकडे अनुजने, बांधा है मुश्क चढ़ाय के ।
जा राम पे हाजिर किया, बाकी भगे घबराय के ॥
संकोच माया का किया, देवीने सब नरतन हुवे ।
देखे तो क्या श्रीराम लक्ष्मण हैं, खडे दर्शन हुवे ॥
श्रीराम के चरणों में पडा, अतिवीर्य नृप तत्काल है ।
बोले क्षमा मुझको करें, सब आपका धनमाल है ॥
कुछ ज्ञात मुझको था नहीं, हे नाथ ! तुमही हो खडे ।
अन्याय का फल मिल गया, और धूर भी मम सिर पडे ॥

दो.— रामचन्द्र कहने लगे, अतिवीर्य सुनबात ।
जैसा मुझको भरत है, वैसा तू भी भ्रात ॥
क्षमा किया अपराध सभी, अब आगे जरा विचार करो ।
तुम भरत भूप से संधी करके, निर्भय अपना राज्य करो ॥
अतिवीर्य कहे महाराज सुनो, अब दुनियां से दिल विरक्त हुआ ।
अब यौवन गया बुढ़ापा है, तप संयम ध्यान में चित्त हुआ ॥

चौपाई- राज विजय रथ सुतको दिया । सिंह गुरु पे संयम लिया ॥
तज जंजाल हुए-मुनिराज । तप जप किया निज आत्मकाज ॥

दो.— भरत भूप की आन में, किया विजय रथ राय ।
दारुण दुःख सब दूर कर, झगडा दिया मिटाय ॥
नृप विजय रथने बहन रतीमाला, लक्ष्मण को परणाई ।
और विजय सुन्दरी भगिनी दुसरी, भरत भूप को है व्याही ॥
बस फेर वहां से चले राम संग, सेना विजय पुरी आई ।
नृप महीधर ने सम्मान किया, वनमाला मन में हर्षाई ॥

दो.— महीधर से आज्ञा लई, वन जाने की राम ।
लक्ष्मण से कहने लगी, सा वनमाला ताम ॥

दो. (बनमाला) प्राणदान दातार तुम, अब क्यों तजो निराश।
दासी की यह विनति, चलूं साथ बनवास ॥

छं. (बनमाला) है दुःख विरह का अतुल, यह मुझसे सहा नहीं जायगा।
याद कर कर आपकी यह, मन मेरा घबरायगा ॥
सीता की सेवा मैं करूंगी, तुम करो श्रीराम की।
सोचलें मन में जरा, मैं तो हूं साथिन जान की ॥
बोले अनुज अयि भामिनी ! ज्यादा न हठ अब कीजिये।
वापिसी में साथ लेगें मन को तसल्ली दीजिये ॥
समझाय बनमाला को लक्ष्मण, राम आगे को चले।
थकती जहां सीता वहां विश्राम लेते द्रुम तले ॥

दो.— वन खण्ड से आगे बढे, क्षेमांजल पुर पास।
उद्यान देख कहने लगे, मिला दृश्य यह खास ॥

चौ.— थे बाग जलाशय स्वाभाविक, अद्भुत ही रंग दिखाते हैं।
क्या यही स्वर्ग का टुकडा है, जो कवि कथन कथ गाते हैं॥
उसी जगह विश्राम किया, फल फूल अनुज कुछ लाते हैं।
फिर संस्कार किया सीताने, सियाराम अनुजने खाये हैं ॥
जब आहार किया फल फूलों का, नहीं अन्न की दरकार रही।
तब देख देख खुश होते हैं, नहीं मिला दृश्य यह और कहीं।
फिर अनुज राम की आज्ञा पा, नगरी की सैर सिधाया है।
नृप शत्रु दमन की प्रतिज्ञा का, भेद अनुज ने पाया है ॥

छं.— भेद सब एक, मनुष्य से श्री अनुज ने पूछा तभी।
वृत्तान्त यह उस पुरुषने, लक्ष्मण को समझाया सभी ॥
शत्रु दमन राजा यहां, शक्ति का न कोई पार है।
भूप हैं आधीन कई, सबका यही सरदार है ॥

है जित पद्मा पद्मनी, प्रत्यक्ष पुत्री भूप की ।
तुलना न कर सकता कोई, उस पुण्य रूप अनूप की ॥
मेरी शक्ति का वार अपने, तन पे सह लेगा कोई ।
जित पद्मा मेरी पुत्री को, फिर विवाहेगा वही ॥
आज तक आया न कोई, सहे न को शक्ति भूप की ।
मौत के वदले कोई, करता न चाहना रूप की ॥
सुन अनुज लाई चाट, धौंसे पर करी न वार है ।
फिर वहां पहुंचे लगा था, खास जहां दरवार है ॥
देखी शोभा अनुज की, बांकी अदांका जवान है ।
शत्रु दमन कहने लगा, मुझ को वता तू कौन है ॥
कहे लखन दूत मैं भरत का; स्वामी के आया काम हूं ।
प्रतिज्ञा पूरी करने तेरी, आ गया इस धाम हूं ॥

दो.— क्रोध भूप को आगया, सुना दूत का नाम ।
राजपुत्र विन और को, विवाहना अनुचित काम ॥
यह होकर दूत भरत का, मेरी पुत्री व्याहने आया है ।
तो समझ लिया मैंने अव इसको, काल शीस पर छाया है ॥
अव मारूं एक तान शक्ति इसको, परभव पहुंचा देऊं ।
जो शक्ति इसका नास करे, पहिले वह इसे दिखा देऊं ॥

दो (शत्रु.द)-जो शक्ति सहनी पडे, उसको जरा पहिचान ।
परभव को पहुंचायगी, जिस दम भारी तान ॥

दो (लक्ष्मण)-सह सकता हूं पांच मैं, कौन चीज है एक ।
परीक्षा अव कर लीजिये, खडा सामने देख ॥

चौ.— फिर क्रोधातुर हो अति भूपने, शक्ति हाथ उठाई है ।
और देख सूरत उस लक्ष्मण की जनता सव घवराई है ॥

यह देख वार्ता एकदम सब, लक्ष्मणजी को समझाते हैं।
और बोली उधर पद्मा पितासे, क्यों इसकी जान गंवाते हैं॥
बस यही हो चुका पति मेरा, इसके संग शादी कर दीजे।
न ब्याहूं और किसी को भी, यह शक्ति हाथ से धर दीजे॥
जैसे घी डाला अग्नि में, भूपाल को ऐसे क्रोध चढा।
निज शक्ति लाकर सभी, अनुज पर राजाने प्रहार जड़ा॥
किये दो प्रहार भुजाओं पर, और दो हाथों पर मारे है।
लख आश्चर्य में भूप हुआ, हैरान सभासद सारे हैं॥
सोचा कि कहता दूत किन्तु यह दूत नजर नहीं आता है।
यह शक्ति में बलवीर अतुल, जो तनिक नहीं घबराता है॥

दो.— मन ही मन में भूपको, आश्चर्य हुआ अपार।
और मुस्काता हुआ इस तरह, बोला वचन उचार॥

प्रहार पांचवा अय लड़के, हम तुझे माफ फर्माते हैं।
तब बोले अनुज क्यों मेरे, क्षत्रापन को बट्टा लाते है॥
प्रहार पांचवे की नृपने, फिर सरपे चोट लगाई है।
कुछ असर नहीं हुआ लक्ष्मण पर, यह देख सभा हर्षाई है॥

दो.— राज कुमारी ने तुरत, पहिनाई वरमाल।
परणो अब पुत्री मेरी, यों बोले भूपाल॥
अनुज कहे उद्यान में, बैठे हैं श्रीराम।
सेवक हूं रघुवीर का, करूं बताया काम॥

चौ.— श्रीराम सिया लक्ष्मण है, सुनकर राजा मन में हर्षाया।
फिर विनय सहित तीनों को, अपने महलों के अन्दर लाया॥
अति प्रेम से भोजन करवा कर, भूपति ने प्रेम वढाया है।
फिर आज्ञा ले श्री रामचन्द्रजी, आगे को चल धाया है॥

दो — चलते चलते आगया, वंशस्थल गिरी देश ।
वंशस्थल पुर नगर में, पहुंचे राम नरेश ॥
नरनारी उस नगर के, देखे सभी उदास ।
पूछा तब श्रीरामने, बुला मनुष्य एक पास ॥

चौ. (नर) कहे मनुष्य महाराज रात को, एक शब्द भयानक होता है ।
और साथ एक तुफान चले, वह कष्ट सहा नहीं जाता है ॥
दिन को यहां श्याम होते, कहीं और जगह जा सोते हैं ।
उस महा उपद्रव से नरनारी, बच्चे बूढे रोते हैं ॥

दो.— श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, देखो सब रंग ढंग ।
जल्दी आकर के कहो, चलें फेर हम संग ॥

छं.— यह कथन सुन श्रीराम का, सुमित्रानन्द देखन को चला ।
दो मुनि आये नजर, कुछ और न वहां पर मिला ॥
लक्ष्मण ने आकर हाल जो, देखा था सब बतला दिया ।
श्रीराम ने मुनियों के जा, चरणों में डेरा ला दिया ॥

दो.— विधि सहित वन्दना करी, पांचो अंग नमाय ।
कुछ दूरी पर द्रुमतले, बैठे आसन लाय ॥

चौ.— श्रीराम बजाते हैं वीणा, लक्ष्मण सुर ताल उच्चार रहे ।
उस जंगल में हो रहा मंगल, निंजशुक्ल ध्यानमुनि ध्याय रहे ॥
अर्ध रात्रि में अनल प्रभ, सुरने रूप भयंकर किया भारी ।
तूफान सहित स्वर शब्द, भयानक करता आ रहा दुःखकारी ॥

दो.— मुनियों को देने लिये, दुःख आया वैताल ।
रूप भयानक अति बुरा, जैसे कोपाकाल ॥

चौ.— श्रीराम सिया लक्ष्मण बैठे हैं, पुण्य प्रताप प्रचंड बडा ।
सुर सह ना सका उस तेजी को, इस कारण उल्टा कदम पडा ॥

शुभ शुक्ल ध्यान शुद्ध होने से, मुनिजन को केवल ज्ञान हुआ।
जहां उत्सव करने सुरपुरसे, देवों का आगमन हुआ॥
करके ज्ञानोत्सव देव सब, निज निजस्थान सिधाये हैं।
फिर विधि सहित कर नमस्कार, सियारामने शीश नमाये है॥
यों बोले राम कहो भगवान्, कारण था कौन उपद्रव का।
कृपया यह सब फरमा दीजे, मिट जावे भ्रम सभी दिल का॥

दो.— कुल भूषण कहे केवली, सुनिये सभी स्वरूप।
पद्मिनी नामा नगरी में, विजय पर्वत भूप॥

अमृत स्वर मतिवन्त दूत, उपयोगा जिसकी नारी थी।
और उदित मुदित दो पुत्र जिन्हों की रूप कला कुछ न्यारी थी॥
वसुमुति एक मित्र दूतका, उपयोगा पर आशक था।
वह जाति का था उच्चवर्ण, मिथ्यामत धर्म उपासक था॥

दो.(,,)-प्रेमी को कहे प्रेमिका, अमृत स्वर को मार।
खटका सब मिट जायगा, भोगें सुख अपार॥

एक दिवस भुपने दूत, काम करने को कही पठाया था।
वसुभुति ने मार्ग में अमृत स्वर, परभव पहुंचाया था॥
फेर अधमने आकर, उपयोगा को यों समझाया है।
तू पुत्रौ को देमार बढे फिरराग, यही मन भाया है॥
यह लगा पता जब उदित मुदित को, क्रोध वदनमें छाया है।
वसुभुति को परभव पहुंचाने का, सब ढंग रचाया है॥
उदित कुमरने एक समय, वसुभुति परभव पहुंचाया।
मर इपदानल पल्ली में, वसुभूतिने भील जन्म पाया॥
वैराग्य भुपको हुआ छोड, संसार ध्यान तप जप लाया।
सब शत्रु मित्र समान मुनिने, तजा क्रोध लालच माया॥

संग उदित मुदित भी हुवे मुनि, निज आतम कार्य सारन को।
मार्ग में आ वही भील मिला, मुनिजन को धाया मारन को॥
तब पल्लि पति ने छुडवाया, गुरुजन मात्र का माना है।
कुछ पल्लि पति और उदित कुमर का, पूर्व हाल सुनाना है॥
जमींदार था जीव उदित का, पल्लि पति वहां पक्षी था।
छुटवाया लुब्धक से जो, इसके भक्षण का आकांक्षी था॥
पक्षी पल्लिपति आन हुआ, अनमोल मनुष्य तन पाया है।
और जैसी संगति मिले बने, वैसा ही मनवच काया है॥
वह कृषक जन्मा उदित आन, और मुदित दूसरा भाई है।
इस कारण अण गारों की, पल्लि पति ने जान बचाई है॥
उदित मुदित ने तप संयम को, आराध किया संथारा है।
महा शुक्र में जा देव हुवे, सुर करते जय जय कारा है॥

जन्मान्तर से वसुभूति भी, नरतन को धार हुआ तापस।
अज्ञान कष्ट जिन किया बहुत, तन में था भरा हुआ तामस॥

मिथ्या मति का था भरमाया, संसार बंधन का हेतु है।
वह उपना ज्योतिष्य चक्कर में, जा देव धूमवर केतु है॥

दो. (कुलभूषण) अरिष्ट पुरी नगरी भली, प्रियनन्दी भूपाल।
पटरानी पद्मावती, सुन्दर रूप रसाल॥

उदित मुदित ने महाशुक्र तज, पद्मावती के जन्म लिया।
जहां राज्य पाट सुख आन मिला, पूर्व शोभन था कर्म किया॥

श्री रत्न रथ और चित्र रथ, दोनों का नाम कहाया है।
छोटी रानी के उदर धूम केतूने जन्म आ पाया है॥

रखता था, विरोध निज भाइयों से, और अनुधर नाम कहाया है।
रत्न रथ को ताज दे, नृपने संयम ध्यान लगाया है॥

तप जप निर्मल कर राजऋषिने, उच्च देव पद पाया है।
अब सुन लीजे दशरथ नंदन, आगे जो हाल बकाया है
श्री प्रभा नाम एक अन्य भूप के, सुन्दर राज दुलारी थी
अनुधर कहता मुझे विवाह दो, उसको लगी यही विमारी थ
नृपने न विवाही अनुधर को, किसी अन्य भूपको पराए
अब आशा निराशा हुई अनुधर की, मन में अति आर्ति आ
फिर लगा उजाड़न देश भूप का क्रोध में अंधा बना हुआ
शिक्षा न हृदय में धरी किसी की, मान में ऐसा तना हुआ
तब पकड एक दिन राजाने निज कैद में उसे ठुकाया था
फिर रत्न रथ भूपने आकर, उसको तुरत छुडवाया था॥
जा बना तापसी तापस के डेरे, नहीं घर में आया है।
अशुभ कर्म की चाल सदा, उल्टी श्री जिन फर्माया है॥
प्रमाद महाशत्रु आत्म को सदा महा दुःख देता है।
और सम्यक्त्व धारी जीव कोई, शुद्ध ज्ञान चारित्र लेता है

दो. (कुल)-बाल कष्ट वहां पर किया, फेर भ्रमा संसार।
कभी पशु कभी नर्कमें, फिर तापस अवतार॥
अज्ञान कष्ट महा तप किया, करी कुगुरू की सेव।
मर हुआ ज्योतिषी देवता, अनल प्रभसो देव॥

चौ. (,,)-उधर रत्न रथ और चित्ररथ, दोनों ने संयम धारा है।
हुवे अतिवल महावल नाम, बारहवें सर्ग गये सुख भारा है
सुर पुर तज विमला रानी के, फिर हम दोनों ने जन्म लिया
कुल भूषण और देश भूषण, व्यवहार मात्र यह नाम दिया

छं. (,,)-बालपन से मात पितुने, भेज हम गुरुकुल दिये।
आचार्य के बर्ष बारह तक, हमे सुपुर्द किये॥

विद्या गुरु 'वर बोध' फिर लाया हमें नृप पास है।
राजा ने फिर परीक्षा लई, दरबार लाकर खास है॥
वहु परितोषिक दिया, भूपाल ने सम्मान से।
खुश कर दिया गुरुको पिताने, सार प्रीति दान से॥
फिर पास माता के चले, हम शीश पितु को नायके।
माता और वहनें नगर की, बैठी बहुत वहां आयके॥
एक महल पर बैठी दुलारी, नजर उस पे जा पडी।
हम अनुराग से देखन लगे, सूरत है क्या अद्भुत घडी॥

ो. (कुल भू.)-माता को हमने करी, चरणों में प्रणाम।
फिर पूछा यह कौन है, कहा मातने ताम॥
अय पुत्र तुम्हारे पीछे से, जन्मी यह राज दुलारी है।
तुम रहते थे गुरु कुल में यह, एक छोटी वहिन तुम्हारी है॥
हमने जव सुना वहिन अपनी, मन विरक्त हुआ सव भोगोसे
और समझ लिया नहीं वच सकते, दुनियां में ऐसे रोगोसे॥

ो. (,,)-राग किया निज वहिन पर, जो नहीं करने योग्य।
इस कारण हमने तजा, राज पाट संयोग॥

ीक (मुनि)-यह धार लिया संयम हमने, फिर आत्मज्ञान अभ्यास किया।
महा घोर तपस्या धारी तन पर, कई मास उपवास किया॥
फिर करते उग्र विहार इसी नग पर, आ ध्यान लगाया था।
मरने जीने की आशा तज, कायोत्सर्ग ध्यान जमाया था॥
और पिता धार अनशन पीछे, महा लोचन गरुड हुआ सुर वह।
जव अवधि ज्ञान से देखा हमें, आने को था गिरी ऊपर वह॥
था उसी समय श्री अतिवीर्य मुनिराज, को केवल ज्ञान हुआ।
वह पिता देव गया उत्सव पर, संग अनल प्रभ का ध्यान हुआ॥

चौपाई (,,)–उत्सव ज्ञान अधिक प्रकाशा, दया धर्म अमृत मुनि भाषा।
मानव देव परिषदा मांही, पूछत प्रश्न एक मुनिराई॥
अबके किसकी संख्या आवे, जो मुनि केवल ऋद्धि पावे।
कृपया कर कहो अन्तर्यामी, कौन मुनि होगा शिवगामी॥

दो. (,,) ध्यानस्थ मुनि दो हैं खडे, वंशस्थल के पास।
उन दोनों मुनि जनों को, होगा ज्ञान प्रकाश॥
सर्वज्ञ देवने फर्माया, कुल भूषण और देश भूषण।
शुभ ज्ञान दर्श चारित्र तप, चारों में नहीं कोई दूषण॥
केवल ज्ञान उन्हें होगा यह, अनलप्रभ ने सुन पाया।
और उसी समय क्रोधातुर हो, उपसर्ग हमें देने आया॥

दो. (,,) नित्य प्रति करता था यहां, शब्द भयानक आन।
और वैक्रिय शक्ति से, लाता था तौफान॥
कई दिवस हो गये किया, उपसर्ग बहुत दुःखकारी है।
यहां केवल ज्ञान में विघ्न हुआ, विपदा लोगों पर डारी है॥
अब देख तुम्हें सुन अनलप्रभ, हट गया पिछाडी घबराकर।
जब शुक्ल ध्यान निर्विघ्न हुआ, केवल प्रगटा हमको आकर॥

दो.— सुनवाणी सर्वज्ञ की, प्रसन्न चित्त अवधेश।
उसी समय चरणन गिरा, साधी सेव विशेष॥
झट महालोचन सुरने आकर, सियाराम से प्रेम वढाया है।
कुछ प्रत्युपकार करूं मैं भी, ऐसे मुख से फर्माया है॥
बोला कुछ सेवा बतलाओ, जो इच्छा आपको देवेंगे।
तब बोले राम जब इच्छा होगी, याद तुम्हें कर लेवेंगे॥

दो.— ज्ञानोत्सव करके गये, सुर निज निज स्थान।
तैयार हुवे श्रीराम भी, करने को प्रस्थान॥

वंशस्थल पुर पति आन, चरणोंमें शीश नमाता है ।
श्रीराम को ठहरने लिये, वेनती जनता से करवाता है ॥
रामगिरी धर दिया नाम पर्वतका, सयने उस दिनसे ।
उत्सव हुआ अति भारी, और दान दिया खुल्ले दिलसे ॥
अतिथियों के विश्राम हेत, प्रसाद वहां वनवाये है ।
फिर समय देख श्री रामचन्द्र ने, आगे कदम वढाये हैं ॥

चौपाई-उद्दंड दंडकारण्य अति आया, प्रवल सिंह सम भय नहीं खाया ॥
गिरी गुफागृह मानिंद पाया, अव कुछ निश्चल आसन लाया ॥
एक दिवस भोजन के वेले, चारण मुनि दो पुण्य समे ले ॥
द्विमासीक तप से तन सोहे, त्रिगुप्त सुगुप्त नाम मनमोहे ॥

दो. नौ.-भोजन गृह में समय पर, वैठे दोनों भ्रात ।
संस्कार सीता किया, वडे प्रेम के साथ ॥

चौ. नौ.-वडे प्रेम के साथ सिया ने, व्यंजन सभी वनाये ।
वह लब्धी धारक मुनि, वहां पर लेन पारणा आये ॥
देख मुनि श्री रामसिया, लक्ष्मणजी अति हर्षाये ।
और उसी समय कर नमस्कार, तीनों ने आहार वहराये ॥

दौड़— समागम मुश्किल पाया, चरणन गिर शीश झुकाया ।
दान देवों मन भाया, खुशी में आकर देवो नें
भी गंधोदक वर्षाया ॥

दो.— अहो दान उद्घोषणा, करे व्योम में देव ।
भेंट करें कुछ राम की, सोचें अमर स्वमेव ॥

चौ.— अश्व सहित रथ दिया अचित, एक रत्नजटी खेचर सुरने ।
गंधोदक वृष्टी कर के सव, देव गये निज निज घरने ॥
यहां वार वार मुनि चरणनमें, रघुपति ने शीश नमाये हैं ।
गइ फैल वासना गंधोदक की, सभी जीव सुख पाये हैं ॥

दो. नौ.- गंधोदक की वासना, फैली वन मंझार ।
गंधाभिध नामक पक्षी, के साता हुई अपार ॥
चौ. नौ.-साता हुई अपार जिसमें, लगी दाहथी भारी ।
पुण्य उदय चल आया, जहां थे राम मुनि तप धारी ॥
बैठ वृक्ष पर देख रहा था, लंबी नजर पसारी ।
जाति स्मरण हुआ ज्ञान, भावना दिलमें शुद्ध विचारी ॥
दौड.— दृष्टि गई पूर्व जन्ममें, तुरत फिर गिरा धरनमें ।
उठाया सीता ने करके मुनि चरणन गेरा पक्षी,
भरा रोग तन पर में ॥
दो. नौ.-लब्धी धारक मुनि के, चरण फरसे पक्षी ताम ।
हुई कंचन वर्णी देह को, देख अचंमे राम ॥
चौ. नौ.-देख अचंभे राम फेर, मुनि आगे अर्ज गुजारी ।
कौन कर्म का फल प्रभु इसने, भोगी विपदा भारी ॥
पूर्व हाल बतलाओ इसके, इच्छा यही हमारी ।
गला सड़ा जो तन था इसका, अब सुन्दर हितकारी ॥
दौड— सुगुप्त मुनि यों फरमावें, कर्म के फल बतलावें ।
ध्यान सिया राम लगावें, खंदक दंडक पालक के सब
भेद खोल दर्शावे ॥

❀ श्री स्कंधकाचार्य चरित्र-अधिकार ❀

दो. नौ -नृप था सावत्थी नगर में, जित् शत्रु बलवान ।
रानी जिस के धारिणी, शोभन गुण की खान ॥
चो नौ. (मुनि)-धर्मनथी गुणवान् पुत्र एक जन्मा खंधक प्यारा ।
चौंसठ कला प्रवीण, पुरन्दर यशा पुत्री सुखकारा ॥
बहत्तर कला का ज्ञाता, स्कंदक जैन धर्म का प्यारा ।
रंग मजीठी चढा धर्म का, चर्चावादी भारा ॥

दौड़— कुंभकार कट नगरी, दंडक राजा क्षत्री ।
पुरंदर यशा को व्याहा, अब देखो आगे गति कर्म,
की कैसा रंग खिलाया ॥

दो. सुगुप्तमुनि) पालक एक वजीरथा, नास्तिक दुष्ट स्वभाव ।
धर्मध्यान भावे नहीं, लाखों करो उपाव ॥

दो. नौ. (,,) दंडक नृप ने एक, दिन भेजा पालक काम ।
जित शत्रु भूपाल पे, ले आया पैगाम ॥

चौ. नौ. (,,) ले आया पैगाम भूपने, सेवा की हित करके ।
धर्मस्थान ले गया दिलावें, शिक्षा इसे दिल धरके ॥
सुनके धर्म कथा सबही का, हृदय कमल अति हर्षे ।
मिथ्या बस पालक सुन, निंदा करे क्रोध में भरके ॥

दौड़— निंदा सुन खंधक आया, तुरत शास्त्रार्थ लगाया ।
हुई तब चर्चा जारी, अन्त में पालक हुआ निरुत्तर,
खिष्ट सभा में भारी ॥

दो. (सुगुप्त) हार सभा के बीच में गया, स्वदेश मंझार ।
उपहास्य देख अपना अति, दिल में द्वेष अपार ॥

चौ (सुगुप्त) खंधक का दिल हुआ वैरागी, परउपकार करूं अब लागी ।
आज्ञा लेने माता पे आये, तब माताने वचन सुनाये ॥

दो. पू. जान हथेली जो धरे, वह ले संयम धार ।
यदि पीछे गिरना पडे तो, उससे भली वेगार ॥

चौ. पू. (माता)-उससे भली वेगार, क्योंकि यहां कष्ट समुह को सहना है।
यदि कोई गर्दन पर धरे, तेग तो दीन वचन नहीं कहना है ॥
राग द्वेष दो कर्म बीज को दिलमें, जगह नहीं देना है ।
कोई कष्ट आनकर पडे जिस्मपर, सम प्रणाम से सहना है ॥

दौड़.- न दृष्टि लोटावे, पैर आगे को बढ़ावे ।
भीरुता दूर भगावे, प्रतिज्ञा पर रहे दृढ़ चाहे,
खेल जानपर जावे ॥

दो. पू. (माता)-कहे श्री सर्वज्ञ ने, अष्ट प्रवचन सार ।
इनको धारे बिन कोई, हुआ न भव से पार ॥

चौ. पू. (माता)-पांच सुमति और तीन गुप्ती को,हरदम हृदय लाना है।
कहीं नीरस सरस जो मिले आहार सबसम प्रणामोंसे खानाहै॥
कर्म जंग में अड़कर के फिर, मरने से नहीं डरना है।
इस गंदे जिस्म की खातिर, क्षत्रिय कुलदागी नहीं करना है॥

दौड़- एक दिन सबने मरना, धर्म बिन और न शरणा।
यही भाव हृदय में धरना, चक्री तीर्थंकर गये छोड़,
यहां अमर किसी का घर ना ॥

गाना ४० माताका स्कंधक कुमारको समझाना (तर्ज-निहालदे की)

वासी भी खाना मेरे खंधक और जमीं का सोवना ।
कठिन यह वृति मेरे, खंधक सधने की नाहीं ॥
कटुक वचन मेरे, बेटा जब बरसेगें वाण सम ।
बाईस परिषह मेरे बच्चे तू, सहने का नाहीं ।
चार महाव्रत धारने होगें,
जीवित ही मरना है बेटा धरणी की न्याई ॥

दो. नौ. (खंधक)-माता तेरे सामने, लई प्रतिज्ञा धार ।
समदम खम को धारके, करूं धर्म प्रचार ॥

चौ. नौ. (,,)-करूं धर्म प्रचार पूर्ण, कर्तव्य सभी कर दूंगा ।
चाहे सिर कट जाय किंतु, पीछे नहीं कदम धरूंगा ॥

सत्याग्रह अनादि नियम, जैन का हृदय यही धरूंगा ।
धर्म प्रचार के लिये मात, कुर्बान जिस्म कर दूंगा ॥

दौड़— मुनि का बाना पाऊं, देश दंडक के जाऊं ।
धर्म झंडा लहाराऊं, अज्ञान अंध में पडे जीवों को
सत्य धर्म दर्शाऊं ॥

दो. (सुगुप्त)-माता ले गई पुत्र को, मुनि सुव्रत स्वामी पास ।
हाथ जोड़ कहने लगी, सुनो प्रभु अर्दास ॥

चौ पू. (माता)-सुनो प्रभु अर्दास, आपको अपना पुत्र देती हूं ।
मोह कर्म बंध का भय मुझको, इस लिये विरह को सहती हूं ॥
अब माता पुत्र सम्बंध नहीं, खंधक को अंतिम कहती हूं ।
इस कर्म जंग में अडकर, पीठ न देना शिक्षा देती हूं ॥

दौड़— माता गई घर मंझारी, पुत्रने दीक्षा धारी ।
लिये महाव्रत सुखकारी, तपस्या में लीन गुरु के
हरदम आज्ञा कारी ॥

दो. नौ. (सुगुप्त) हुवे खंधक मुनि के पांचसौ, शिष्य अरिदल चूर ।
शान्तरूप तप संयमी, विद्या में भरपूर ॥

चौ. नौ. („) विद्या में भरपूर हुवे, सम्मति मेलन को ।
कहे खंधक घर नहीं छोडा, हमने खाली पेट भरन को ॥
वह राज्य ऋद्धि सुख तजे सभी, स्वपर उपकार करण को ।
धीर वीर गंभीर बनो, आपत्ति सभी जरन को ॥

दौड़— प्रचार को जिसने चलना, तो जान हथेली धरना ।
निश्चय है एक दिन मरना, शान्तरूप हो सहो कष्ट,
पर पीछे कदम न धरना ॥

दो. (शिष्यमंड.) सभी हम जो पांचसौ, कर्म जंग जुझार ।
तन मन सब तुमको दिया, करो जो हो स्वीकार ॥

चौ. पू. (,,) करो जो हो स्वीकार, आपको जान हथेली धरली है।
प्रचार कार्य में जुडने को, अब कमर सबने कस ली है॥
जो पडे कष्ट वह सहन करे, चाहे टूटें नस नस पसली है।
यह जिस्म साथ नहीं जाना हमने, सोचा सभी कुछ कर ली है।

दौड— पेट तो खर भी भरते, शूर रणक्षेत्र लडते।
उपसर्ग सभी हैं सहते, जिन आज्ञा पालन में देवें
जान यही दिल धरते हैं॥

दो. नौ. (सुगुप्त)-दृढ़ संकल्प सबने किया, खंधक आदि ऋषि महान्।
आज्ञा लेने प्रभु पे गये, करी चरण प्रणाम॥

चौ. नौ. (,,)-करी चरण प्रणाम, प्रभुजी हम जावें विचरने को।
दंड़क राजा को समझाने, और उपकार करने को॥
सत्य धर्म स्थापन मिथ्या, नास्तिक पाप हरन को।
पुरंदर यशा को दृढ करन, निज पूर्ण करन प्रण को।

दौड— प्रभुजी यों फर्मावें, उपद्रव हो दर्शावें।
होनहार बतलावे, सिवा तेरे सब का सिद्ध कार्य,
अन्त मोक्ष में जावे॥

दो. (स्कंधक)-सर्वज्ञों के वचन को, कोई न टालन हार।
होनहार होगी वही, पर यह भी परोपकार॥

चौ. नौ. (स्कंधक)-यह भी उपकार पांचसौ, के सिद्ध कार्य होवें।
धर्म काम में लगे जिस्म तो, दुःख समुह को खोवें॥
करेंगे उग्र विहार सभी जन के, दिल का दुःख खोवें।
हर व्यक्ति के दिल अन्दर, हम बीज धर्म का बोवें॥

दौड.— ज्ञान वर्षा वरसा कर, मिथ्यात्व को दूर नसा कर।
धर्म द्विविध दर्शाकर, अज्ञान रूप वन धसें हस्तिगण
को ज्यों सिंह भगाकर॥

दो.(सुगुप्ति)-खबर लगी श्री संघको, मुनि दंडकदेशमें जांय ।
नम्र निवेदन यूं करें, चरणन शीश झुकाय ॥

गाना नं. ४१ (श्री संघ एवं स्कंधकाचार्य का सम्मिलित)

श्रीसंघ-अर्ज श्री संघकी स्वामिन्, देश दंडक के मत जावें
स्कंधकाचार्य-प्रतिज्ञा टला नहीं सकती, चाहे अंतक निगल जावें ॥टेर॥
श्रीसंघ-सभी नास्तिक वहां बसते, दुष्ट पापी अनाडी है ।
भरे अज्ञान से हृदय, साफ कैसे किये जावें ॥ १ ॥
स्कंधकाचार्य-बहाकर ज्ञान का दरिया, मिथ्या अज्ञान धो दूंगा ।
सुधारूंगा उन्हें सह लूं चाहे, महाकष्ट आजावे ॥ २ ॥
श्री संघ-स्वल्प यह लाभ है वहां का, यहां अनमोल जिंदगी है ।
जिसे हम कह नहीं सकते, वही न कष्ट आजावे ॥ ३ ॥
स्कंधकाचार्य-आत्मा सब बराबर हैं, भेद है सिर्फ कर्मों का ।
उन्हें सम्यक्त्व आजावे, यहां चाहे प्राण भी जावे ॥ ४ ॥
श्रीसंग- विनय यह सार चरणोंमें, आप यदि रुक नहीं सकते ।
करें प्रचार नर्मी से, कहीं न विघ्न आजावे ॥ ५ ॥
स्कंधकाचार्य-न्याय से तो वहां अन्याय, मिथ्या जड को खोना है ।
हटूं न मैं सचाई से, चाहे पृथ्वी उल्ट जावे ॥ ६ ॥
श्रीसंघ-वचन सर्वज्ञ का सुनकर, हमारा दिल धडकता है ।
महा पापिष्ट वह जन हैं, पाप करने में सुखपावें ॥ ७ ॥
स्कंधकाचार्य-शुक्र क्या दोप उनका है, सभी कर्मों के पर्दे हैं ।
खुशी है हम लिये उपकार के, चाहे सर भी लग जावे ॥ ८ ॥

चौ (सुगुप्त,-जब नास्तिक देश के मध्य गये, तो कष्ट भयानक आने लगे
गंध हस्तिरण में ऐसे मुनि, प्रचार में कदम बढाने लगे ॥
अन्याय की जड को काट छांट, सद् ज्ञान का नीर बढाने लगे।
मिथ्या तम का कर नाश, ज्ञान प्रकाश मुनि फैलाने लगे ॥

दो. (,,)–नास्तिक मत के शिरोमणि, अंध पक्ष में लीन ।
लगे द्वेष से तड़पने, जैसे जल बिन मीन ॥
चौ. (,,)–पराजित होकर शास्त्रार्थ में, अब नीच कर्म पर तुल आये।
मुनियों पर कंकर पत्थर फैंक, गाली गलौज मुंह पर लाये॥
भयभीत हुवे कई भव्य जीव, मुनियों को आ समझाने लगे।
बोले आगे मत बढो प्रभु, मृत्यु का भय बतलाने लगे ॥
दो. (,,)–ऐसे वचनों को सुना, स्कंधक ने जिस वार ।
मुनि वीर गंभीर यों, बोला बचन उचार ॥

* गाना नं. ४२ स्कंधकाचार्य का *

सत्य प्रचार में यह जान रहे या न रहे ।
परोपकार में शान, रहे या न रहे ॥ १ ॥
फैला दूंगा मैं शिष्यों को, राष्ट्र भर में ।
मिथ्या विष काटने में, कान रहे या न रहे ॥ २ ॥
ज्ञान दर्श चारित्र का, डंका बजाऊं सारे ।
पांव पीछे न हटे, प्राण रहे या न रहे ॥ ३ ॥
भूले भटकों को, बतावेगें जिनवाणी ।
साफ कह देगें यह सिर, जान रहे या न रहे ॥ ४ ॥
सर्वस्व लगाकर भी, करूं कर्तव्य पालन ।
खाने पीने का मुझे, ध्यान रहे या न रहे ॥ ५ ॥
हरगिझ न डरेगें, किसी की धमकी से ।
चाहे हाथ में मैदान, रहे या न रहे ॥ ६ ॥
सुर नर मोक्ष तिर्यंच, नर्क है दुनिया में ।
आस्तिक धर्म रहे, इन्सान रहे या न रहे ॥ ७ ॥
सिद्ध ईश्वर, सच्चिदानन्द परमात्म ।
आन रह जाय अमिट, जान रहे या न रहे ॥ ८ ॥

शुक्ल शुभ ध्यान हैं, दो कर्मों के उडाने वाले ।
विन शुभ ध्यान के यह, जहांन रहे या न रहे ॥ ६ ॥

दो. (सुगुप्त)-ऐसे कह कर मुनि, फैल गये चहुं ओर ।
नास्तिक के हृदयों में, मचा अपूर्व शोर ॥
कहीं दो दो और कहीं चार चार, मुनियोंने धर्म प्रचार किया।
था मिथ्या भंवरे में पडा हुआ, वेडा कइयों का पार किया ॥
थी आज्ञा आचार्य की, कुंभकार कट नगरमें आनेकी ।
निर्दोष देख स्थान स्वच्छ, सव आसन वहां जमाने की ॥

चौपाई (,,) विचरत कुंभकार कट आये। बाग वीच निज आसन लाये॥
सुन वालक कुमति दिल धारी। नीच स्वभाव सूअर समवारी।।
कहे पालक यह मुनि वही आये। वदला लेऊं कोई करूं उपाय।।
पूर्व वेर कर स्मरण मनमें । जल रहा भीतर द्वेष अग्नमें ॥

दो. (,,) मुनिवर कुछ ही सोचते, पालक सोचे और ।
होनीने अपना किया, कर्तव्य महा कठोर ॥
पालक ने चारों तर्फ, पहरा दिया लगाय ।
दारू गोला वागमें, शस्त्र दिये गडवाय ॥
राजाको कहने लगा, पालक पापी ढोर ।
राजन क्या सोया पड़ा, त्याग अव निद्राघोर ॥
नृप कहे मंत्री किस लिये, इतना है हैरान ।
रात समय क्यों आये हो, कह दो सकल वयान ॥

दो. (पालकमंत्री) राजा नीति यों कहे, करो न पल विश्वास ।
धोखे में आना नहीं, चाहे मित्र हो खास ॥
खवर नहीं कुछ आपको, स्कंधक पहुंचा आय ।
राज्य लेने के वास्ते, गुप्त भेष वनाय ॥

दो. (राजादंडक) मंत्री तेरी भूल है, यह मुनि हैं गुणधार।
त्याग दिया संसार सब, करते धर्म प्रचार ॥

दो. नौ. (पालक) निज कर्तव्य मैंने किया, जो मुझ पर था भार।
नमक खाय कर आपका, देऊं सलाह सुखकार ॥

चौ नौ. (पालक) देऊं सलाह सुखकार, बाग में चलो संग अब मेरे।
शस्त्र दारु गोला देखो, गुफिया पांचसौ चेहरे ॥
सहस्र सहस्र पर भारी हैं, एक शूरवीर दल घेरे।
आलस्य में जो पडे रहे तो मौत पुकारी नेडे ॥

दौड़— चलो अब देर न लावो देख आज्ञा फर्मावो।
यदि स्कंधक न होता, कष्ट नहीं देता तुम को सब,
काम मैं खुदकर देता ॥

दो (सुगुप्त)-गद्दी के होते गधे, जिन्हें न कुछ पहिचान।
जहां लगाय लग गये, तज गौरव का ध्यान ॥

दो. नौ (,,)-मंत्री को ले बाग में, तुरत गये भूपाल।
दारु गोला शस्त्र सब, दिखलाया जंजाल ॥

चौ. नौ. (सुगुप्त) दिखलाया भ्रमजाल, भूपको चढा रोष अति भारी।
सोचा यदि किया आलस्य तो, करेगा दुष्ट खुआरी ॥
मैं स्वयं यदि दूं दंड इसे तो, निन्दा होगी भारी।
अधिकार दिया सब मंत्री को, मति उल्टी यही विचारी ॥

दौड़— दुष्ट का भेद न पाया, भूप अपने घर आया।
मंत्री मन आनंद पाया, आना जाना कर बन्द बागमें,
कोल्हू तुरत गडवाया ॥

दो. (सुगुप्त) दुष्ट जनों को साथ ले, पहुंचा मुनियों पास।
बोला अब तुम को नहीं, बचने का अवकाश ॥

दो. (,,)–खंधक दिल मे सोचता, यह कोई अभव्य विशेष।
मुनियों को अब दृढ करूं, देकर के उपदेश ॥
दुर्जन को सज्जन करने का, भूतल में कोई उपाय नहीं।
घनघोर घटा कितनी बरसे, चातक की तृषा जाय नहीं ॥
वसन्त ऋतु में सब हंसते, नहीं पत्र करीर के आता है।
भानु की इच्छा सब करते, पर उल्लु उसको नहीं चाहता है ॥
नागर के फलका अभाव, पीपल के फूल नहीं आता है।
फणीधर को जितना दूध मिले, उतना ही विष बन जाता है ॥
जिसमें न ज्ञान का अंश जरा, उसको वृथा समझाना है।
ज्यों बहिरे को सुरताल सहित, निष्कारण गायन सुनाना है ॥
जन्मान्ध के आगे आंसु डाल, नेत्रों का तेज घटाना है।
व्योम के फुल की चाहना, या वज्र पर कमल जमाना है ॥
जो महा दीर्घ संसारी अथवा, कोई अभव्य प्राणी हो।
उसको न समझ सके, कोई चाहे आप्तकी वाणी हो ॥

दो (स्कंधक) द्रव्य क्षेत्र और समय में, जैसा अवसर होय।
फिर अपने कर्तव्य को, सोचे बुधजन कोय ॥
कर्तव्य यही इस समय, धर्मको अपना शीस चढाना है।
तुच्छ अनित्य सुखों के लिये, धर्मका गौरव नहीं गिराना है ॥
किस तरह सत्य पर वीर बली, देते हैं सो दिखलाना है।
ज्ञान सुधारस वीरशांतरस, मुनियों को आज पिलाना है ॥

दो. (,,) धर्मवीर हे मुनिजनो! सुनो लगाकर कान।
अब समय अपूर्व आगया, देने को बलिदान ॥

❀ स्कंधकाचार्य का मुनियों को वैराग्यमयी उपदेश ❀

पानी का बुलबुला जान, जिस्म यह अन्त खाक रुल जायगा।
अनमोल समय यह मिला आन, जो फेर हाथ नहीं आयगा ॥१॥

मैदान जंग में अडे सूरमा, मोक्ष जागीरी पायगा।
पीठ दिखा के भागे जो कायर, काग मांस नहीं खायगा ॥२॥
क्रोध मान अरति परिषहों, से जो मुनि चल जायगा।
विराधक हो के मरे चौरासी, चक्कर में रुल जायगा ॥३॥
असंख्य परमाणुओंसे बना, मनुष्य तन अवश्यमेव खिर जायगा।
रत्न पदार्थ जीव शुक्ल यह छेद भेद नहीं पायगा ॥४॥

दो. (स्कंधक)-सुनो मुनि अब कान धर, है कोल्हू तैयार।
बांध क्षमादि शस्त्र सब, हो जावो तैय्यार ॥

चौ. पू (,,)-हो जाओ तैयार क्योंकि, अब जल्दी जंग जुडनेवाला है।
तुम क्षमा खड्ग से काट क्रोध का शीश करो मुंह काला है ॥
मोह कर्म चांडाल दुष्ट यदि, लिया मारकर भाला है।
फिर सात अरिके नाश करन को, काफी खूब मसाला है ॥

दौड़— भय न कुछ मन में खावो, धर्म को शीस चढावो।
चित्त को शांत बनाओ, ध्यान शुक्ल शुभ ध्याय,
शान्तमय होकर धर्म बचाओ ॥

*** गाना-नं. ४३ (स्कंधकाचार्य का मुनियों को उपदेश) ***

सुनो मुनि प्यारो यह संसार असार ॥ टेर—
यह संसार, संशयों का हार, होवे ख्वार, जो कोई पहिने।
सुतदार नार, परिवार यार, यह जिस्म सदा स्थिर नहीं रहने ॥
सहे दुःख अपार नर्कों के द्वार जमदों की मार दुःख क्या कहने।
तिर्यंचभार डंडों की मार, गल छुरीधार अग्नि दहने जी ॥
जो थे जिनेश, सेवें सुरेश, इन्द्र नरेन्द्र भी आकर के।
करणी के धार केवल अपार, संसार सार सुख पा करके ॥
योधा महान्, धरते थे ध्यान, देते थे ज्ञान समझा करके जी।
सुवर्ण जैसे अंग जिन्हों के, उनकी भी होगई छार। सुनो ॥१॥

जो कोई मित्र को कैद से, काढे फंद काट आजाद करे।
मत करो गिला संयोग मिला, जा मोक्ष शिला आवास धरें॥
जो धर्म हित लगता है रेत निपजे है खेत सब काम सरें जी।
चाहे सेल बिन्धे चाहे बर्छी छिन्धे, चाहे तेग काढ़ गर्दन धरदें॥
चाहे अग्नि बाण लोहे को, लाल करके कमाल सिरपर धर दें।
चाहे घानी डाल पीले, कमाल नेत्र निकाल कर पर धरदें॥
दश विध का धर्म खंती का मर्म, मत रखे भ्रम दिलमें सरधोजी।
धर्म हेत जो लगे अंग तो मिलता है शिवद्वार॥ सुनो॥ २॥
हो जाओ तैयार सहने को मार, नहीं बार बार जन्म मिले।
होजाओ फिदा कायासे जुदा, हो फर्ज अदा सब दुःख टले॥
रहता है नाम सिद्ध होय काम, शूरा संग्राम घानी में पीले।
मेरु समान हो जाओ जवान, अब क्षमा खड्ग करमें गहिये॥
शांति की तेग लो पकड बेग, संयम की टेक रखना चाहिये।
जिन जी के पूत हो राजपूत, सिर देके कजा चखनी चाहियेजी॥
शूरवीर जो रखे धर्म को, चाहे पडें कष्ट अपार॥ सुनो॥ ३॥
जो क्षमा करे वह नहीं मरे, मुक्ति को वरे करो कुर्बानी।
यह जिस्म जान गंदा महान्, रोगों की खान तुच्छ जिंदगानी॥
है शुद्ध स्वरूप चेतन अनूप, भूपोंका भूप केवल ज्ञानी।
यह जीव जुदा नहीं होता, कदा नहीं जलता नहीं गलता पानी॥
धीरज को धरो संसार तरो, मुक्ति को वरो कीजे करणी।
हो जाओ लाल चिन्ता को टाल, जब करो काल मुक्ति वरणी॥
सब कटें फंद कहे शुक्ल चन्द, निर्मल ज्यूं चंद धार्मिक तरणी।
मत डरना गीदड कर्मों से हो जाओ हुशियार॥ सुनो॥४॥

दो. (सुगुप्त) पालक तब कहने लगा, अब नहीं रही उधार।
निंदना आलोयणा कर सभी, खडे मुनि तैयार॥

चौ. (,,) निर्यामक वन खंधक मुनि, संथारा तुरत कराते हैं।
पैरों से लेते दुष्ट पकड, घानी में उधर चढाते हैं॥
क्षपक श्रेणी चढे मुनि, सम दम खम हृदय लाते हैं।
अन्त केवली बने बन्ध तज, अक्षय मोक्ष पद पाते हैं॥
पिल रहा एक घानी में क्रम से, और एक तैयार खडा।
कर दिया मात बूचड खाना, वह रहा खून कहीं हाड पडा॥
उस यंत्र से मानो निकली, एक रक्त नदी दिखलाती थी।
गृध पक्षी घूम रहे नभ में, और चीलें झपट लगाती थीं॥
जब पील दिये सब ही चेले, एक छोटा शिष्य रहा बाकी।
था होनहार गुणवान कणी, मानों जैसे थी हीरा की॥
जब उसे पीलने के हेतु, पालक ने हाथ बढाया है।
तब उसी समय स्कंधकने, पालक को यों वचन सुनाया है॥

दो.— (स्कंधकाचार्य) सन्तोष तुझे आया नहीं, अय पालक सुन बात।
लघु शिष्य की न दिखा, मुझे सामने घात॥

चौ. नौ. (,,) घात दिखा मत मुझको इसकी, यह कहना मान हमारा।
पाला इसको प्रेम भाव से, ज्ञान सार दिया सारा॥
शत्रु यदि हूं तो मैं हूं, न इसने कुछ तेरा बिगाडा।
तैयार खडा हूं पील यंत्र में, पहिले जिस्म हमारा॥

दौड़— पील पहिले बस मुझको, द्वेष जिससे है तुझको।
आपको समझाता हूं, यह दुःख मत दिखला मुझको,
बस यही बात चाहता हूं॥

दो. (सुगुप्त) मुनिराज के सुन वचन, बोला पालक बाद।
तन मन खुश सब हो गया, लगा आन अब स्वाद॥

छं. (पालक) स्वाद बदले का सभी, अबही-तो है आने लगा।
छोड़ दे लघु शिष्य को, किसको यह समझाने लगा॥

जिस तरह तुझको मिले दुःख, काम वह करना मुझे।
पीलूंगा तडपा करके इसको, दुःख में दिखलाऊं तुझे॥
तूने सावत्थी नगर में, अति क्लिष्ट मुझको था किया।
सार यह मत का तुम्हारा; उस बदी का फल लिया॥

दो. (सुगुप्त) लघुशिष्य नें सब सुनी, बातें करके ध्यान।
नमस्कार कर गुरु को, बोला मधुर जवान॥

छं. (लघुशिष्य) नम्र निवेदन एक मेरा, गुरुजी सुन लीजिये।
बन गया अब सूत निरमल को, कपासन कीजिये॥
सद्धर्म को अर्पण करूं सब, स्वाद अब आने लगा।
भय गुरुजी इस समय मैं, क्षत्रिय कब खाने लगा॥

*** गाना नं. ४४ (लघुशिष्य का गुरु स्कंधकाचार्य को कहना) ***

आपकी कृपा से अब मैं अपनी सूरत देखली।
मिट गया सारा भ्रम, जब असली सूरत देखली॥१॥
थक गया मैं ढूंढता लेकिन, यह थे परदेनशीन।
ज्ञान दीपक से की अब, परदे में सूरत देखली॥२॥
अब अनित्य रंग रूप की, खातिर भटकता मैं रहा।
आनंद अपूर्व मिल गया जो, थी जरुरत देखली॥३॥
जिह्वा और माला के दाने, फेरता मुद्दत रहा।
छोड़ दी जब अपने इस, मन की कुदरत देखली॥४॥
ज्ञानमय हूं मुझ में अब यह कर्म मल कुछ भी नहीं।
ध्यान धरके शुक्ल सच्चिदानन्द, अमूर्त देखली॥५॥

दो. (ल. शिष्य)–इस दिन के ही वास्ते, शीस मुंडाया आन।
बन्ध अनादि तोडकर, लेऊं मोक्ष निर्वाण॥
अवश्यमेव एक दिन छुटे, यह जिस्म साथ नहीं जावेगा।
अनमोल समय यह मिला आन, फिर नहीं पता कब आवेगा॥

क्षपक श्रेणी चढूं अभी, तन से मोह जाल हटाया है ।
जिस दिन के लिये भटकता था, वस आज वही दिन आया है ॥

दो. (सुगुप्त)-ज्ञान दर्श चारित्र सम, और शान्त रसलीन ।
समदम खम शुभ भाव से, योग हुए शुद्ध तीन ॥
इधर चढे परिणाम उधर, दुष्टों ने चढाया घानी में ।
पाकर केवल ज्ञान पहुंच गये, अक्षय मोक्ष राजधानी में ॥
सर्वज्ञ देव ने जो भाषा कही न, आया फर्क न आना है ।
हाल देख खंधक ऋषि के, झट क्रोध वदन भर आया है ॥

दो. (सुगुप्त)-आयु का बल घट गया, कर न सके कुछ और ।
होनहार का एक दम पडा, आन कर जोर ॥

दो. (स्कंधकाचार्य)-अहो अतुल्य यह पाप है, ऐसा अनर्थ घोर ।
नदी खून की बह गई, जरा मचा न शोर ॥

छं (स्कंधक)-क्या सभी अभव्य हैं, मुनि पांचसौ मारे गये ।
हृदय सभी के पत्थर हैं, क्या वज्र के ढाले हुवे ॥
अच्छा जो मैं तप जप किया, उसका मुझे यह फलमिले ।
नाश मैं इनका करूं, और तोड डालूं सब किले ॥
वेच दी करणी सभी, खंदक ने नियाना कर दिया ।
दुष्ट पालक ने मुनि, घानी में उस दम धर दिया ॥
श्वास पूरे होगये गुस्से के, वस विराधक हुआ ।
साधक हुआ संसार का, और मोक्ष का वाधक हुआ ॥

दो. (सुगुप्त)-स्कंधक जाकर देवता, होगया अग्नि कुमार ।
इधर मांस ले व्योम में, पक्षी उडे अपार ॥
जिसको जो कुछ मिला वही, पक्षी वहां से ले दौडा है ।
लालच के वश कोई ले गया, ज्यादा और कोई थोड़ा है ॥

टुकडा एक रत्न कंवल का, रजोहरण जिसमें लिपटी।
खून मांस का भरा हुआ, एक चील उसीको आ चिपटी॥
लेकर उडी वहां से वैठी, राजमहल ऊंचे जाकर।
लगी जिस समय खान मिला, नहीं सार पडा नीचे आकर॥
जब देखा इसे महारानी ने तो, रजोहरण कंवल पाया।
पुरन्द्र यशा मन घबराई, झट भूप महल में बुलवाया॥

दो. (पुरन्द्रयशा) प्राण नाथ यह देखिये, कंपा कलेजा आज।
क्या कोई मारा गया, बाग बीच मुनिराज॥

दो. (सुगुप्त) हाल देख भूपाल का, गया कलेजा कांप।
छाती पर से एक दम, गया जिस तरह सांप॥
होगया नृप का फक चेहरा, न शक्ति रही वदन में है।
क्या बतलाऊं अब रानी को, बस यही सोच रहा मनमें है॥
लाचार कहा क्या बतलाऊं, गई डोर छूट नहीं हाथों में।
यह महाघोर किया पाप आन, मैंने वजीर की बातों में॥

दो. (,,) दुःख सागर में मग्न हो, बहा रही जल नयन।
कहन लगी भूपाल से, रानी ऐसे वैन॥

*** गाना नं. ४५ शोकाकुल रानी पुरन्दर यशा का राजा दंडक को कहना ***

अय पति तूने कराया, जुल्म यह अति घोर है।
दुष्ट पालक सा अभव्य दुनियां में न कोई और है॥ १॥
पांचसौ शिष्यों सहित, भाई मेरा खंधक मुनि।
पीलते पीलते यंत्र में, हा जिनको हो गया भोर है॥२॥
उफ् तलक किसी ने न किया, अंधेर कैसा छा गया।
जहां किसी को दुःख मिले, वहां पर तो मचता शोर है॥३॥

मातायें सुन मर जायेगीं, जिनके थे यह शोभन कुंवर ।
हाय उस दम बेदना, होगी सही किस तौर है ॥४॥
राज जन और फौज पल्टन, क्या किले नरनारी हैं ।
अब तो सब गारत बनें, रहनी न यहां कोई ठौर है ॥५॥
अब सहूं कैसे अतुल दुःख, जान भी जाती नहीं ।
मैंने कर्म खोटे किये, आयु के बल का जोर है ॥६॥
यदि शुक्ल मुझ को पता, होता अनर्थ हो जायगा ।
फिर पिया यह हाथ से, हरगिज न छुटती डौर है ॥७॥

दो.(दंडक)-महा खेद मैंने किया, कुछ भी नहीं विचार ।
ऐसे पापी दुष्ट को दिये, सभी अधिकार ॥

❀ गाना नं. ४६ (दंडक का विलाप) ❀

अब मैं धरूं, किस तरह धीर ।
देख देख यह जुल्म भयानक, उठे कलेजे पीर ॥टेर॥
राज कुमर खंधक मुनि त्यागी, शूर वीर गंभीर ।
कमल फूल से बदन पील दिये, घानी सकल शरीर ॥१॥
बिलबिल रोवे रानी मेरी, जिसका खंधक वीर ।
खबर सुनत ही प्राण तजेंगी, पीया जिनका क्षीर ॥२॥
ज्ञात मुझे होता, नहीं, रखता ऐसा दुष्ट वजीर ।
बात सुनेंगे सेवक जिनके, लगे कलेजे तीर ॥३॥
शुक्ल समय बीता नहीं आता, बहे नयनों से नीर ।
सब रोगों की एक औषधी, श्रीजिनधर्म आखीर ॥४॥

दो. (दंडक) धिक् ऐसे संसार को, और मुझे धिक्कार ।
अब दिल में यह ही बसा, तप संयम लेऊं धार ॥
इधर विचार किया नृपने, वहां उपयोग देखने लाया है ।
सब देख बाग का हाल उसी दम, क्रोध बदन में छाया है ॥

अग्नि कुमार उस सुरने आकर, अग्नि तुरत लगाई है।
देख प्रचंड मची ज्वाला, जनता मन में घबराई है॥
हाहाकार मचा सारे, भागे सब जान बचाने को।
जहां पर कोई मनुष्य नजर पड़ा, सुर अग्नि लगा जलाने को॥
पुरन्दर यशा की शासन देवीने, आकर करी सहाई है।
मुनि सुव्रत के पास पहुंचा कर, दीक्षा उसे दिलाई है॥
दंडक और पालक दोनों को दुःख सुरने दिये अति भारी।
दुःख अतुल भोगने को मंत्री, गया नर्क सातवीं मंझारी॥
काल अनन्त अन्त नहीं आना, पालक ने दुःख भरना है।
अभव्य स्वभाव है जिस प्राणी का, कभी न उसने तरना है॥

दो. (सुगुप्त)-दंडक नृप के देशमें, प्रलय हुई अपार।
नर्क और तिर्यंचमें, गये बहुत नरनार॥

चौ.— उसी दिवस से यह अटवी, दंडकारण्य कहलाती है।
कर्म बडे बलवान यहां न, पेश किसी की जाती है॥
उस दंडक राजाने भवभव में, जन्म मरण दुःख पाया है।
फिर जन्मा यह गंधभिद्य पक्षी, महारोग बदनमें छाया है॥
अब मुनियों के दर्शन से इसको, जाति स्मरण ज्ञान हुआ।
जब लगा देखने पूर्व जन्म, पालक खंधक का ध्यान हुआ॥
तब उसी समय यह गिराधरणमें, पक्षी मूर्च्छा खाकरके।
अब सियाने हमारा पैरोंपर, यह पक्षी डाला लाकरके॥

छं (सुगुप्त)-स्पर्श ओषधी लब्धि हमें, पक्षी का जिस दम तन लगा।
वेदना उपशम हुई, जो रोग था सबही भगा॥
त्याग तन मन से किया, नहीं घात जीवों की करे।
बना गया धर्मी धर्म धारण, विशुद्ध मनसे धरे॥

अब तुम्हारे शरण हैं, इसकी भी रक्षा कीजिये ।
मानिन्द समझो भ्रात की, करुणा यह दिल धर लीजिये ॥
राम बोले जो कुछ कहा, सब आपने वह ठीक है ।
इसकी रक्षा के लिये, मम प्राण भी नाचीज है ॥

* इति स्कंधकाचार्य अधिकार *

दो. नो.-शिक्षा दे जब मुनि चले, पडे चरण श्रीराम ।
धन्य श्री जिनधर्म है, धन्य आपका नाम ॥
चौ. नो. (राम) धन्य आपका नाम, ज्ञान श्रीजिन का बतलाया है ।
धन्य मात वह तात प्रभु, जिसने तुम को जाया है ॥
सार सभी नरतन पाने का, तुमने ही पाया है ।
सफल जन्म उनका जिनके, सम दम खम मन भाया है ॥
दौड— मुनि वहां से चल धाये, ध्यान तप जप चित लाये ।
प्रसन्न पक्षी तन मन से, रक्खा नाम जटायु जिसका,
सीता पे रहे मग्न से ॥
दो.— पक्षीका सुन्दर जिस्म, शोभे कलगी शीस ।
सीता से अति प्रेम है, रहे पास निशदीश ॥
सियाराम रथ में बैठे, लक्ष्मण सारथि बन जाता है ।
पक्षी उडे अगाडी जिस समय, चले सैर शोभाता है ॥
पुरी अयोध्या के समान, दण्डकारण्य में रहते हैं ।
अब सुनो हाल पाताल लंक का भी, संबंध यहां कहते हैं ॥

शंबुक लक्ष्मण वर्णन

दो.— पाताल लंक का अधिपति, खर नामक भूपाल ।
शूर्पणखा रानी अति, सुन्दर रूप रसाल ॥
राजकुमार थे दो जिसके, शम्बुक और सुनन्दन ।
युवावस्था थी जिन की, शुभ रूप वर्ण जैसे कुन्दन ॥

सूर्य हास खांडा साधू, हर घडी यही शम्बुक चाहता।
नित्य विघ्न डालते मातापिता, नहीं कामयात्र होने पाता॥

दो. नौ.-एक दिवस हठ में खडा, वोला हो विकाल ।
विघ्न यदि देगा कोई, उसका आया काल ॥

चौ. नौ.-उसका आया काल, लगे क्यों सोता शेर जगाने ।
मारूं धर तलवार अक्ल, सारी आजाय ठिकाने ॥
सोच समझ नहीं करते कायर, अपनी अपनी ताने ।
विद्या साधन जाय शूर, शुंवक न हरगिज माने ॥

दौड— विघ्न जो कोई देवेगा, जान अपनी खोवेगा ।
दण्डकारण्य मैं जाऊं, द्वादश वर्ष सात दिन का,
साधन प्रारंभ लगाऊं ॥

दो.— सूर्य हास साधन असि, कुमर के मन उत्साह ।
होनहार लेकर गई, दंडक बन के मांह ॥

दो.— क्रौंचखा नदी तीर पर, गंधूर वंश विशेप ।
उसमें जा साधन लगे, हो एकाग्र अक्लेश ॥

दो.— एकान्त भूमी शुद्धात्मा, जितेन्द्रिय व्रत धार ।
पांव बांध वट वृक्ष से, नीचे मुख सुविचार ॥
नीचे मुख सुविचार मंत्र में, अपना ध्यान जमाया था।
बारह वर्ष सात दिन का विद्या प्रारंभ लगाया था ॥
था चहुं ओर बांसों का वन, जहां पवन अति गुंजार करे।
पर क्या मजाल है दृष्टि की, अन्दर को जरा पसार करे॥
शूर्पणखा वहां तीन दिवस के, वाद में आया करती थी।
सुत शंवुक के लिये खाद्यपदार्थ, वनमें लाया करती थी॥
विद्या साधत वीत गये, यहां वारा वर्ष चार दिन है।
सिद्धि प्राप्त लगी होन पर, मिले न रत्न पुण्य विन है॥

तेज महान सूर्य समान, गंधूर में लगा चमकने को ।
लटक रहा था जहां पर खांडा, शम्बुक लगा हर्षने को ॥

दो.— रूप ऋद्धि बुद्धि अति, सेवा भक्ति महान् ।
होनहार आगे सभी, बन जाते नादान ॥

चौ.— रूप कहे मैं ही मैं हूं, ऋद्धि कहे मैं कुछ कहलाती हूं ।
बुद्धि कहे मैं तुम दोनों का, एक ग्रास कर जाती हूं ॥
होनी लगी मुस्कराने, और बोली जब मैं आऊंगी ।
रूप ऋद्धि बुद्धि आदि, कुछ हो सब पर छा जाऊंगी ॥

दो.— क्रीडा कारण आगया, फिरता लक्ष्मण वीर ।
दैव योग आगे बढा, क्रौंचरवा के तीर ॥
वंश जाल में पडी नजर, सूर्य मानिंद प्रकाश हुआ ।
क्या रवि आन बैठा इसमें, लक्ष्मण को ऐसा भास हुआ ॥
वंश जाल में खड्ग अपूर्व, अपनी चमक दिखाता है ।
देख अनुपम शस्त्र वीर, योधा का मन ललचाता है ॥
झट हाथ पसार के खड्ग लिया, लक्ष्मण का मन हर्षाया है ।
अज्ञातपने से परीक्षा कारण, वंश जाल पे चलाया है ॥
होनी ने अपना काम किया, शंबुक की आशा धरी रही ।
वह जीव बसा जा परभवमें, संपत्ति सब यहां पर पडी रही ॥

दो.— लटक रहा था शीश जो, शंबुक का दर्म्यान ।
वंशजाल के संग कटा, पड़ा सामने आन ॥
देख भयानक दृश्य अनुज के, चोट हृदय पे आई है ।
क्योंकि यह निरपराध कोई, मुझसे मरा वृथा ही है ॥
किया खेद अति लक्ष्मण ने, फिर आगे पैर बढाया है ।
शीस कटा धड लटक रहा, यह नजर सामने आया है ॥

गाना नं. ४७ (शंबुक की मृत्युपर लक्ष्मण का दुःख करना)

सैर करते आज मेरा, यहां क्यों आना हो गया।
वेगुनाह इस मनुष्य का, परभव में जाना हो गया ॥१॥
कष्ट सह सह करके जिसने, था खड्ग साधन किया।
हाय किस परिवार का, हृदय जलाना हो गया ॥२॥
देख वह रो रो मरेंगे, जिनका राजकुमार है।
क्योंकि उनका आज यह, अनमोल दाना खो गया ॥३॥
अब तो कुछ बनता नहीं, चाहे यत्न लाखों करूं।
जीव इसका तो "शुक्ल", परभव रवाना हो गया ॥४॥

दो— पछताता ऐसे अनुज, गया राम के पास।
खड्ग सामने धर दिया, चेहरा अति उदास ॥

चौ.— बोले राम अहो भाई, चेहरे पे आज उदासी क्यों।
यह खड्ग कहां से लाये हो, और ठण्डी लई उदासी क्यों ॥
कहे अनुज महाराज आज मैं, क्रौंचरवा के तीर गया।
निरपराधी विद्यासाधक, मारा एक रणधीर गया ॥

दो.— जो जो कुछ वीतक हुआ, सभी बताया हाल।
रामचन्द्र फिर अनुज से, बोल उठे तत्काल ॥

दो. नौ. (राम)–भाई तूने वो दिया, झगडे का यह बीज।
जिसकी यह तलवार है, वह नहीं मामूली चीज ॥

चौ नौ. (राम)–मामूली नहीं चीज फना, कर दिया शूर अलबेला।
है कोई उच्चराजवंशीय, तुम न समझो उसे अकेला ॥
दल बल सेना आने वाली है, कोई रेलम ठेला।
देख अभी दीखेगा बनमें, भरा हुआ रणमेला ॥

गाना नं. ४८ (रामचन्द्रजी का लक्ष्मण को कहना)

पहिन वस्त्र अभी तैयार, हो जाना मुनासिब है ।
पानी आनेसे पहिले ही, बन्ध लाना मुनासिब है ॥ १ ॥
ख्याल है सिर्फ सीता का, और बस फिकर न कोई ।
एक यहां पर रहे दूजे का, जाना ही मुनासिब है ॥ २ ॥
यहां फैसला किये विना, आगे न जाना है ।
जो होता धर्म क्षत्रिय का, वह दर्शाना मुनासिब है ॥ ३ ॥
जो होना था सो हो बीता, ख्याल मनसे भुला दीजे ।
उल्लंघ नीति वह जावे तो, धनुष उठाना मुनासिब है ॥ ४ ॥

दो.— इधर अनुज से बात कर, हो बैठे होश्यार ।
शूर्पणखा ने महल में, मनमें किया विचार ॥

शूर्पणखा-विद्या सिद्धि राजकुमार की, जल्दी होने वाली है ।
हृदय कमल खिला ऐसे, जैसे फूलों की डाली है ॥
भोजन पान सभी सामग्री, तुरत फुर्त बनवाई है ।
लेकर सब सामग्री आप, दंडकारण्य में आई है ॥

दो.— क्रौंचरवा के तीर जब, आई गंधूर पास ।
नजर उठा देखन लगी, दिल में अति हुलास ॥

वंशजाल है कटा हुआ, शम्बुक पुत्र का शीश पडा ।
वह दृश्य भयानक देखत ही, हुवा माता को अफसोस बडा ॥
लगी देखने अन्दर को तो, शीश विना धड लटक रहा ।
क्या कारण यह आज हुआ, कर रही सोच मन भटक रहा ॥
कर रुदन फाड रही अंबर को, नैनों से नीर है बरस रहा ।
मूर्च्छित होकर गिरी धरण पर, हृदय अंदर से तडप रहा ॥
शूर्पणखा होकर सचेत, पुत्र के शीश को चूमती है ।
मूर्च्छित हो कभी गिरे धरण, कभी धड की तरफ घूमती है ॥

बिना नीर मछली जैसे यों, तडप रही खर की रानी।
और बोली अय बेटा तेरी, किस तरह गई यह जिंदगानी॥
अय बेटा तेरी खातिर मैं, सब सामग्री लाई थी।
इस वन खंड में शंबुक बेटा, मैं तेरी खातिर आई थी॥
बाकी हैं नाराज सभी, इस कारण कोई न आया है।
छैया मैया को खबर कहां, मैंने तो तुझको जाया है॥
तू प्रातःकाल सदा उठ कर, माता को शीश झुकाता था।
और माता माता कह कर मेरा, हृदय कमल खिलाता था॥

दो. (शूर्पणखा) सिर पीटूं छाती धुनुं, हा शंबुक हा लाल।
और बता किसको कहूं, वन में अपना हाल॥

गाना नं. ४९ (शूर्पणखा का विलाप) (बहरतवील)

छैया मैया को तजकर किनारा किया,
मेरी जान जिगर का सहारा गया।
मुझे छोड़ अभागिन को तू चल बसा,
और सर्वस्व कैसे बिसारा गया॥ १॥
मैं तो आई खुशीसे यहां दौड कर,
साथ लाया न जहर करारा गया।
जिसको खाकर के मैं भी जाती उधर,
जिस जगह मेरा बेटा पियारा गया॥ २॥
हाय लटकता यह धड है पडा सिर उधर,
इससे थर्रा कलेजा हमारा गया।
अय बेटा करूं तो करूं क्या बता,
मुझे जान जिगर अति मारा गया॥ ३॥
मत जा साधन को दिया कहा पेश्तर,
जिससे कट करके सिर यह तुम्हारा गया।

कर चला गोद खाली कुमर मात की,
मेरे घरका तो सारा उजारा गया ॥ ४ ॥

दो. (शूर्पणखा) क्या मेरे ही भाग्य थे, फूटे इस जग मांय ।
विरह आपका है कुमर, मुझ से सहा न जाय ॥

गाना (शूर्पणखारानी का विलाप) (बिहाग)
प्राण प्यारे लाडले सूरत, जरा दिखलाय जा ।
रोवे खडी अम्मा तेरी, इसको तो धीर बंधाय जा ॥ १ ॥
कौनसी साधी कुमर, विद्या बताते दे जरा ।
भोजन मैं लाई पास तेरे, यह जरा सा खायजा ॥ २ ॥
नौ मास रक्खा गर्भमें, मैं लाल तुझको सुख दिया ।
क्या कहे अम्मा मुझे, इतना तो शब्द सुनाय जा ॥ ३ ॥
बारह वर्ष अति दुःख सहा, फिर खो दिये निज प्राण हैं ।
काटा है किसने सिर तेरा, यह तो जरा बतलाय जा ॥ ४ ॥

दो.— शूर्पणखा ने इस तरह, किये बहुत विलाप ।
अब रोने से क्या बने, सोच किया फिर आप ॥
जिसने मारा राजकुमर, मैं उसकी खोज लगाऊंगी ।
जान का बदला जान ही लेकर, सुतका बदला पाऊंगी ॥
कैसे पता लगे मुझको, दुर्जन को स्वाद चखाऊं मैं ।
चिन्ह देख कर पाओं का, अब उसका पता लगाऊं मैं ॥

दो — जिधर गया लक्ष्मण उधर, चली चरण चिह्न देख ।
नयनों से जल बह रहा, कर रही सोच अनेक ॥

चौ.— पद चिन्ह देखती जाय कभी, चहुं ओर को दृष्टि घुमाती है ।
अब नजर पडे वह राम लखन, तब ऐसा सोचती जाती है ॥
क्या यह रवि चन्द्रमा हैं, या दो स्वर्गों के इन्द्र हैं ।
क्या साक्षात् हैं नल कुबेर, अति रूप कला में सुन्दर हैं ॥

दो.— कामबाण जिसको लगे, सुध बुध दे बिसराय ।
शोक हुआ काफूर सब, बसे राम दिल मांय ॥

चौ.— लगी देखने छिप वृक्षों में, काम बसा रग रग अन्दर ।
लाज शर्म उड़गई हुई, बेशर्म जाति जैसे बंदर ॥
मध्य भाग में दोनों के, मानों हो रहा उजाला है ।
वृक्षों पर योवन बरस रहा, रंग हरा बहुत कुछ काला है ॥

दो. (शूर्पण. मन में)–रत्नों के पुतले बने, क्रांति रवि समान ।
क्या सब दुनियां का मिला, रूप इन्हों को आन ॥
क्या बिजली यह नक्षत्र, व्योम से बैठे टूट सितारे हैं ।
रम गये हाड और मिंजी क्या, रग रग में फूल हजारे हैं ॥
है निश्चय पुण्यवान किसी, यह भूप के राज दुलारे हैं ।
और सभी कुछ हेच मुझे, बस लगते यही पियारे हैं ॥

दो.— पलक नहीं झपके जरा, देख रही हर वार ।
दृष्टि गोचर फिर हुई, उसी जगह सीया नार ॥
देख हुई हैरान कहां से, यह चन्द्रमा चढ़ आया ।
शरद् ऋतु में प्रातःकाल जैसे, कि सूर्य निकल आया ॥
इन्द्राणी से अधिक रूप, फिर मैं पसंद कब आऊंगी ।
रूप रौशनी और बढाकर, पास इन्होंके जाऊंगी ॥

दो.— रूप देखकर शूर्पणखा, हुई विषय में लीन ।
इश्क बीच अंध हुई, न कुछ रहा अधीन ॥
रूप परावर्तिनी विद्या, अब शूर्पणखाने सुमरी है ।
बनी नई नवेली साक्षात्, जैसे कुबेर की कुमरी है ॥
तरुण अवस्था मोहिनी मूर्त चलता पक्षी देखगिरे ।
फिर गई सामने रामचंद्र के, इधर फिरे कभी उधर फिरे ॥

दो.— काम राग में अंध हो, अद्भुत बनी अनूप ।
ऐसी व्यक्ति को कहां, आतमगौरव स्वरूप ॥

गाना नं. ५१ (शूर्पणखा का श्रृंगार-वर्णन)

फिरे हंस गति से कामन, दामन कर सोलह श्रृंगार ॥ टेर
मंजन कर बनाय अंजन, नेत्रों में लिया डाल ।
मस्तक ऊपर गोल विंदी, मोती से पिरोये बाल ॥
चूड़ामणि फूल शीश, गले में हीरों की माल ।
नाक में बुलाक शोभे, मोती जडी साडी लाल ॥
बदल— गहनों की झंकार घणी है, बेशर में हीरों की कनी है ।
शोभा अति अधिक बनी है, नखरे का न पार ॥ फिरे ॥१॥
चांद और जडाऊ बुजनी, कानों में सुनहरी वाले ।
कौड शीस विम्बोष्ठी, नथ मांही मोती डाले ॥
मृगा नयनी सेवक ठोडी, जुल्फ जैसे नाग काले ।
गति है मराल हथिनी मस्त, जैसी चाल चाले ॥
बदल— चन्द्र वदनी कोयल वैनी, पहनी साडी ऊपर चोली ।
रसना पतली मीठी बोली, इन्द्राणी अनुहार ॥ फिरे ॥ २ ॥
हाथ कडे परिबंद, आरसी, चूड़ा पछेली ।
गजरा और जडाऊ पहुंची, मेंहदी से रची हथेली ॥
पहिने सब छाप छल्ले, अंगूली ज्यूं मूंगफली ।
पुत्र विरहिनी पर कामवस नीत चली ॥
बदल— फूली नहीं समाती तनमें, खुश हो रही घूम उस बनमें ।
जैसे बिजली चमके घनमें, फिरे अकेली नार ॥ फिरे ॥ ३ ॥
कडे छडे रमझोल, मेंहदी बिछुवे और मोर ।
ठुमक ठुमक चाले गहणे, सारे करते शोर ॥

पावों में पायजेब सोहे, घूंघर वाली चहुं ओर ।
टुवक छुपक आई जैसे, पाड लाने चौर ॥
बदल— रही घूम विषय के बलमें, गंधहस्ति जैसे दल में ।
घड रही बनावट मनमें, करे इधर उधर संचार ॥ फिरे ॥४॥

दो.— देख हाल यह राम ने, मन में किया विचार ।
किस कारण उद्यान में, फिरे अकेली नार ॥
शूर्पणखा को इस तरह, बोल उठे श्री राम ।
इस दुर्गम उद्यान में, कौन तुम्हारा काम ॥

(राम)- कहो वृतान्त अपना सारा, किस कारण वनमें आई हो ।
और इधर उधर क्या देख रही, कुछ भय न जरा मनलाई हो ॥
क्या कहीं चौला है गिरफ्तार, जिसकी तुम फिरो तलाशी में ।
क्या आई पैदल इस वन में, या बैठ विमान आकाशी में ॥

दो. (शूर्पणखा) अव्वल तो उद्यान में, बैठे दूर हजूर ।
उपयोग नहीं दोयम लगे, उडे व्योम में धूर ॥
जरा पास आ करके अपना, मैं सारा हाल सुनाती हूं ।
मैं मनुष्य मात्र से डरी हुई, कुछ भय इस कारण खाती हूं ॥
कुछ हाल पूछना चाहते हैं, अनुमान यही मैं पाई हूं ।
अब कान लगाकर सुन लीजे, मैं पास सुनाने आई हूं ॥

दो. (,,) पुत्री हूं भूपाल की, सोई शिखर आवास ।
एक विद्याधर था जा रहा, बैठ विमान आकाश ॥
यह देख रूप मेरा मोहित, होगया उसी दम विद्याधर ।
मैं निद्रागत मुर्दे समान थी, मुझे नहीं कुछ रही खबर ॥
बस डाल विमान में ले भागा, यह कह नहीं सकती गया किधर ।
वह मुझे जिधर ले चला, और एक आ विद्याधर मिला उधर ॥

दो. (शूर्पणखा)-निद्रा जब मेरी खुली, हुई बहुत हैरान ।
देखा तो चहुं ओर है, बियावन उद्यान ॥
यह देख मेरी सुन्दरताई, दूजा विद्याधर ललचाया ।
और मुझे खोसने के कारण, झटपट उसको मारन धाया ॥
बैठाकर मुझको एक ओर, फिर लगे परस्पर लड़ने को ।
यह ऐसा पापी रूप हुवे, तैय्यार मनुष्य दो मरने को ॥
दो. (,,)-मैं बैठी वहां रो रही, किस्मत को लाचार ।
हाय मेरा अब कौन है, इस बन के मंझार ॥
छं. (,,)-लड़ लड़ के दोनों मर गये, खोटे व्यसन का फल मिला ।
रह गई बन में अकेली, कांपता मेरा दिला ॥
फिरते फिरते थक गई, रस्ता न कोई इन्सान है ।
धड़कता है मन मेरा, किन्तु न निकली जान है ॥
इस समय मेरा सहायक, धर्म या प्रभु आप हैं ।
शांति मुझ को मिल गई, बस कट गये संताप हैं ॥
कष्ट मेरा शील के प्रताप, से सब टल गया ।
इस जन्म में बस आप सा, भर्तार मुझको मिल गया ॥

❀गाना नं. ५२ (रामचन्द्र और शूर्पणखा का सम्मिलित गाना)❀

शूर्पणखा–कल खुश्क था यह जंगल, अब है महकार छाई ।
चमकार पंचवटी में, क्या रोशनी फैलाई ॥ १ ॥
तुम किसके हो शहजादे, कबसे यहां पे आये ।
दोनों ही खूब सूरत चेहरे की क्या गोलाई ॥ २ ॥
राम– अयुध्या पुरी सुनी है, दशरथ के हम दुलारे ।
सीता यह राजरानी, लक्ष्मण यह मेरा भाई ॥ ३ ॥
तेरह हैं साल गुजरे, फिरते हैं हम वनों में ।
रहती है तू कहां पर, यहां पे किधर से आई ॥ ४ ॥

शूर्पणखा-क्या तुम न जानते हो, राजा की मैं हूं पुत्री ।
मेरी रूप रोशनी ने, खल्कत में धूम पाई ॥ ५ ॥
राम— फिरती है क्यों अवारा, जंगल में इसतरह तू ।
कामन नादान तेरे, दिल में यह क्या समाई ॥ ६ ॥
शूर्पणखा-जादू भरी यह सूरत, दिल में वसी है मेरे ।
अब आपके हैं कर में, दुःख दर्द की दवाई ॥ ७ ॥
राम— तुम लखन को सुनाओ, अपनी यह दुःख कहानी ।
हट दूर हो यहां से, क्या गड़बड़ी मचाई ॥ ८ ॥
शूर्पणखा-लक्ष्मण जो तेराभाई, नादान है अक्ल का ।
मेरी तरफ तो उसने, न नजर तक उठाई ॥ ९ ॥
राम— किया था मैं इशारा, लक्ष्मण के पास जाओ ।
फिर भी आ तुमने, यहां पर क्यों टिकटिकी लगाई ॥ १० ॥
दो. (शूर्पणखा)-हाथ जोड विनती करूं, कर लीजे स्वीकार ।
शादी मुझसे कीजिये, और न कुछ दरकार ॥
दो— इतनी सुनकर बातको, चौंक पडे श्रीराम ।
सोचा यह प्रपंच सव, कर रही आकर वाम ॥
राम— देखो कैसे नार आन, त्रिया चरित्र फैलाती है ।
आप बनी भोली भाली, और पागल हमें बनाती है ॥
एक बात मुखसे करती, और चार बनाती आंखोंसे ।
अंग अंग है नाचरहा, जैसे दरख्त निज पातों से ॥
दो. (राम-मनमें)-बेशक इसको प्रेम है, पर है व्यभिचारिणी नार ।
भेजूं लक्ष्मण की तरफ, देवें मान उतार ॥
दो— रामचन्द्र कहने लगे, शूर्पणखा को वैन ।
जा परले के पास तू, जरा लगा के सैन ।

राम— पास नहीं जिनके नारी, बस चाव उन्हीं को होता है ।
जो फंसे प्रेम के फन्दे में, वह फिरे उमर भर रोता है ॥
एक नार है पास मेरे, दिन रात नींद नहीं आती है ।
जा लक्ष्मण के पास, अर्ज कर व्याह करना जो चाहती है ॥

दो— कामान्धी को खबर न, गई अनुज के पास ।
हाथ जोड करने लगी, चरणों में अरदास ॥

शूर्पणखा-हे नाथ विनती दासी की, करुणा कर हृदय धर लीजे ।
पास आपके भेजी हूं, अब विवाह मेरे संग कर लीजे ॥
लक्ष्मण एकदम झुंजलाया, बोला ज्यादह बक बक न कर ।
जात है तू औरत की, वरना अभी उडादूं तेरा सिर ॥

दो. (लक्ष्मण)-क्यों कामिन अंधी हुई, फिरती शर्म उतार ।
पहिले मेरे भ्रात को, बना चुकी भर्तार ॥

(,,) कहां गया वह सत्य तेरा, जो पति दूसरा चाहती है ।
बन की कहीं चुडेल आन, नखरे हमको बतलाती है ॥
शूर्पणखा सहमी जाती, लक्ष्मण बेधडक सुनाते हैं ।
सिया राम उधर हंस हंस कर, दोनों हाथों ताल बजाते हैं ॥

दो. (,,)-चल हट यहां से अलग हट, गले न तेरी दाल ।
और कहीं पर आप यह, डालो अपना जाल ॥
बडे भ्रात से करी प्रार्थना, भाभी लगे हमारी है ।
देख आरिसा ज़रा दिखाऊं, क्या यह शक्ल तुम्हारी है ॥
टिम टिमाकर खडी सामने, नयनों को फडकाती है ।
झूठ बोलते हुवे जरा भी, मन में नहीं लजाती है ॥
छल फरेब करती घर घर लो; रूप बनाकर आई है ।
क्या इसी शक्ल पर दो पुरुषों ने, कहती जान गंवाई है ॥

हट यहां से क्यों इधर उधर चमकाती डोले विन्दी है।
तुझ जैसी नहीं और कोई दुनियां में नारी गंदी है॥

दो. नौ. (लक्ष्मण) पीठ दिखा यहां से जरा, शर्म न तुझे लगार।
भरा मुल्क चारों तरफ, करो देख भर्तार॥

चौ. (लक्ष्मण) करो देख भर्तार यहां पर, चले न चाल तुम्हारी।
उल्लु जैसी शक्ल गधी, भी चाहे शेर सवारी॥
मायाचारिणी मिथ्याभाषिणी, बनती राजदुलारी।
मारूं हंटर अभी अक्ल, आजाय ठिकाने सारी॥

दौड़— कहां दुःख दिया आनके, सताती जान जान के।
चपल चालाक वाक है, और कहीं जा करो ठिकाना,
यहां न कोई गाहक है॥

दो— कोरी कोरी जब सुनी, लक्ष्मण की फटकार।
शूर्पणखा को आगया, सहसा रोष अपार॥
जैसे नागिन फणमारे, ऐसे दो हाथ मारती है।
कुछ बना नहीं काम समझ, पुत्र का मोह चितारती है॥
बोली तूने ही मेरे शंबुक, का शीश उतारा है।
अब तभी श्वास लेऊंगी, मैं कटवा कर गला तुम्हारा है॥

दो. (लक्ष्मण)-हम भी बैठे हैं यहां, इसीलिये तैयार।
कह देना आवें जरा, होकरके हुशियार॥

(,,) जा उन उनको दे भेज यहां, जिनको परभव पहुंचाना है।
हैं सूर्यवंशी यहां राम लखन, तूने क्या हमको जाना है॥
अनुचित कहती शब्द चली, पाताल लंकमें आई है।
खर दूषण को शंबुक के, मारे की खबर सुनाई है॥

दो. (शूर्पणखा)-महाघोर अन्याय का, प्रलय हो गया आज।
एक लाल शंबुक बिना, सूना हो गया राज॥

[illegible] ने कैसे बंदूक की [illegible] [illegible] दी,
और [illegible] [illegible] को [illegible], टुकड़े टुकड़े करके [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

सं.— [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] है
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] है ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ॥

सं.([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

सं.([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] तुमको क्या फिक्र है [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
और अभी दिखाता हूं [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है
किन्तु एक बात हम और कहें. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ॥

सं.(राम)— अब देना ललकार [illegible], पहले [illegible] [illegible] ।
बंदूक की हमने नहीं [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

(,,) फिर भी गल्ती का खर दूषण, तुम दंड हमें दे सकते हो।
शम्बुक की मृत्यु का योग्य, कोई हर्जाना भी ले सकते हो॥
यदि इस पर न ध्यान करें तो, फिर मैदान में डट जाना।
और किसी तरह भी अरिजन का, फिर धोखा भाई मत खाना॥
यह ज्ञात मुझे कोइ दुनियां में, नहीं तुझे जीतने वाला है।
फिर भी यह साथ में लेजाओ, महा वज्रमयी जो भाला है॥
घिर जाओ कहीं शत्रुओं में तो, सिंहनाद शब्द करना।
मैं उसी समय आ जाऊंगा, तुम भय न कोई दिल में धरना॥

दो.— हंस कर बोले लखनजी, हे भाई रणधीर।
नम्र निवेदन है मेरा, धरो हृदय में वीर॥

दो. (लक्ष्मण)-चढ़ते जल में प्रवेश करे, वह अपने प्राण गंवायेगा।
क्रोधातुर को शिक्षा देनेवाला, निज काल बुलायेगा॥
प्रारंभिक ज्वर में हे भाई, औषधी जहर बन जाती है।
और राग द्वेष में अंधों को, शुभ शिक्षा कभी न भाती है॥

दो. (राम)-बुद्धिमान हो तुम लखन, हरफन में होश्यार।
जाओ अब रण रंग में, करो अरीं की छार॥

दो.— शीश नमा करके चला, सुमित्रा का लाल।
या यों कह दें कि चल दिया, खर दूषण का काल॥
जा ललकारा सामने, करी धनुष टंकार।
मची खलबली फौजमें, भाग हो गये चार॥
गड़गडाहट घनघोर शब्द, सुन सब दल का मन कांप पडा।
यह क्या आफत आती है, खर दूषण का भी दिल हांफ पड़ा॥
आधी शक्ति तोड लखन ने, बाणोंकी झड़ी लगाई है।
आंधी आगे जैसे तृणे, ऐसे सब फौज भगाई है॥

जैसे बादल व्योम बीच, दलमें योधा यों गर्ज रहा ।
या बालू के घर गेरन को, वारिवाह जैसे बरस रहा ॥
शूर्पणखा ने देख हाल यह, दान्तों में अंगुली डाली है ।
फिर बोली हाय सितम लक्ष्मण, कर देगा सब दल खाली है ॥
बिजली के मानिन्द कडक रहा, इससे अब कैसे पार पडे ।
शक्ति हीन होगये योद्धा सब, झांक रहे हैं खडे खडे ॥
बिना वीर रावण के यहां न, पेश किसी की चलनी है ।
एक नपूते ने सबका हृदय, किया छलनी छलनी है ॥

दो.— लंका को अब चल दई, शूर्पणखा तत्काल ।
रावण से कहने लगी, जो बीता सो हाल ॥

दो. (शूर्पणखा)–तुम बैठे मैं लुट गई, भाई करो विचार ।
पहिले सुत मारा गया, अब मरता भर्तार ॥

छं. (,,)-वीर तेरे भानजेका सर, अलग धड से किया ।
दो मनुष्य जंगल में है, डेरा निडरपन से किया ॥
रोप कर तेरा बहनोई, लेके दल सारा गया ।
विश्वास नहीं मुझको रहा जीता के या मारा गया ॥
चौदह सहस्र संग अकेला, वीर लक्ष्मण लड रहा ।
शेर जैसे बकरियों में, यों लपक के पड रहा ॥
सब खत्म कर देगा यदि न, आप वहां पहुंचे वीरन ।
फैल ऐसे जायगा, मानिन्द रवि जैसे किरण ॥
अब तो गोते खा रही, नैया मेरी मंझधार है ।
डोब देना या बचाना, आपके अखत्यार है ॥

दो— शूर्पणखा के सुन वचन, रावण करे विचार ।
मूर्ख जाति नारि की, सोच न जिसे लगार ॥

रावण- प्रथम तो इस दुष्ट बहन ने, कुल को दाग लगाया है।
एक तुच्छ मनुष्य क्या खरदूषण, वह ही इसके मन भाया है॥
फेर नहीं यह आन गमी शादी में, मुख दिखलाती है।
अब गर्ज पड़ी तब आन खड़ी, नयनों से नीर बहाती है॥
और कहती है दो मनुष्यों पर, चौदह हजार चढ़ धाये हैं।
फिर भी बतलाती खतरा है, नहीं दो काबू में आये हैं॥
प्रथम तो यह ठीक नहीं, यदि है भी तो क्या हमें पड़ी।
मर जाने दो उन दुष्टों को, रोने दो इसको खड़ी खड़ी॥
बीज नाश हो जाय तो, ही कुल का कलंक मिट जायेगा।
यदि सम्मुख नहीं पीठ पीछे, कहते सो भी हट जायेगा॥
दो चार घड़ी सिर पीट पीट कर, अपने रस्ते जावेगी।
किया कर्म जैसा इसने, उसका वैसा फल पावेगी॥

दो— शूर्पणखा दिल सोचती, बना नहीं कुछ काम।
बतलाऊं इसको वही, जो थी सुन्दर वाम॥

शूर्पणखा-है महा लम्पटी इन बातों का, कान इधर झट लायेगा।
कम से कम यह तो निश्चय है, एक वार वहां पर जायेगा॥
जैसे वीन बजाने पर, बस नाग मस्त हो जाता है।
ऐसे ही मस्त करूं इसको, अब यही समझ में आता है॥

दो— लाज शर्म को छोड़ कर, बोली रावण साथ।
अति आश्चर्य की सुनो, एक और है बात॥

शूर्पणखा-नारी जिनके पास एक सहस्रांशु जैसे चढ़ा हुआ।
या मानों बनरूपी रजनी के, गल चन्द्रमा पड़ा हुआ॥
स्फटिक रत्न जैसा तन है, जैसे सांचे में ढाली है।
मानिन्द दामिनी के क्रान्ति, चालि गति हंस निराली है॥

नलकुमरी न तुलना करती, न उपमा कोई जहान में हैं।
अमृत यदि कुछ है दुनियां में, तो उसकी एक जवान में है ॥
अद्भुत है लक्षण सारे शुभ, अनुपम दमक दिखाती है।
और स्वर्गपुरी की इन्द्राणी भी, उसे देख शर्माती है ॥

एक अंगूठे की बराबरी, न तेरा रणवास करे।
नक्ष तेज अति पडे हुवे, सब खिला चमन प्रकाश करे ॥
आश्चर्य की बात गधे के, गल हीरों का हार पडा।
एक रहे रखवाली उसकी, एक लडे रणवीच खड़ा ॥
रत्न चीज जितनी दुनियां में, सबकी सब वह तेरी हैं।
तुम उसे बनाओ पटरानी, यह तीव्र भावना मेरी है ॥
सर्प वीन पर मस्त हुआ, जैसे निज फण लहराता है।
कर्मोदय भूप कुमार्ग पर, चलने का ढंग बनाता है ॥

दो.— जादू करके कर गई, शूर्पणखा प्रस्थान।
विषयवर्धक वचन सुन, रावण हुआ गलतान ॥
परनारी का ध्यान जिस, समय जिस प्राणी को आया है।
उस समय से समझो बस, उसकी किस्मत ने चक्कर खाया है ॥
कुल गौरव मिला कर मिट्टी में अपयश का पिंड भराता है।
और धन संपत की राख बनाकर, अंत में फिर पछताता है ॥

दो.— परनारी पैनी छुरी, पांच ठौर से खाय,
फल किंपाक समान यह, दिल अन्दर धंस जाय।
तन छीजे यौवन हरे, पत पंचों में जाय,
जीवित काढे कालजा, मुआ नर्क ले जाय ॥

चौ.— घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत हो, भंवरा प्राण गंवाता है।
भिज भिच कर मरे फूल में, पर नहीं उसे काटना चाहता है ॥

स्पर्शेन्द्रिय के वश में होकर, गज बलिष्ट तन को खोवे।
रसनेन्द्रिय के पराधीन हो, मीन गहन जल में रोवे॥
कान राग में मस्त हुवे, मृगों की डार गोली खाते।
चक्षु इंद्रिय के वश पतंग, दीपक की लौ में जल मर जाते॥
एक एक इंद्रिय ने इनको, दुःख सागर में गेर दिया।
यहां आन बिचारे रावण को, पांचो विषयों ने घेर लिया॥

दो.— वीतराग उपदेश में, धर्म चार प्रकार।
दान शील तप भावना, यही धर्म का सार॥

चित्त वित्त अनुसार दान भी, कई विध से बतलाते हैं।
निर्मल आत्म बने तभी जब, संयम ध्यान लगाते हैं॥
शुद्ध भावना भानेवाले, जीव अतुल सुख पाते हैं।
पर शील पालना अति कठिन, यहां कायर जन गिर जाते हैं॥

❀ गाना नं. ५२ (ब्रह्मचर्य-महिमा) ❀

जीव रे तू शील रंग धर अंग।
बाकी सभी कुरंग है रे, यही करारा रंग॥ टेर॥
अग्नि भी शीतल बने रे, सर्प होय फूलमाल।
शेर हिरण मानिन्द बने रे, अन्धपना लहे व्याल॥ जीव॥१॥
पर्वत सम मार्ग बने जी, विष भी अमृत होय।
विघ्न यहां उत्सव बने जी, दुर्जन सज्जन होय॥ जीव॥२॥
सागर छोटा सर बने जी, अटवी निज घरबार।
मुश्किल सब आसान हों जी, शील अति सुखकार॥३॥
जो कुशील के वश पडे जी, तनमें ही उपजे आग।
शुभ करनी को तिलांजली जी, तप जप जावें भाग॥४॥
अपयश की डौंडी पीटे जी, कुल के लागे दाग।
द्वार दिखावे नर्क का जी, फूट जायें सब भाग॥५॥

चन्द्र रहे नित्य बारहवां जी, अष्टम सूर्य जान ।
बीज नाश कुल का होवे जी, दुर्गति का महमान ॥ ६ ॥
शीलवती सीता सतीजी, वसुधा में विख्यात ।
गौरव तजे न अपनाजी, बेशक होवे तन घात ॥ ७ ॥

दो.— इधर सिया पूरी सती, धर्मन अति गुणवान ।
गुण जब रावण ने सुना, लगा काम का बाण ॥

रग रग में विष फैल गया, कुमति के चक्कर में आकर ।
पुष्पक विमान में बैठ गया, दशकंधर जल्दी से जाकर ।
होनी वस कामांध बना, रावण वन को चल धाया है ॥
पास सिया के देख राम, पीछे विमान टिकाया है ।

दो— खड़ा खड़ा नृप सोचता, है यह अद्भुत रूप ।
तीन लोक में भी नहीं, ऐसा रूप अनूप ॥

रावण—नहीं पिछाडी हटे नैन, चेहरे पर रूप बरसता है ।
जैसे चातक मेघ बिना, ऐसे मन मेरा तरसता है ॥
या जैसे बिन पानी के कहीं, मछली का नहीं गुजारा है ।
बिना मिले यह पुण्य समुह मेरा न कहीं सहारा है ॥
अद्भुत रूप अनूप चिन्ह, क्या तन पर पडे सभी आला ।
मानिंद मोर की गर्दन के, कुदरत ने है सुरमा डाला ॥
जो भगिनी ने बतलाया था, उससे भी बढकर पाई है ।
सचमुच बनरूपी रजनी में, चंद्रमा बनकर आई है ॥
किन्तु आज क्या हुआ मुझे, नहीं पैर अगाड़ी बढ़ता है ।
मानिन्द सिंह के आज सामने, राम नजर क्यों पडता है ॥
नख तेज यह रामचन्द्र के, हृदय मेरा हिलाते हैं ।
जो सजे खडे वस्त्र शस्त्र से, काल रूप दिखलाते हैं ॥

दो. (रावण)–आगे पैर बढे नहीं, पीछे घटता मान
गिरफ्तार चौला हुआ, बने किस तरह काम ॥
(,,) जब तक बैठे हैं राम सामने, सिया हाथ नहीं आयेगी।
अब करूं याद विद्या अवलोकिनी, भेद वही बतलायेगी ॥
जनक सुता हर लेने का, यही एक ढंग निराला है।
आगे बैठा है शेर हटूं, पीछे तो भी मुंह काला है ॥

दो. नौ.–अवलोकिनी विद्या तुरत, करी याद भूपाल।
आन खडी हुई सामने, लगी पूछने हाल ॥
चौ. नौ.-लगी पूछने हाल आज, किस कारण मुझे बुलाई।
बतलाओ जो काम मेरे लायक, मैं करने आई ॥
मुश्किल से आसान करूं, जैसे बच्चे को दाई।
उसी बात में हूं प्रसन्न, जो हो तुमको सुखदाई ॥
दौड. – सभी कारण बतलाइये, आज मुझको अजमाइये।
हाथ अपने दिखलाऊं, शक्ति के अनुसार काम जो हो,
पूरा कर जाऊं ॥
दो. (रावण) काम आज ये ही मेरा, पाऊं सीता नार।
और नहीं चाहना मुझे, करो यही उपकार ॥
रावण—आगे प्रबल सिंह बैठा, पीछे हट गिरूं समुद्र में।
खैंच लिया मन सीता ने, बस झुरूं खडा वन अन्दर में ॥
सिर धुन कर विद्या बोली, राजन् क्या पाप कमाता है।
दूर करो यह दुष्ट ध्यान, यदि सुख सामग्री चाहता है ॥
दो. (अवलोकनिदेवी) सतियों में है शिरोमणि, रामचन्द्र की नार।
शील रत्न खंडे नहीं, करे जिस की छार।
(,,) यदि कोई चाहे मस्तक से, मंदर गिरी तोड गिरा दूंगा।
प्रमादी बनकर प्रबल सिंह की, मूंछे पकड हिला दूंगा ॥

अन्तक न आवे पास कभी, चाहे काल कूट विष खा लूंगा।
और करूं हाजमा लोहे के, दान्तों से चना चबा दूंगा॥
शायद किसी के द्वारा यह, अन होनी भी कर सकता है।
पर स्वयं इंद्र भी सीता को आकर, नहीं फुसला सकता है॥

गाना नं. ५३ (अवलोकिनी विद्यादेवी का रावण को समझाना)

मानले कहना हमारा, मोड दिल इस पापसे।
है बुरा परिणाम हित करके, कहूं मैं आपसे॥ १॥
हैं पवित्र आत्मा, पूरी न छोडे धर्म को।
क्यों बनाता भस्म, ऋद्धि की जला इस आगसे॥ २॥
आशिविष तेरे लिए है, लंका को बारूद सम।
राख कर डालेगी सबको, यह जरासे शाप से॥ ३॥
सूर्यवंशी की वधु, मानिंद व्याधि के तुझे।
कर किनारा तज बदी, बच नरक के संताप से॥ ४॥

दो. (रावण) मन में है सीता बसी, मुझे न सूझे और।
पटरानी इसको करूं, चाहे मिले दुःख घोर॥
(,,) घोर नर्क स्वीकार मुझे, ऋद्धि की कुछ दरकार नहीं।
बिना सिया के दुनिया में, मुझको कुछ लगता सार नहीं॥
वे ही ढंग बता मुझको, जैसे सीता पा सकता हूं।
फिर तो राजी से नाराजी से, जैसे हो समझा सकता हूं॥
दो.— अवलोकिनी विद्या कहे, तजो ख्याल यह नीच।
फिर भी सोच विचार क्यों, हृदय की लई भीच॥
(अवलो.)-यदि फूटगई किस्मत तेरी तो, मैं क्या यत्न बनाऊंगी।
जिस कारण मुझे बुलाया है सो तो, अब कुछ बतलाऊंगी॥

जब तक हैं श्री राम यहां पर, सिया हाथ नहीं आने की।
सुरपति भी यदि यहां आ जावे तो, पेश न उसकी जाने की ॥

दो.(अवलो.)–लक्ष्मण जब लडने गया, राम किया संकेत ।
सिंहनाद तेरा शब्द, सुन आऊं रणखेत ॥

यदि भीड पडे कोई तुम पर तो, मुझको शीघ्र बुला लेना।
तू सिंहनाद कर शब्द मेरे, कानों तक जरा पहुंचा देना ॥
तुम करो शब्द अपने मुख से, बस रामचंद्र उठ धायेगा।
पीछे सीता रहे अकेली, काम तुरत बन जायेगा ॥
सुनते ही तजवीज भूप का, हृदय कमल प्रकाश हुआ।
बोला विद्या से तुम जावो, बस काम मेरा सब पास हुआ ॥
अब पुण्य मेरा वृद्धि पर है, सब काम ठीक बनता जाता।
सीता को हरूं जल्दी से, अब समय बहुत निकला जाता ॥
अहा कैसा समय मिला, मन वांछित फल मैं पाऊंगा।
छलकर भेजूं अब रामचंद्र को, सीता हर ले जाऊंगा ॥
राम लखन को तो दल में, खर दूषण मार मुकावेंगे।
ले चलें सिया को लंका में, अपना आनंद उडावेंगे ॥

दो.— सिंहनाद रावण किया, छुप रण भूमि की ओर ।
सुनते ही सियाराम के, दिल में मचाया शोर ॥

सिया राम से कहे युद्ध में, लक्ष्मण तुम्हें बुलाता है।
घेर लिया कहीं शत्रुने, इस कारण शब्द सुनाता है ॥
इक जान टके सी लक्ष्मण की, और गोल अरिका भारी है।
जल्दी जाकर ललकारो तुम, फिर जूझेगा बलधारी है ॥

दो— करे प्रेरणा घडी घडी, बनो सहायक जाय ।
रामचन्द्र इस बात को, सोच रहे मन मांय ॥

(राम) जो लक्ष्मण को घेर सके, नहीं जननी ने कोई जाया है।
यह आकर के किसी शत्रुने, ऐसा प्रपंच बनाया है ॥
वह महाबली योद्धा लक्ष्मण, निश्चय न किसीसे हारेगा।
करे शीश धड़से, न्यारे सब दल के होश बिगाडेगा ॥

दो— रामचन्द्र यों कर रहे, दिल में निजि विचार।
होनहार आकर यहां, बैठी आसन मार ॥

बार बार सिंहनाद शब्द, रावण निज मुख से करता है।
वहां श्रीराम से करे प्रेरणा, सीता का दिल डरता है ॥
कहे रामचन्द्र वन बीच, अकेली कैसे जाऊं छोड तुझे।
नहीं हारता लक्ष्मण सारी, दुनियां से विश्वास मुझे ॥

दो.(सीता)-हे स्वामिन् दिल में जरा, कुछ तो करो विचार।
तुम्हे बुलाने के लिये, लक्ष्मण रहा पुकार ॥

गाना नं० ५४ (रामचन्द्र को लक्ष्मण की मदद के लिये सीताजी की प्रेरणा) सीताका-रामसे

जावो जावो जी महाराज, लक्ष्मण ने सिंहनाद सुनाया ॥ टेर ॥
प्रेम ऐसा जिनका तुम साथ, दिवस कहो दिवस रात को रात।
तजे सुख राजपाट सब ठाठ, वनों में संग तुम्हारे आया ॥ १ ॥
जहां पर पड़ा कष्ट कोई आन, अगाडी हुआ आप सिरतान।
सुना जब चले वनों में राम, अवध का खाना तक न खाया ॥ २ ॥
हमारी सेवा करी दिन रात, समझा तुमको पिता मुझे मात।
नजर नीची न ऊंची बात, कभी न मुंह की तर्फ लखाया ॥ ३ ॥
लिया शत्रु ने देवर घेर, जल्द जावो मत लावो देर।
फेर में पडे फेरसे फेर, समय बीता न हाथ कभी आया ॥ ४ ॥
मानों प्रीतम मेरी बात, करो शत्रु की जाकर घात।
मिले ना ऐसा तुम को भ्रात, पसीनें की जगह खून बहाया ॥ ५ ॥

किया तुमने उनसे संकेत, पड़ा अब काम बीच रणखेत।
हर घडी शब्द सुनाई देत, शुक्ल यह दिल मेरा घबराया ॥६॥

दो. (राम) यही सोच मैं कर रहा, अय प्यारी मन मांय।
दुविधा के अंदर फंसा, कहूं तुझे समझाय ॥

* गाना नं. ५६ (सीताजी को रामकी दुविधायें बताना) *

लखन को जीते कोई, साक्षी यह मन देता नहीं।
जाऊं अकेली छोड़ तुमको, यह भी तन कहता नहीं ॥१॥
सोचो तो यह शत्रु का इलाका, घोर फिर उद्यान है।
हाल क्या तेरा बने, कुछ भी कहा जाता नहीं ॥२॥
शब्द सुन सुन के कलेजा, आ रहा मुंह की तर्फ।
यदि सहायक न बनूं यह, भी तो दिल चाहता नहीं ॥२॥
प्रेरणा तेरी ने प्यारी, फेर डाला मन मेरा।
अब तो भाई के मिले विन, दिल सबर लाता नहीं ॥३॥

दो.— होनहार होकर रहे, क्रोडों करो उपाय।
धनुष बाण श्रीराम ने, कर में लिया सजाय ॥
कुछ सीता के कहन से, कुछ प्रेरा सिंहनाद।
पहिन कवच अब चल दिये, अरुणावर्त को साध ॥
बायां नेत्र श्रीराम का, चलते समय है फडक रहा।
दाहिना फडके सीताजी का, यह देख कलेजा धड़क रहा ॥
दाये से बायें हिरण गये, और तीतर बायें बोल रहा।
पीछे को शकुन हटाते हैं, यह रामचन्द्र मन तोल रहा ॥
अशुभ कर्म जब उदय होय, काफूर अक्ल बन जाती है।
इस उल्ट फेर में आन फंसे, नहीं समझ बात कोई आती है ॥
मन सोच रहे श्रीराम सिया को, अभी छोडकर आया हूं।
मैं पता भ्राता का लूं जल्दी, जाकर जिस कारण धाया हूं ॥

यही बात मन सोच रामने, आगे कदम बढाया है ।
अवकाश सिया हरने का, पीछे दशकंधर ने पाया है॥
खुशी खुशी अब लपक झपक, रावण कुटिया पर आया है।
और भोली भाली शक्ल बनाकर, ऐसे वचन सुनाया है ॥

गाना नं. ५७ (रावण और सीता का सम्वाद-गाना)

रावण—कुछ नीर पिलादे, प्यासा मैं आया तेरे द्वार पर ।
कुछ ख्याल कर उपकार कर ॥ टेर ॥

सीता—विमान पास फिर देर लगी क्यों, जाते निजस्थानपर।
,, तू कौन कहां से आया, (रावण) लंका पुर से ॥
,, क्या जल कहीं तुझे न पाया, (रावण) प्या निज करसे ।
,, जलाशय हर जां निर्मल जल, झरने वहें पहाड़ पर ॥१॥

रावण—वह जल हम नहीं पीते हैं (सीता) किस कारण से ।
,, बस निर्मल जल पर जीते हैं (,,) तो कारण से ॥
,, जल्द पिलावो देर न लावो, कांटे पडे जबान पर ॥ २ ॥

सीता—पीलो यह धरा हुआ है (रावण) दो अंदर से ।
,, शीतल ही भरा हुआ है (,,) फिर दो कर से ॥
,, हम नहीं आते बाहर कुटी से, मत ज्यादह तकरार कर ॥३॥

रावण—क्या प्यासे जावें दर से (सीता) ऐसा न कहो ।
,, तो भर दो लोटा कर से (,,) प्यासे न रहो ॥
,, किस कारण फिर देर लगाई, जल्दी से उपकार कर ॥४॥

सीता—कैसा है मनुष्य हठीला, (रावण) खुद गर्ज न हो ।
,, रुक बैठा जैसे कीला, (,,) जो मर्जी कहो ॥
,, पीलो वह जल का लोटा तुम, मैं नहीं आती द्वार पर ॥५॥

रावण—इससे नहीं प्यास बुझेगी, (सीता) यह और पड़ा ।
,, इससे तो और जगेगी, (,,) मुझे भर्म पड़ा ॥
,, यदि पिलाना है तो पिला प्रेम जल वरना बस इंकार कर ॥६॥

सीता—तू जल पीने नहीं आया, (रावण) हां समझ गई ।
,, तुझे काल घेर कर लाया, (,,) वाह खूब कही ॥
,, भाग यहां से वरना मारें, रघुवर तुझे पछार कर ॥७॥

रावण—मैं हूं लंका का वाली, (सीता) हो सकता है ।
,, तू बन मेरे घर वाली, (,,) क्या बकता है ॥
,, जो मर्जी कहो शब्द फूल सम, शोभे रसना सार पर ॥८॥

सीता—यह धड से शीश उडेगा, (रावण) क्या आफत है ।
,, जब चिल्ले धनुष चढेगा (,,) क्या ताकत है ॥
,, असुरनरेन्द्र थर्राते हैं, अरुणावर्त की टंकार पर ॥६॥

रावण—मैं महाबली त्रिखंडी (सीता) बिल्कुल खर है ।
,, है रामहकीर पाखंडी (,,) शेरे नर हैं ॥
,, हरगिज न शोभे कौवेगल, तू रत्नों का हार वर ॥ १० ॥

दो. (रावण) आया हूं मैं लंक से, कर तेरा अनुराग ।
निश्चय हृदय में धरो, खुले आपके भाग ॥
(,,) तुम त्रिखंडी की पटरानी बन गई चाल शुभ कर्मों की ।
अब चन्द दिनों में ज्ञात हो जाओगी तुम इन सब मर्मों की ॥
अब जल्दी पुष्पक विमान में बैठो, दूर सभी यह शर्म करो ।
पलके पर मौज उड़ाओगी, दिल में न रंचक भर्म करो ॥

दो— रावण ने अनुचित वचन, कहे इस तरह भाप ।
सीता के भी उड गये, एकदम होश हवास ॥

चौ— देख अनुपम रूप भूप की, खुशी का न कोई पार रहा।
अब राजी से नाराजी से, बैठो विमान में मान कहा॥
वज्राघात हुआ सीने पे, मानिंद फूल मुर्झाई है।
ऊंचे स्वर से रोई सीता, नयनों में जल भर लाई है॥

दो.— धर्म मन में धार कर, बोली सीता नार।
दुष्ट यहां से भाग जा, क्यों मरता बदकार॥

(सीता) आकर के श्रीराम तेरा यह, धड़से शीस उड़ादेंगे।
महा वज्रावर्तंज धनुषबाण से, तेरे प्राण गंवादेंगे॥
हाथ बढ़ाकर रावण ने, झटपट विमान बैठाई है।
फिर बैठ के आप विमान में, झट चलने की कला दबाई है॥
परवश वह सीता हाय हाय कर, ऊंचे स्वरसे रोती है।
हाथों से सिर पीट पीट कर, अपने तन को खोती है॥
सब देख हाल यह, तुरत जटायु पक्षी पीछे धाया है।
निज चोंच पंख और पंजों से, रावण संग युद्ध मचाया है॥
सीता को छुडवाने कारण, तन मन से जोर लगाया है।
पक्षी नहीं हटा हटाने से, फिर क्रोध भूपको आया है॥
पकड़ जटायु को कर से, दोनों पंख तोड़ बगाया है।
वह पंख हीन लाचार जटायु, शरण धरण की आया है॥
कुछ फिकर नहीं पक्षी को, अपने दुःख का या मर जाने का।
एक शल्य है बड़ा हृदय में, सीता को हर ले जाने का॥
निर्भयता से जा रहा रावण, वैदेही रुदन मचाती है।
यह मुझे ले चला दुष्ट कोई, आ करो सहाय बताती है॥
हे! राम पति देवर लक्ष्मण, रावण से मुझे छुडालो तुम।
हा! खेद पुकार कोई नहीं सुनता, हो बैठे सबही गुमशुम॥

हाय ससुर दशरथ तुम ही, कुछ आज सहाय करो मेरी।
हे जनक पिता कहाँ गये, विदेहा मात मैं जाई हूं तेरी॥

हे भामंडल वीर कहीं, सुनता हो मुझे छुड़ा लेना।
कोई परोपकारी मनुष्य मात्र, रावण से मुझे बचा लेना॥

क्या निश्चल सब ही पत्थर की, मूर्ति के मानंद बने।
क्या आज मेरी किस्मत लौटी, दुखिया की कोई न बात सुने॥

सास और परिवार सभी, कहते थे तू मत जा बन में।
यह किस्मत उल्ट गई मेरी, बस एक नहीं लाई मन में॥

परवाह नहीं कुछ मरने की, मैं अभी जबान को काढ मरूं।
पर राम प्राण तज देवेंगे, इसका कहो क्या मैं इलाज करूं॥

दो.— सीता ऐसे कर रही, दुःख में रुदन अपार।
सुनने वाला कौन था, उस बन में नरनार॥

अर्कजटी का पुत्र एक, रत्नजटी कहलाता था।
विमान के द्वारा शूरवीर वह, कंबुक द्वीप में आता था॥

रुदन सुना जब सीता का, कुछ मन में जरा विचारा है।
यह सिया बहन भामंडल की, जो जिगरी मित्र हमारा है॥

श्री दशरथ की कुल बधु, रामचन्द्र की नार कहाती है।
रावण हरके ले चला लंक में, अपना दुःख सुनाती है॥
यदि लडूं मैं रावण से तो, निश्चय प्राण गंमाऊंगा।
पर कुछ भी हो क्षत्रापन को, हरगिज नहीं लाज लगाऊंगा॥
जो कर्तव्य अपना पालूंगा, बेशक फ़ल हाथ नहीं आवे।
जो वक्त पडे पर कर दे टाला, वह क्षत्रिय नर्क बीच जावे॥
खिला फूल जो आज बागमें, वह एक दिन कुमलावेगा।
इस तन पिंजर को छोड जीव, मात्र परभव को जावेगा॥

दो.— कर्त्तव्य अपना समझ कर, खैंच लई तलवार ।
रावण के सन्मुख अडा, यों बोला ललकार ॥

दो. नौ. (रत्नजटी)-दुर्बुद्धि दुरात्मा, नामर्द चौर के चौर ।
कहां सिया को ले चला, देखूं तेरा जोर ॥

चौ. (,,)-देखूं तेरा जोर करूं पापी, धड से सिर न्यारा ।
निर्भय हो जा रहा लंक, नहीं जाना मिले सुखारा ॥
छोड अभी सीता को नहीं, मारूं धर तान दुधारा ।
रामचन्द्र की नार चुराकर, फांसा निज गलमें डारा ॥

(दौड) वेशर्म शर्म न आई, क्या अवला नार चुराई ।
भुजा फडके हैं मेरी, झेल मेरा यह वार,
जान संकट में आगई तेरी ॥

दो.— रावण यों कहने लगा, जरा जरा मुस्काय ।
गीदड़ की आवे कजा, ग्राम सामने जाय ॥

रावण—उछल कूद कर मैंडक सा, किस को तलवार दिखाता है ।
प्रबल सिंह के ऊपर भी, आकर के धौंस जमाता है ॥
जान बचाकर भाग अरे, मूर्ख क्यों प्राण गंवाता है ।
कोई गरीब मार न हो जावे, मुझको विचार यह आता है ॥

दो.— झगड़ा दोनों में बढ़ा, लगा होन संग्राम ।
रत्नजटी ने लगा दई, अपनी शक्ति तमाम ॥
तीव्र हवा में टिक नहीं, सकता पक्का आम ।
इसी तरह तौफान सम, रावण था उस धाम ॥

छं.— काट शस्त्र तोडकर विमान, सब वेपर किया ।
लाचार हो नीचे गिरा, कर्तव्य पूरा कर दिया ॥

कंबूगिरी पर आ गिरा, कंबू ही नामा द्वीप है ।
गिरते गिरते छिल गया, सारा जिस्म क्या पीठ है ॥
मूर्च्छित हुआ वहां से, फिसल कंदर के अंदर जा पडा ।
सीता सहायक देख अपना, यों कहे रावण खडा ॥

दो. (रावण)-जनक सुता रहो रंग में, सुख में दुःख न दिखाय ।
भाग्य हीन संग राम के, फिरती थी बन मांय ॥

(रावण) हूं तीन खंड का नाथ मेरे, चरणों में राजे गिरते हैं ।
उन सब के हृदय कांप उठे, जब मेरे नेत्र फिरते हैं ॥
भूचर खेचर क्या तीन खंड के, भूप सभी आधीन मेरे ।
क्यों रोती है पटरानी बन जावेगी खुल गये भाग्य तेरे ॥
थी कौवे रूप राम गल तू, रत्नों की माला पड़ी हुई ।
तब लौट गई थी किस्मत तेरी, अब दीखे कुछ चढ़ी हुई ॥
शोभे दूध शंख अंदर और जैसे लाल अंगूठी में ।
ऐसे तू मेरे संग शोभे, शस्त्र चूरे की मुट्ठी में ॥
शशी सहित रजनी शोभे, हस्ती शोभे दो दांतों से ।
मौन सहित मूर्ख शोभे, और चतुर आदमी बातों से ॥
मौर शीश कलगी शोभे, शूरा शोभे रण के अन्दर ।
यों तेरी शोभा रंग महलों में, यहां नहीं शोभती बन अंदर ॥
सब महारानियों के ऊपर, पटरानी तुझे बना दूंगा ।
जो भी आज्ञा तुम देओगी, मस्तक पर उसे उठा लूंगा ॥
निर्भय निजमन में हो जाओ, तुम को न कभी सताऊंगा ।
मैं चाकर बनकर रहूं तेरा, किंकर बन हुक्म बजाऊंगा ॥
शुभ जगह सदा मोती शोभे, मन में कुछ ध्यान लगा ले तूं ।
धैर्य धर दस वीस दिनों तक, और मुझे अजमा ले तूं ॥

'जो स्वयं हृदय से न चाहे', उस नारी का है नियम मुझे।
बस यही जरा सी अटक हटा दे, साफ साफ अब कहूं तुझे ॥
अपने सिर का ताज मान, निज मुख से शब्द सुना दे तूं।
हंस करके मुखसे कहो जरा, मम हृदय कमल खिलादे तूं ॥
जो कुछ इच्छा तेरी सो कर तू, तीन खंडकी रानी है।
दासों का दास बन रहूं तेरा, बस यही मेरे मनमानी है ॥

दो.— सिया न ऊपर को लखे, राम चरण में ध्यान।
उत्तर कुछ देती नहीं, समझे पशु समान ॥
ऊंचे स्वर से रो रही, करे अति विलाप।
इसी बात का हो रहा, रावण को सन्ताप ॥

दो. (रावण)-स्यानी होकर के सिया, क्यों बनती अनजान।
देखो तो वह सामने, लंका कोट महान ॥
(,,) सुवर्ण मयी लंका सीता, वह देख सामने आती है।
शुभ हवा देख यह देव रमण से, मस्त सुगंधी लाती है ॥
तेरा ऊंचे स्वर से रोना यह, गौरव मेरा घटाता है।
सुन लोग कहेंगे क्या रोती, सूरत दशकंधर लाता है ॥
फिर आती है कुछ शर्म मुझे, कैसे महलों में ले जाऊं।
तब सभी रानियां पूछेंगी, तो क्या मैं उनको बतलाऊं ॥
सब रुदन छोडकर खुश चेहरा, हरबार तुझे समझाऊं मैं।
कुछ तो बोलो क्या चाहती हो, सो ही सेवा में लाऊं मैं ॥

दो.— सीता के चरणों में लगा, धरने मुकुट नरेश।
जनक सुता पीछे हटी, करके रोष विशेष ॥
जैसे हवा चले पूर्व की, ध्वजा तुरत पश्चिम जाती।
यदि चले वायु पश्चिम की तो, फटकारा खा पूर्व आती ॥

मन में सोच रही सीता, अपना नहीं धर्म गंवाऊंगी ।
समय यदि आया तो रसना, खैंच तुरत मर जाऊंगी ॥

दो. (सीता)-शील रत्न है, बाकी सब पाषाण ।
कहा श्री सर्वज्ञ ने, मिले अन्त निर्वाण ॥

जो नाक कान दोनों तोडे, किस काम का वह फिर सोना है ।
यह ऐसा मुझको रूप मिला, बस रात दिवस का रोना है ॥
इस पापी रूप के कारण पहिले, माता पिताने दुःख पाया ।
फिर भामंडल भाई का मन था, इसी रूपने भर्माया ॥
और इसी रूप को अटवी में, चोरों ने घेरा लगाया था ।
उस समय श्री लक्ष्मणजीने, उन सबको मार भगाया था ॥

दो. (सीता)-कर्मों ने हैं मुझ पर बुरा, डाला अब यह जाल ।
उन्मान सभी यह कह रहे, आने वाला काल ॥

(सीता) दुर्निवार यह आपत्ति, पापी मम धर्म गंवायेगा ।
प्राणान्त यहां पर मैं कर दूं, पीछे रघुपति मर जावेगा ॥
धर्म हेत सबको त्यागो, सर्वज्ञ देव बतलाया है ।
यह बाकी सब संयोग जगत के, झूठी सारी माया है ॥
राज्य पति परिवार सभी, अवसान में एक दिन छूटेगा ।
यह तन मेरा चमकीला भांडा, अवश्यमेव ही फूटेगा ॥
चोट पड़ी अब सिर पर आकर, तो फिर क्या घबराना है ।
सर्वस्व चाहे अर्पण कर दूं, आत्म का धर्म बचाना है ॥
शील की खातिर तजो प्राण, ऐसी आज्ञा है श्रीजिन की ।
अशुभ कर्म अब उदय आगया, तो फिर आस करूं किन की ॥
मौत के आगे डर क्या है, आत्म शक्ति दिखलाऊं मैं ।
अब बोला जो कुछ मुख से तो कोरी बात सुनाउं मैं ॥

दो. (रावण) अय सीता रोना तेरा, डाले मम सिर धूल ।
प्रसन्न चित्त मुख से जरा, वर्षा प्यारी फूल ॥

दो.— मुंह पीछे को फेर के, बोली त्यौरी तान ।
अधम महा पापिष्ट तूं, बिल्कुल पशुसमान ॥

चौक (सीता) है आश्चर्य की बात गधे भी, इतर फूलेल फिरें टोहते ।
आज तलक दुनियां में देखें, कुरडी पर फिरते खोते ॥

उल्लुवत् नजर नहीं आता, तुझको तो आंख बनवा जाकर ।
प्रबलसिंह की ले खुराक, गीदड कहां छिप सकता धा कर ॥
मिले धूलमें सब लंका, शेखी क्या जता रहा मुझ को ।
मैं नारी नहीं नागिनी हूं, तज दे अभी साफ कहूं तुझको ॥
धिक्कार तेरी शूरमताई, जो मुझे चुरा कर लाया है ।
गौरव हीन काम नहीं करता, क्षत्रिय कुल का जाया है ॥

गाना नं. ५८ (सीता की रावण को फटकार)

चल हट उल्लु गधे हैवान, बेहुदे गंवार दहकानी ॥ टेर
अक़ल के शत्रु दुर्गुण धाम, देख मैं किस नर की हूं बाम ।
चढ़ेंगे लंकापर लक्ष्मण राम, होवे काफूर तेरी राजधानी ॥१॥
मैं हूं प्रबल सिंह की नार, देवर लक्ष्मण अति बलधार ।
तेरा धड़से लें सिर तार, बनावे क्या मुझको पटरानी ॥२॥
तेरी संपति ऐशोआराम, खाक की मुट्ठी करूं तमाम ।
मेरे भर्तार एक श्री राम, बके मत कौवे सुनी कहानी ॥३॥
मुझे तू पैनी बर्छी जान, विष या कालकूट समान ।
किया तैं दुष्ट कर्म नादान, बचे ना अब तेरी जिंदगानी ॥४॥

दो.— वचन काट करते हुए, सुने खुशीसे भूप ।
जैसे सरदी में लगे, मीठी सबको धूप ॥

चौ.— जैसे बाराती जन गाली, जान बूझ कर सहते हैं ।
सुन अयोग्य भाषा अधिकारी, को हजूर ही कहते हैं ॥
यही हाल कामांधे का, कुछ नहीं समझ में लाता है ।
बर्ताव देख वैदेही का, रावण मन को समझाता है ॥

दो. (रावण)–सीता की सब गालियां, मुझको लगते फूल ।
जो मरजी मुख से कहे, मुझे रंज न मूल ॥

,, प्रेम पुराना राम संग है, नया नया यह काम सभी ।
किया तंग तो ऐसा न हो, खेल जान पर जाय कभी ॥

प्रेम पशु का भी जैसे, अपने रक्षक से होता है ।
फिर यह तो राजदुलारी है, त्रिया हठ भी नहीं छोटा है ॥
अब रोती हुई इसको महलों में, ले जाना नहीं अच्छा है ।
सुन न लेवे रुदन कोई, जितना नर नारी बच्चा है ॥
देव रमण उद्यान बीच, एकान्त इसे ठहराना है ।
प्रेम भाव से शनैः शनैः फिर, सीता को समझाना है ॥

दो.— ऐसा मन में सोचकर, दशकंधर बलवीर ।
देव रमण का ही हुआ, निश्चय ध्यान आखीर ॥

चौ.— सामन्त मन्त्री स्वागत कारण, उधर सामने आते हैं ।
नगरी और विशेष सजी, जय जय की ध्वनी सुनाते हैं ॥
छोड़ सभी को सुरति भूपने, देव रमण को लाई है ।
शुभ रक्ताशोक वृक्षनीचे, श्री जगदम्बा बैठाई है ॥
सब मेवा और मिष्टान्न थाल, वहां थे भोजन के लगे हुवे ।
जहां मीठे स्वरसे कोयल बोले, फूल बागमें खिले हुवे ॥
त्रिजटा नाम आदि दासी, सब आगे पीछे फिरती हैं ।
फल फूल हार गजरे अद्‌भुत, ला ला सेवा में धरती हैं ॥

शक्ति नहीं जवां लेखिनी में, सब सेवा का गुनगान करें ।
अद्भुत वस्त्र क्या आभूपरण, लाकर सारे सामान धरें ॥
सब लंका भर में खुशी हुई, नृप नार अनुपम लाया है ।
महाकष्ट के आरे चलें सिया पे, रावण मन हर्षाया है ॥

दो.— इच्छाएं सब तज दई, रामचरण में ध्यान ।
शुक्ल प्रतिज्ञा सिया की, सुनो लगाकर कान ॥

दो. (सीता) लक्ष्मण और श्री राम का, मिले न जबतक क्षेम ।
खान पान का तब तलक, है मेरा भी नेम ॥
प्रबंध बाग का ठीक बना, लंका को भूप सिधारा है ।
सामंत मन्त्री अधिकारी, क्या जनसमूह संग भारी है ॥
कर्म शुभाशुभ जीवों को, कैसा सुख दुःख दिखलाते हैं ।
और ज्ञानदर्शन चारित्र बिन, यह नष्ट नहीं हो पाते हैं ॥

दो -- सीता बैठी बागमें, रावण लंका मांय ।
लक्ष्मण की श्री रामजी, करने गये सहाय ॥

चौ.— भाग दूसरा हुआ खतम, सीता का हरण हुआ इसमें ।
कोई छूटे कर्म बिना भुगते, यह शक्ति बतलाओ किसमें ॥

रामचन्द्र का हाल शेष, सब पढ़ो तीसरे हिस्सेमें ।
धन्य "शुक्ल" वह पुरुष धर्म पर, कायम रहे परिषहमें ॥

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

समाप्तोऽयं रामायणस्य द्वितीयो भाग :

श्री जैन रामायण प्रथम भाग पुस्तकाकारका शुद्धि अशुद्धि पत्र.

पृष्ट	लाईन नंबर	अशुद्धि	शुद्धि
१८	८	देखा	रेखा
२०	१६	झनकर	झनकार
२४	२	यातन	यतन
२४	२०	आज्ञाया	आज्ञा पा
३२	१०	वसना	वसम्ना
३२	१४	धारमिथ्यात्व निवार	सम्यक्त्वधार मिथ्यात्व निवार
३६	४	खाता पिता	खाता फिरता
३७	२१	हमारे साथ	हमारे हाथ
४२	१८	अंक	अंग
४५	२२	सोमन	शोभन
४६	२	शमखाती	शर्मखाती
५१	५	भारी	भारी है
५१	२३	विशष	विशेष
५४	२४	किष्किधित	किष्किंधिसुत
५५	१६	वीत	विता
५५	२३	दोड	तोड
६२	१४	कमकमसे	कमसेकम
६४	४	कतव्य	कर्त्तव्य
७०	३	शील	शीश
७५	२	भवकाका	भवका
७५	२२	गोरवकी	गौरवकी
७७	१०	बढ	बढे
७६	१	भातु है	भानु है

७६	६	वद्लाताथा	वह लाताथा
८१	४	उचक्कों	उचक्कों
८४	६	रानीने	रानीसे
८८	१८	उसस	उससे
८६	२१	किय पसया	किये पसपा
६३	२	मय	मम
६४	१५	प्रेम	प्रेमसे
६७	१२	विनपानी	विन पानी सम
१०१	२	पूरी	पूरी सती
१०२	२०	निम	निर्वाह
१०२	२०	निमवा उंगी	निभाउंगी
१०२	२१	कमय	समय
१०३	२	सम	सब
१०४	८	धिकाधिक	धिकधिक
१०४	१३	ढोकर	ठोकर
१०५	१३	इसके	इसको
१०७	६	माताने	माताके
११०	१५	वतलावो	वतलावें
१११	२३	दिया न कोई	दिया लकोई
११८	१०	का	क्या
१२१	२५	विफला	विमला
१२४	१५	कर दे	कर दो
१२७	२१	थापावह	था वह
१२७	२५	श्रमत्त	श्रभत्त
१२८	२	पाचक	पाचक से

१३४	८	मरना अच्छा है	अच्छा मरना है
१३६	४	ज्ञात तुझे	ज्ञात मुझे
१३६	२१	अपराजित	अपराजिता
१६७	११	नृपमें	नृपपे
१३७	१८	प्रम	प्रेम
१३८	१५	चकर	चक्कर

द्वितीय भाग

१	२२	वसुभूति	अनुभूति
३	१८	भूपाल	भूपाला
४	५	चौरी	चोरी
६	६	सुखकर	सुखकार
६	९	खबर है	सबर है
६	१०	सब्र है	खबर है
६	१८	ही	दी
६	१८	वधाई	वधाई है
८	६	भूमि	भूप
१०	१८	चले	चाले
१२	२४	मची	मच
१६	९	धाये हैं	धाया है
१६	२२	दिखलाया हैं	दिखलाते हैं
१७	१७	सुनाये हैं	सुनाया है
१७	२०	उचार	उचाट
१७	२५	गुणवर्तन	गुणवर्णन
१९	७	जिसके	जिसको
२२	८	वात को	वात कोई

२३	७	सब	सबर
२३	१४	धुलकर	घुलकर
२५	१४	फणियार	फणियर
२६	६	उठाने	उठा न
३२	१५	भगवान ध्यान	भगवान ध्याना
३६	२२	बुढावा बूर	बुढापा धूर
३७	१५	नप	नृप
३७	२२	झुक	झुकें
३६	२	अंक मे	अंग में
३६	१३	आया है	आता है
३६	२४	कर्णन	वर्णन
४२	१२	सुत	सुर
४४	१६	रनी	रानी
४६	१२	अपने	आपने
४८	१	दारुं	हारुं
५१	४	कर	करो
५१	५	वरा	वर
५१	२४	पवत	पर्वत
५२	१२	नमाता	नमाता हूं
५२	८	करूं	मरूं
५४	४	होवो	होकर
५४	७	पर	पर चरण
५४	१८	राज्य	राज्य करुं
५५	२३	रही	रही ना
५८	१	मात	माता

५८	६	माईका	भाईका
५९	१	डरेगा	डटेगा
६२	२१	वताऊं लाऊं	बतलाऊं
६३	११	विचार	विचारा
६४	१५	दिल	दिल तेरा
६६	२२	नही	नहीं जिसे
६८	१२	निकाली	निकाली है
७०	१४	जलचर	जलधर
७०	१८	दिलगानीका	जिन्दगानीका
७०	२०	जायेगा	जायगी
७१	१७	रहनेकी वही	रहनेकी वदी
७२	११	सोचनदूं	सोचन दूंगा
७६	२१	प्राणि	पाणी
७६	२२	करनाचाहिये	करना है
७७	११	जिसतरह	जिसजगह
७८	६	नैन	वैन
८३	१०	विधाताहो	विधाता है
८४	१७	चौथी	चौथी है
८५	९	घर	धर
८५	१७	लोहेका	लोहेको
८९	२०	भेट	मेट
९१	१४	निन्द	निन्दा
९२	२	आज	आज्ञा
९२	४	मुक्ति	युक्ति
९३	१०	आर्न्त	आर्त

९३	१६	मै हैं	मै हूं
९४		यहां आठवीं-नववीं लाइन पूरी रह गई हैं-वे निम्न लिखित हैं-	

(हमचले वनोंकी सैर अवधका राज भरतने करना है।)

९५	२४	पुरी	पूरा
९६	१६	झुकावे	झुकाये
९६	२४	सुसति	सुमति
९७	१२	चिउ	चित्त
९८	२	दुर्मेल	दुर्भेप
९८	६	सार	सारा
९८	२५	खाना है	भखना है
९९	२०	पाये	पाले
१००	६	झुकवायाहै	झुकाया है
१०१	२१	पीलो	पीला
१०२	१२	वोल	वोला
१०२	२४	पखर	फकर
१०६	४	वढाते हो	वढाते हैं
१०८	२	मेरे	मेटें
११०	२३	अभी तन	अभी न तन
१११	२०	क्षेत्र	क्षेम
११८	१५	अरवी	अटवी
११९	२	वात	बता
१२१	६	पतन	पट्टन
१२६	१६	रंग वे	रंग पे
१२६	२३	मुझ	मुझ को
१२८	२	ज्ञानी की	ज्ञानी का

१३४	२४	भूज	भुज
१३६	१५	लाले है	लाये हैं
१३७	७	चाट	चोट
१३७	१६	इसको	इसके
१३७	२०	भारी	मारी
१४१	३	जन मात्र	जन्मांतर
१४६	८	करके	कर में
१४७	१६	धार	भार
१४८	१८	यहां आधी लाईन छूट गई है सो इस प्रकार है अष्ट प्रवचन सम	
१४६	१७	हुवे	हुवे एकत्र
१५१	५	टला	टल
१५५	१४	नचाता	मचाता
१५६	८	फर्णाघर	फणियर
१५६	१४	समझ सके	समझा सके
१५८	१२	यहां बाहरवीं लाईन—पूरी छूट गई है तो नीचे मुजब है:- (आत्म अरूप चेतन स्वरूप । क्या कर सकते संगीन किले)	
१६४	२४	बना गया	बन गया
१६६	१	सुर्यहास खांडा साधू	सुर्यहास खांडा साधुं
१६८	१३	लई उदासी	लई उवासी
१७२	१२	हेच	हेय
१७२	२२	कुमटी है	कुमरी है
१६६	१४	वूरे की	सूरे की
१६७	२४	पूत्र	पूर्व
१६८	३	शील रत्न है	शील रत्न ही रत्न है